बुन्देली लोक साहित्य में मिथकीय प्रयोग

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी

की

पी-एच. डी. की उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

1997

शोध निदेशक :
डॉ. रामस्वरूप खरे
एम.ए., पी-एच.डी., साहित्यरत्न
पूर्व प्राचार्य एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष
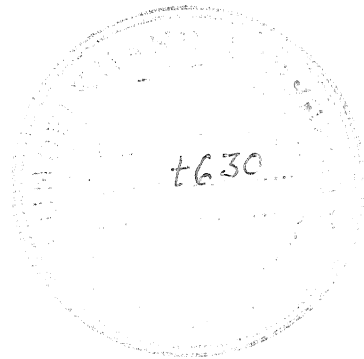
अनुसंधित्सु :
श्रीमती अर्चना निगम
एम. ए., बी. एड.

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई (जालौन) उ.प्र.

समर्पण

जिन्होंने अक्षर बोध कराकर मेरे भीतर के नेत्रों

का उन्मीलन किया, जिन्होंने अपना मृदुल करावलम्ब

देकर मुझे इस असीम भव-सागर से सन्तरण का मार्ग

प्रशस्त किया, तथा जिन्होंने मुझे आशुतोष भगवान

शंकर की भाँति मुदित मन से साहित्य-सुधा का

दान किया जिसे पीकर मैं सचमुच कृतकृत्य हो उठी।

ऐसे परम यशस्वी, प्रशान्त, धीर एवं गम्भीर व्यक्तित्व

के धनी, महामनीषी डा० वृन्दावनलाल, पूर्व कुलपति,

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के पुनीत चरणों में

यह शोध प्रबन्ध अकिंचन भेंट के रूप में सादर समर्पित है।

-:- एवं -:-

मातृ तुल्या महीयसी महादेवी वर्मा की अनमोल

सारस्वत-साधना की अहर्निश प्रज्वलित अखण्ड

दीप-शिखा को प्रकाश की यह एक किरण

सश्रद्ध एवं सप्रेम

अर्चना निगम

शोध निर्देशक का प्रमाण पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुये अत्यधिक हर्ष हो रहा है कि श्रीमती अर्चना निगम एम०ए० ने "बुन्देली लोक साहित्य में मिथकीय प्रयोग" शीर्षक से हिन्दी साहित्यान्तर्गत मेरे निर्देशन में शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है ।

शोधार्थिनी ने अथक परिश्रम दृढ़ संकल्प और पूरी निष्ठा पूर्वक अपनी शोध प्रवृति का गंभीर परिचय दिया है । लोक साहित्य का विश्लेषण करते हुये उसमें मिथकीय प्रयोग पर संभवतः यह सर्व प्रथम किया गया नितांत नूतन एवं मौलिक शोध कार्य सिद्ध होगा ।

नियमानुसार सम्बन्धित शोधार्थिनी ने 200 दिन से अधिक की उपस्थिति देकर सम्यक दिशा-निर्देश प्राप्त किये हैं । अतएव मै इस शोध प्रबन्ध को परीक्षणार्थ भेजने की संस्तुति करता हूँ ।

(डा० रामस्वरूप खरे)
निर्देशक

दिनांक :- ....

अनुक्रमणिका

-:- पुरोवाक -:-

लोक साहित्य के अध्ययन में मेरी प्रारम्भ से अत्याधिक रुचि रही है मैंने अपने क्षेत्र के बहुत से लोक गीतों, लोक कथाओं, लोक कहावतों, और लोक पहेलियों का संकलन किया था । इस कार्य में मुझे शांति और सन्तुष्टि का अनुभव हुआ । चाहती थी कि ऐसा योग्य निर्देशक मिले जिससे मेरे संकलित लोक साहित्य का उपयोग भी हो जाये और मुझे पी०एच०डी०की उपाधि भी मिल जाये ।

अभिनव साहित्य परिषद उरई के संस्थापक, कुशल सम्पादक, गम्भीर चिन्तक, पत्रकार, लेखक, कथाकार, युग कवि, एवं प्रख्यात साहित्यकार डा० रामस्वरूप खरे से मिलने का मुझे अचानक सौभाग्य प्राप्त हुआ । उस समय वे हिन्दी विभागाध्यक्ष के दायित्व के साथ साथ प्राचार्य का दायित्व भी सम्पादित कर रहे थे । एक ही बार के इस परिचय में मेरे मन पर जो अमिट छाप छोड़ी वह अविस्मरणीय है । डाक्टर साहब का प्रभावी व्यक्तित्व मेरे मन में घर कर गया, पुत्रीवत उनके असीम स्नेहिल व्यवहार ने अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त करने को प्रेरित किया, पहले तो वे सुनकर मुस्कराये फिर उन्होंने कहा "बुन्देली लोक साहित्य में मिथकीय प्रयोग" विषय तुम्हारे लिये अत्याधिक उपयोगी और सार्थक रहेगा ।" सच पूछो, मुझे तो मुंह मांगा वरदान मिल गया । डाक्टर साहब के निर्देशन में शोध की संक्षिप्तिका प्रस्तुत करके विश्वविद्यालय भेज दी गयी, शोध-समिति ने उक्त विषय पर स्वीकृति देकर मेरे मनोबल को बढ़ा दिया।

फिर क्या था, पूर्णरूपेण दत्त चित्त होकर मैं अपने कार्य के निमित्त कटिबद्ध हो गयी । पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करते हुये लोक साहित्य के संकलन और अध्ययन में और अधिक समय देने लगी । इसी बीच सागर विश्व

विद्यालय की बुन्देली पीठ जा पहुँची जहाँ मुझे शोध सम्बन्धी प्रचुर परिमात्रा में सामग्री उपलब्ध हुई । इसी प्रकार बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई के निदेशक श्री हरीमोहन पुरवार ने भी मुझे अपार सहयोग दिया । उनके संग्रहालय में अच्छी सामग्री मिली ।

कार्य की सुविधा के लिये मैंने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को सात परिच्छेदों में विभक्त किया है । प्रथम परिच्छेद में पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुये मैंने बुन्देलखण्ड का सामान्य परिचय दिया है । पुनः भौगोलिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराते हुये सभ्यता एवं संस्कृति का निरूपण इस प्रकार किया गया है, जिससे बुन्देलखण्ड का विलुप्त अतीत भलीभाँति उजागर हो सके ।

द्वितीयपरिच्छेद में बुन्देली लोक साहित्य की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुये यहाँ के फाग साहित्य, फड़ साहित्य, लोकगीत, लोक कथायें, लोक कहावतें, और लोक पहेलियों का संक्षिप्त विवेचन किया है पुनश्च लोक साहित्य की परिभाषाओं का आंकलन किया, जिसमें अनेक विद्वानों के अभिमतों को आधार बनाया गया है । इसके साथ-साथ लोक साहित्य के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है । लोक साहित्य एवं लोकाभिव्यक्ति का विश्लेषण करते हुये अन्त में लोक साहित्य के प्रकारों का निरूपण किया है ।

तृतीय परिच्छेद में मिथक की उत्पत्ति और उसकी विशेषताओं के साथ-साथ विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गयी है । इसके अन्तर्गत मानवीकरण स्पष्टीकरण, प्रतिनिधिकरण, का उल्लेख करते हुये मैंने प्राचीन जन कथाओं और दार्शनिक कथाओं पर एक विहंगम दृष्टि डाली है ।

चतुर्थ परिच्छेद में सर्व प्रथम मिथक के सम्बन्ध में विभिन्न अभिमत देते हुये लोक साहित्य के भिन्न भिन्न आचार्यों के मतों का उल्लेख करके मिथक की युक्ति संगत परिभाषा देने की चेष्टा की है। तदुपरान्त "मिथ" और लीजेण्ड" का सूक्ष्म अन्तर स्पष्ट किया है। इसी परिच्छेद में लोक साहित्य गत "मिथक" और लीजेण्ड, के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। अन्त में लोक साहित्य और मिथक के अन्तर पर प्रकाश डाला गया है।

पंचम परिच्छेद के अन्तर्गत बुन्देली लोक साहित्य में जहाँ जहाँ मिथक अभिव्यक्ति दृष्टि गोचर हुई है। उसे भलीभाँति सुस्पष्ट कियागया है। अनेक पौराणिक ऐतिहासिक और दैवी कथाओं का अनुशीलन करते हुये, मिथकीय प्रयोग की सम्भावनाओं पर दृष्टि पात करके उपयुक्त परिस्थितियों, का आंकलन करते हुये बुन्देली साहित्य की अपेक्षा पर विचार किया गयाहै।

षष्ठ परिच्छेद के अन्तर्गत बुन्देली लोक साहित्यगत मिथकीय प्रयोग पर विचार करते हुये, संदर्भ मात्र, पूरे कथा प्रसंग, अन्तर्कथा एवआगम रूप पर चर्चा करते हुये तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

सप्तम परिच्छेद में वर्गीकरण की दृष्टि से मिथकीय प्रयोगों का विश्लेषण करके लोक साहित्य के सबसे समृद्ध भाग लोक कथाओं के अन्तर्गत दैवी कथाओं मानवीकथाओं एवं पौराणिक कथाओं का ऐसा निरूपण किया गया है जिससे इन सबमें पार्थक्य की सुस्पष्ट रेखा खींची जा सके।

शोध प्रबन्ध का अन्तिम एवं अष्टम परिच्छेद उपसंहार से सम्बंधित है, इसके अन्तर्गत पूर्वोक्त सातों परिच्छेदों का संक्षिप्त भाव स्पष्ट करते हुये शोध प्रबन्ध का समापन किया गया है। इस प्रकार यह परिच्छेद समूचे शोध प्रबन्ध का सिंहावलोकन करने में पूर्णरूपेण समर्थ है।

यदि मुझे परम श्रद्धास्पद पूज्य गुरुदेव डॉ० रामस्वरूप जी खरे का सम्यक और प्रभावी निर्देशन न मिला होता तो शोध प्रबन्ध कभी भी पूर्णता को प्राप्त नहीं हो पाता । उनके प्रति सम्पूर्ण श्रद्धाभाव से विनत हूँ । उनकी सहज और अहेतुक कृपा ही मेरा सबल सम्बल है । अस्तु उनके प्रति आभार व्यक्त करती हुई अपने को कृतज्ञ और उपकृत समझती हूँ । जहाँ पूज्य पिताजी एवं माता जी के शुभाशीष ने मेरी कठिनाईयों को सदैव दूर किया है, वहीं मेरे सास ससुर की ओर से भी असीम स्नेह मिला । उनके इस अवदान को मैं भला कैसे भूल सकती हूँ, अपने जीवनसाथी श्री रवीन्द्र कुमार निगम, लेखाकार, उ०प्र०समाज कल्याण निर्माण निगम बहराइच का किन शब्दों में आभार व्यक्त करूँ क्योंकि उन्होंने ही तो यह प्रगति का प्रदीप प्रज्वलित किया था, जिसने मुझे लक्ष्य की ओर उन्मुख किया । पुत्र प्रवेश और पुत्री प्रज्ञा को अपार स्नेह और वात्सल्य भाव से अभिभूत हो यह शुभाशीष देती हूँ कि उन्हें सुयश और सुकीर्ति मिले ।

अग्रज डॉ० पीयूष मंगलम् के निश्छल प्रेम ने तो जहाँ इस ओर प्रेरित किया, वहाँ एक अभिनव दिशा और दृष्टि भी दी । उनके प्रति कृतज्ञ भाव व्यक्त करती हूँ ।

इस शोध प्रबन्ध की पूर्णता में प्राप्त सहयोग के लिये मै डॉ० ब्रजवासी लाल, पूर्व कुलपति बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी एवं डॉ० डी०पी० खरे, रीडर एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी) डी०वी०कालेज उरई को हृदय से धन्यवाद देती हूँ।

अन्त में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में जिन महामनीषियों ने मुझे समय-समय पर दिशा निर्देश दिये उन सबके प्रति सश्रद्ध आभार व्यक्त करती हुई अपने को कृतकृत्य समझती हूँ ।

अर्चना निगम

दिनांक:- 31.12.97 (अर्चना निगम)

प्रथम अध्याय

1.0 :- भूमिका -:

छोटी-छोटी टोरियां, विन्ध्य की पर्वत श्रृंखलायें, एवं बेतवा, चम्बल, धसान यमुना, पहूज एवं सिंधादि सरिताओं से अभिसिंचित इस भूखण्ड को बुन्देलखण्ड नाम से अभिहित किया जाता है । इस प्रदेश पर वीर-बांकुरे बुन्देले राजपूतों का बहुत समय तक शासन रहा । प्राकृतिक सम्पदा का धनी यह प्रदेश भले ही कभी प्रशासकीय इकाई न रहा हो पर, इसका सांस्कृतिक महत्व पुराकाल से लेकर अब तक अक्षुण्ण बना हुआ है ।

1.1 :- बुन्देलखण्ड का सामान्य परिचय -:

साक्ष्यों एवं प्रमाणों के आधार पर जेजाक भुक्ति की स्थिति इस प्रकार मानचित्र पर 22° और 27° उत्तरीय अक्षांश तथा 75° और 84° पूर्वीय भू-रेखाओं के मध्य में है । इस क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग 51000 वर्गमील है । जनरल कनिंघम के अनुसार जेजाक भुक्ति साम्राज्य की सीमा में वह समस्त क्षेत्र आ जाता है, जो गंगा और यमुना के दक्षिण में नर्मदा महानद तक फैला है । आधुनिक सागर और बेलारी जिला भी उसमें आ जाते है ।[2] बी०ए० स्मिथ ने भी इस भौगोलिक सीमा को स्वीकार किया है ।[3] पौराणिक मान्यताओं के अनुसार इस सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध होती है । यथा-वैवस्वत मनु की वंश-परम्परा में यदु को राज्य विभाजन में चर्मण्यवती, वेत्रवती तथा शुक्तिमती नदियों से अभिसिंचित प्रदेश प्राप्त हुआ । इन्ही के वंश में महाराजा चिदि हुये जिससे इस वंश का नाम "चेदि" पड़ा इस प्रकार चिदि नाम प्रारम्भ में चम्बल और केन के बीच यमुना के दक्षिणी प्रदेश

---

1. चन्देल और उनका राजत्वकाल, केशवचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 6
2. आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग 2 पृष्ठ 413
3. एपिग्रेफिया इण्डिका, भाग 30, पृष्ठ 130

अर्थात केवल उत्तरी बुन्देलखण्ड का था । आधुनिक बुन्देलखण्ड का दक्षिणी भाग उसमें कबसे सम्मिलित हुआ, इसका कोई स्पष्ट ऐतिहासिक निर्देश नहीं मिलता । [4]स्कन्दपुराण में "जहाहुति" क्षेत्र का परिचय इस प्रकार दिया है- "इस देश की ग्राम संख्या 42 हजार थी, इसके आस पास कान्तिपुर §कुत्वार§ चेदि और मालव बताये गये है । इनकी क्रमानुसार ग्राम संख्या 9 लाख, 9लाख और 1, 18092 बतलाई गयी है । सम्भवतः प्राचीन जहाहुति की आधुनिक बुन्देलखण्ड है[5]।

1.2:- भौगोलिक परिस्थितियां-:

दीवान प्रतिपाल सिंह ने "बुन्देलखण्ड का इतिहास" नामक ग्रंथ में छत्रसाल के समय के बुन्देलखण्ड की सीमा इस प्रकार निर्धारित[6]की है। बेतवा और केनकाठों तथा नर्मदा के उपरलेकठे वाला प्रदेश। बुन्देलखण्ड है । वस्तुतः यह भौगोलिक सीमा आधुनिक बुन्देलखण्ड की यथार्थ सीमा है। राजनीतिक विभाजन के अनुसार इस भूभाग के अन्तर्गत निम्नांकित जिला लिये जा सकते है :-

---

4. इतिहास प्रवेश, जयचन्द्र विद्यालंकार, पृष्ठ 95
5. मध्ययुगीन भारत, भाग 3, पृष्ठ 49
6. "इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस ।
   छत्रसाल सौलरन की रही न काहू हौंस ।।
   उत्तर समथल भूमिगंग जमुना सुबहति है ।
   प्राची दिसिकें भूरसौन कासी सुलसति है ।।
   दक्खिरेवा विंध्याचल तन शीतल करनी ।
   पच्छिम में चम्बल चंचल सोहत मनहरनी ।।
   तिनमधिराजे गिरि वन सरिता सहित मनोहर ।
   कीर्तिस्थल बुन्देलन को बुन्देलखण्ड वर ।।
7. भारत भूमि और उसके निवासी, जयचन्द विद्यालंकार, पृष्ठ 65

§अ§ उत्तर प्रदेश - 1. जालौन, 2. झांसी, 3. हमीरपुर, 4. महोवा, 5. बांदा,

6. ललितपुर ।

§ब§ मध्य प्रदेश - 1. टीकमगढ़, 2. छतरपुर, 3. पन्ना, 4. दतियां, 5. सागर,

6. नरसिंहपुर, 7. भिण्ड, 8. दमोह, 9. ग्वालियर, 10. शिवपुरी,

11. मुरैना, 12. विदिशा, 13. गुना, 14. राजगढ़, 15. रायसेन,

16. हुसंगाबाद ।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना दक्षिण में नर्मदा पूर्व में टौंस§तमसा§ और पश्चिम में चम्बल नदी स्थित है । संप्रति इसी भू-भाग को बुन्देलखण्ड कहा जाता है :-

सांस्कृतिक एवं भाषा की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुये आज का यह बुन्देलखण्ड निश्चित ही अपने प्राचीनतम पुरावशेषों को सुरक्षित किये हुये गर्वोन्नत है। इसी सांस्कृतिक बुन्देलखण्ड प्रदेश का एक जिला है जालौन । यह भूभाग झांसी संभाग के अन्तर्गत परिगठित किया जाता है, जिसकी प्रशासनिक इकाईयों के रूप में आज इसमें झांसी, हमीरपुर, महोवा, बांदा, ललितपुर, और जालौन आदि छः जिला सम्मिलित है । सन् 1981 की जनगणना के अनुसार जिला जालौन की जनसंख्या 9,81,432 तथा क्षेत्रफल 4,55,690 हेक्टेयर है ।

संप्रति इस जिला में जालौन, उरई, कौंच, कालपी और माधौगढ़, पांच तहसीलें जालौन, माधौगढ़, रामपुरा, कुठौंद, महेवा, कदौरा, डकोर, एट और नदीगांव 9 विकास खण्ड , 638 ग्राम पंचायते, 81 न्याय पंचायते, तथा 1156 ग्राम है । इस जनपद की सीमा इस प्रकार है :-

उत्तर में:- इटावा, कानपुर, जिला तथा यमुना नदी ।

दक्षिण में:- झांसी जिला एवं बेतवा नदी ।
पूर्व में :- हमीरपुर एवं महोवा जिला ।
पश्चिम में- मध्य प्रदेश तथा पहूज नदी ।

इसकी लम्बाई पूर्व से पश्चिम में 90 किलोमीटर चौड़ाई उत्तर से दक्षिण पर्यन्त 75 किलोमीटर है । इस जनपद में कोई विशाल नदी एवं पर्वत नहीं है । हां, यमुना, बेतवा तथा पहूज अवश्यमेव इस जनपद में प्रवाहित होती है । सिमरई, चिरावली, गुमावली, सला और पहाड़गांव के पास छोटी-छोटी पहाड़ियां है । इसी प्रकार मलंगा, रावर तथा चरवाई छोटे-छोटे बरसाती नाले है।

जलवायु :- यहां ग्रीष्मकाल में अधिक गर्मी, तथा शीतकाल में अधिक ठण्ड पडती है पावस ऋतु में वर्षा भी प्रभूत मात्रा में होती है । इस प्रकार अन्य प्रदेशों की भांति ही इस जनपद में भी जाड़ा गर्मी और बरसात ये तीन मौसम होते है ।

सिंचाई के साधन :- कुआं, तालाब और नहरें है ।

फसले :- रबी और खरीफ दो फसलें ही मुख्य है ।

जायद की फसल भी अब यहां होने लगी है । गेहूं, चना, जौ, अलसी, सरसों, तथा मसूर प्रमुख फसलें है ।

मिट्टी:- इस जनपद में विशेष रूप से मार, काबर, पडुंवा और राकड भूमि है ।

निवासी- यहां के निवासी अत्यन्त सीधे सादे, धर्मभीरू ईमानदार, और अपनी आन बान तथा शान के पक्के है । श्रम और कर्म में उनकी अटूट आस्था है । देवी देवताओं के उपासक एवं धर्म के मर्म को जानने वाले है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आज अनेक गोत्र उपगोत्र एवं अल्लो में विभक्त हो गये हैं । इस प्रकार मुख्य कर्म जाति में परिवर्तित हो गया है ।

उद्योग-धन्धे एवं व्यवसाय :- कृषि एक मात्र प्रमुख उद्योग है । इसके अनन्तर कुछ लोग तांबे, पीतल के बर्तन बनाते हैं, कुछ लोग बांस के उपकरण जैसे टोकरी, सूप, पंखे आदि बनाकर अपनी जीविका चलाते हैं । कालपी में कपड़े, बनाने के प्राय: घर-घर छोटे छोटे लघु कारखाने हैं । यहां अनेक प्रकार का कागज भी बनाया जाता है ।

गावों में लुहार और बढ़ई कृषि से सम्बन्धित उपयोगी उपकरण तैयार करते हैं, जैसे कढ़ाई, तवा, कुल्हाड़ी, सब्बल आदि बढ़ई गाड़ी का सम्पूर्ण ढांचा बनाते हैं, घरों में प्रयुक्त होने वाले उपकरण खाट, चारपाई, किवाड़, चौखट, खिड़कियां, और अनेक प्रकार के सन्दूक तथा खेल-खिलौने भी बनाने में सिद्धहस्त होते है । वैश्यजन प्राय: व्यापार करते है, जैसे गल्ला, कपड़ा अनाज और चांदी- सोने के आभूषणों का । कुम्हार आदि मिट्टी के बर्तन तथा खिलौने बनाते है, बैल, पशु, पक्षी -गौमाता कृषि का मेरुदण्ड है । खेती के लिये बैल, गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा, कुत्ता आदि पालते हैं । तोता, मैना, कबूतर एवं मुर्गे-मुर्गियों के पालने का शौक है । कुछ लोग शूकर भी पालते हैं ।

रहन-सहन एवं खान-पान :- अधिकतर लोग अत्यन्त सादगी पूर्ण जीवन बिताते हैं । सभी जातियों में पारस्परिक सौहार्द है । लोग एक दूसरे के धर्म का आदर करते हुये साम्प्रदायिक सदभाव स्थापित करने के हामी है । दाल, चावल, रोटी, साग-सब्जी दही और मट्ठा का प्रयोग करते हैं । कुछ लोग मांसाहारी भोजन लेते है । पहनावे में पुरुष अधिकांश धोती कुर्ता अथवा कमीज पहनते हैं । सिर पर साफा बांधने का रिवाज है । पर यह धीरे धीरे कम होता जा रहा है इसके स्थान पर टोपी प्रयुक्त करने लगें हैं । महिलायें रंगीन धोती-साड़ी, ब्लाउज पहिनती हैं । ग्रामीण एवं श्रमिक बालायें कहीं-कहीं दक्षिणात्य बालाओं की भांति कछोटा लगाती हैं । पुरुष वर्ग अब मात्र अंगूठी धारण करता है, जबकि महिलायें अपने सौभाग्यसूचक आभूषण जैसे मंगलसूत्र, बिछिया, अंगूठी, पायल और चूडियां पहनना आवश्यक मानती है । अतिथियों को सम्मानपूर्वक भोजन कराना तथा कन्याओं को देवी रूप मानते हुये उनकी निश्छल भाव से सेवा-सुश्रूषा एवं विवाह आदि कराना पुण्य के कार्य माने जाते है । यहां माता-पिता बेटी के चरण-स्पर्श करते हैं । पहले विवाद

आपस में निपटा लिया करते थे किन्तु अब धीरे-धीरे एक दूसरे पर से विश्वास उठने लगा है, इसलिये न्यायालयों को मान्यता बढ़ती जा रही है । मतों की राजनीति ने सीधे सादे गांववासियों को भी सर्वाधिक "चतुर" बना दिया है।

1.3 :- ऐतिहासिक परिस्थितियां -:

भिन्न-भिन्न प्रदेशों की भांति बुन्देलखण्ड कोई प्रशासनिक प्रदेश नहीं है वरन भाषा एवं संस्कृति की दृष्टि से वहां के मनुष्यों ने स्वीकार किया है । प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता बी०ए० स्मिथ ने स्वीकार किया है, कि आधुनिक बुन्देलखण्ड से उस सम्पूर्ण क्षेत्र का बोध होता है, जिसमें चंदेल शासको ने राज्य किया था । [8]बुन्देलखण्ड का अस्तित्व चन्देल शासको के पश्चात लगभग सन् 1335-40 ई० में प्रारम्भ हुआ, जब इस प्रदेश पर बुन्देलखण्ड राजपूतों का आगमन हुआ । बुन्देलखण्ड नाम से पूर्व इस भूभाग के कई नाम ज्ञात हुये है । महाभारत-काल में यह "दशार्ण" नाम से विख्यात था । भविष्य पुराण में इसका नाम "मध्यदेश" प्राप्त होता है मध्य प्रदेश में यमुना का सम्पूर्ण दक्षिणी भाग शामिल था । [9]महाराज मनु ने अपनी सुप्रसिद्ध कृति[10] में कहा है "सरस्वती नदी से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम हिमालय और विंध्यका मध्यभाग "मध्यदेश" के नाम से अभिहित था । इस क्षेत्रका नाम पुराग्रन्थों में "जेजाक भुक्ति"[11] भी मिलता है । स्कन्द पुराण के कुमारखण्ड अध्याय 39 में भारतवर्ष के एक प्रदेश का नाम "जेहाहुति" है । इसके आस पास का कान्तिपुर चेदि और मालव बतलाये गये है । सम्भवतः प्राचीन "जहाहुति"

---

8. इण्डियन एन्टीक्वेरी, 1908 भाग 37 पृष्ठ 530

9. बुन्देली लोक साहित्य, डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेही" प्र० संस्क० 1976 पृष्ठ 1

10. हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाश्च मध्यदेश प्रकीर्तितः ।। मनुस्मृति 2।21

11. इण्डियन एन्टीक्वेरी, भाग 1, पृष्ठ 35

ही आधुनिक बुन्देलखण्ड है । [12]इस संदर्भ में कतिपय किम्वदन्तियां भी प्रचलित है पं॰गोरेलाल तिवारी के मतानुसार "अलबत्ता ऐसा हो सकतता है, कि इसके पूर्व पुरुषो ने विंध्यवासिनी देवी की उपासना की हो, इसी से बुन्देल नाम प्रचलित हो गया जो विंध्य से बहुत कुछ सम्बन्ध रखता है । [13]एक दन्तकथा के अनुसार बुन्देलो की उत्पत्ति काशी के गहरवार वंश से मानी गई है, जो भगवान राम के पुत्र कुश के वंशात्मज माने जाते है । कहा जाता है कि लव के वंशज कर्तराज ने पण्डितों की सलाह से अशुभ ग्रहों की शान्ति करवाई जिससे यह "गहनिवार" अथवा "गहरवार" कहलायें । "एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटेनिनका" में भी बुन्देलो को गहरवार अथवा चन्द्रवंशीय माना गया है[14]। जब महाराज हेमकरन या वीर पंचम छीने हुये राज्य प्राप्ति के लिये विंध्यवासिनी देवी को प्रसन्न करने के लिये आत्मोत्सर्ग हेतु तलवार उठाई तो मस्तक में खरोंच लगने के कारण रक्त का एक सकल विन्दु पृथ्वी पर आ गिरा । फलस्वरुप वीर पंचम की सन्तति "बुन्देला" क्षत्रिय के नाम से प्रसिद्ध हुई । [15]इससे स्पष्ट है कि गहरवार विंध्यवासी हो जाने के कारण विंध्येले, विन्देले, बुन्देले §क्योंकि विन्दु से बूंद और बुन्द होना कोई अस्वाभाविक नहीं§कहलायें । उदाहरणार्थ पहाड़ पर रहने वाले "पहाड़ी, मारवाड में रहने वाले "मारवाड़ी, तथा रोह पर्वत पर रहने वाले "रूहेले, कहलाये । बुन्देला राजपूतों का शासन इस भू-भाग पर अधिक समय तक रहा, इससे इसका नाम "बुन्देलखण्ड" पड़ा, जो स्वाभाविक ही है, यह प्रवृति अन्य क्षेत्रों के नामकरण में

---

12. मध्ययुगीन भारत, भाग 3, पृष्ठ 49
13. बुन्देलखण्ड का इतिहास-पं॰ गोरेलाल तिवारी पृष्ठ 114
14. एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, खण्ड 4, पृष्ठ 382,

15. प्रथमहि राज आपनो पायों । परम मोगनहार कहायों ।
    यह कह हाथ माथ पर राखे । पुहिमी प्रगट बुन्देला भाखें ।।
    -छत्रप्रकाश, सम्पादक, श्यामसुन्दरदास, ना॰प्र॰स॰काशी पृष्ठ 7

देखी जा सकती है जैसे- बघेलो से "बघेलखण्ड, और रुहलो से "रुहेलखण्ड" ही नहीं जाति के आधार पर "जटवारी, "भदावर" सिकरवार "तबरघार" आदि नाम भी पड़ गये । [16]महाराज छत्रसाल के राजकवि की भी यही धारणा है । इस भू-भाग में "बुन्देलराज्य के संस्थापक वीर पंचम की चौथी पीढ़ी में राजा अर्जुनपाल महोनी आये और उनके पुत्र सोहनलाल ने संवत 1313 में खंगारों से झांसी के आस पास का राज्य छीन लिया । गढ़ कुण्डार से संवत 1596 में राजधानी ओरछा में आई । संवत 1822 में लिधौर और फिर टीकमगढ़ पहुंची । बुन्देल लोग सर्व प्रथम यमुना के दायें किनारे पर बसे, आगे चलकर इन्होने ओरछा पर अधिकार कर लिया था । ओरछा स्टेट गजेटियर से पता चलता है कि शेरशाह में कालिंजरपर आक्रमण करने के समय ओरछा के राजा भारतीचन्द ने अपने भाई मधुकरशाह को इसका सामना करने भेजा था । इस प्रकार से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि "बुन्देलों का राज्य बारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर अठारहवीं शताब्दी तक श्रृंखलित रूप में चलता रहा, और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व छोटे-छोटे जागीरदार बने हुये इस क्षेत्र पर शासन करते रहे हैं । अतः बुन्देलों के साथ "बुन्देलखण्ड" का नाम जुड़ना समुचित जान पड़ता है ।[16] पुनश्चय ज-जाहुति की स्मृति में आज भी बुन्देलखण्ड के ब्राह्मणों और वैश्यों की एक जाति "जुझौ "जजाहुतियां" अथवा "जुझौतियां" नाम से पुकारी जाती है । महोबा के पीर

---

16. बुन्देली लोक साहित्य, डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेही" पृष्ठ 3

मुहम्मद शाह की दरगाह में लगे पत्थर पर खुदे हुये लेख की पंक्ति है: से यह नाम स्पष्ट होता है । अतएव इन सब प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि समय समय पर इस भूभाग का नाम "दशार्ण, 'बज्र', जेजाकभुक्ति, जझौति, जुझारखण्ड तथा विन्ध्येलखण्ड, भी रहे है ।

ऐसा भी प्रतीत होता है कि विन्ध्यवासिनी देवी अथवा विन्ध्याचल श्रृंखला में स्थित होने के कारण इस प्रदेश का नाम "विन्ध्येलखण्ड" पड़ा, जो बाद में "बुन्देलखण्ड" हो गया हो । बुन्देलो का कई वर्षों तक शक्तिशाली राज्य होने के कारण बुन्देलखण्ड नाम तो निश्चित ही है ।

ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक प्रमाणों के अनुसार बुन्देलखण्ड का क्षेत्र ईसापूर्व छठी शताब्दी में चेदि राज्य में सम्मिलित था, और चेदि उत्तर भारत के सोलह महाजन पदो[17] में से एक था । उस समय विति होत्र वंश के शासकों का शासन था । लगभग तीसरी चौथी शताब्दी ई.पू. में यह भाग आर्यपुत्र अशोक अपने पिता के राज्यकाल में अवन्ति प्रान्त के मुख्यालय उज्जैन से इस प्रान्त का शासन करता था । लगभग 272 ई.पू. में अशोक राजगद्दी पर बैठा दतिया जिला केगुजरो लघु शिला अभिलेख[18] से यह प्रमाणित है, कि यह क्षेत्र अशोक के साम्राज्य में सम्मिलित था । मौर्यों के पश्चात शुंग शासकों में पुष्यमित्र शुंग का शासन इस क्षेत्र पर था । उस समय राजकुमार अग्निमित्र विदिशा में राज्यपाल के रूप में नियुक्त था, जहां से बुन्देलखण्ड तथा पूर्वी मालवा का शासन चलाता था[19]। यवनो के आक्रमणों का उल्लेख पंतजलि के महाभाष्य में भी हुआ है । हमीरपुर जिला के पचोहर गांव से मिले हुये इण्डोग्रीक सिक्के

---

17. दि राज आफ इम्पीरियल यूनिटी (भा. विद्याभवन सीरीज संख्या 2) पृष्ठ 1-9
18. अशोकके अभिलेख, राजबली पाण्डेय, पृष्ठ 117
19. बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, डा0 एस.डी. त्रिवेदी राज0सं0झांसी पृष्ठ सं0 1984, पृष्ठ 13

[20] इस मत को बल प्रदान करते है, कि इस क्षेत्र में यवन राजाओं का शासन रहा होगा । लगभग प्रथम शताब्दी के अन्तिम भाग में यह क्षेत्र कुषाणवंश के महान सम्राट कनिष्क के साम्राज्य में सम्मिलित हो गया था । इसके पश्चात यह क्षेत्र नाग-शासकों के आधीन हो गया, दूसरी शताब्दी के अन्त तक समुद्र गुप्त. §335 से 375ई0§ का एरण अभिलेख[21] इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है, कि उस समय यह क्षेत्र गुप्त साम्राज्य का अंग बन गया था । इसक्षेत्र में समुद्रगुप्त के सिक्के भी प्राप्त हुये है । पुनश्च हर्षदेव और कलुचरियों ने यहां शासन किया । कीर्तिवर्मन और मदनवर्मन के पश्चात चन्देलवंश के अन्तिम शासक राजा परिमर्दिदेव पर पृथ्वीराज चौहान ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया । कुछ दिनों दिल्ली साम्राज्य में रहने के पश्चात यह क्षेत्र मुसलिम आक्रमणकारियों से प्रभावित एवं शासित रहा । गौड़ शासकों में प्रसिद्ध संग्रामसिंह प्रतापी राजा हुआ । यह 1515 ई0 में गद्दी पर बैठा । तेरहवीं शताब्दी के मध्य में बुन्देल-सत्ता का उदय हो गया था । वीरसिंह देव प्रथम इस वंश का सर्वाधिक प्रतापी राजा था तदुपरान्त बुन्देला वीर चम्पतराय §1637-1641ई0§ में मुगलों से डटकर मोर्चा लिया ।[22] इसके बाद उसके साहसी एवं वीर पुत्र छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड को पुन: संगठित करके अपना विशाल साम्राज्य स्थापित किया, वह बड़ा प्रतापी दूरदर्शी और वीर राजा था ।[23] विपत्ति के दिनो में बाजीराव पेशवा ने छत्रसाल की अभूतपूर्व मदद की थी । इस प्रत्युपकार के प्रतिदान में साम्राज्य का एक तिहाई भाग

20• कल्चरल हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड , एम• एल• निगम, पृष्ठ 28

21• इन्सक्रिप्शनम इण्डीकेरम, फ्लीट कर्पास, भाग 3, पृष्ठ 18

22• ए हिस्ट्री आफ बुन्देलाज, डब्लू• आर• पागसन, पृष्ठ 13-16

23• उपर्युक्त, पृष्ठ 56

बाजीराव को देना स्वीकार कर लिया ।[24] इसीसे बुन्देलखण्ड में मराठों का शासन स्थापित हो गया ।

इस प्रकार 1738 ई0 में जालौन राज्य की स्थापना की गई । गोविन्दराव के पश्चात उसकी पौत्री ताईबाई सन् 1857 ई0 तक जालौन की शासिका रही । 29अक्टूबर 1857 को तात्याटोपे का जालौन शुभागमन हुआ, तथा 25 मई 1858 ई0 में §मध्यान्हबेला में§ झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने लक्ष्मीनारायण मन्दिर§जालौन§ में विश्राम किया । जालौन राज्य का अपना एक स्वतन्त्र झंडा था जो लाल रंग का था । इसकी अपनी टकसाल भी थी । महोबा से 13 मील दूर श्रीनगर में गोविन्दराव द्वारा बनवाया मन्दिर है । जिस पर शिवरात्रि के दिन भगवा झण्डे के साथ जालौन राज्य का झण्डा आज भी फहराया जाता है । 1858 ई0 से जालौन राज्य अंग्रेजो के आधीन कर लिया गया। 1902 ई0 में ज्वालाप्रसाद कलैक्टर जालौन ने ज्वालागंज नामक बाजार का निर्माण कराया । यहां बालाजी, गोविन्देश्वर, लक्ष्मीनारायण एवं मुरलीमनोहर के मन्दिर प्रसिद्ध एवं प्राचीन है । इसके अतिरिक्त छोटी बावड़ी मेंयहां के राजपरिवार की अनेक समाधियां बनी हुई है । गोकुलेश मन्दिर, भैरव मन्दिर, बम्बई वालों का मन्दिर एवं द्वारिकाधीश मन्दिर यहां के अन्य दर्शनीय मन्दिर है । जौलाई सन् 1934 ई0 को छत्रसाल जूनियर हाईस्कूल की स्थापना की गयी, जो कालान्तर क्रमशः हाईस्कूल §1946ई0§ इण्टरमीडिएट §1950ई0§ कालेज बना ।[26]

---

24. बाजीराव दि फर्स्ट दि ग्रेटपेशवा, सी.के.श्रीनिवासन, पृष्ठ 79
25. दि मराठा सुप्रीमेसी, सी.के.श्रीनिवासन, पृष्ठ 82-83
26. लोकसंगम, सम्पा.राजाराम पाण्डेय, छत्रसाल इण्टर कालेज पत्रिका का 'बुन्देली अंक' 1971-72 पृष्ठ 149 से 51।

इसी ऐतिहासिकता को अपनी गोद में समेटे जिला जालौन आज भी अपनी धीरता, बीरता, एवं आनबान और शान के लिये प्रसिद्ध है । उरई, कोटरा, सैदनगर, एट, अकोढ़ी, जालौन, कंजौसा, जगम्मनपुर, सोमई, कुठौंद, शेखपुर, बुजुर्ग, कौंच, गोपालपुरा, पिरौना, मऊ, कालपी, बबीना, कदौरा, इटौरा, परासन, तथा चांदनी आदि के ऐतिहासिक वातायनों से झांकने पर बहुत सारी अनमोल सामग्री और जानकारियाँ प्राप्त हो सकती है ।

1.4 :- साहित्यिक परिस्थितियाँ -:

साहित्य समाज का दर्पण हुआ करता है । जहां का जैसा समाज होगा उसी प्रकार का उसका साहित्य भी होगा । साहित्य और समाज का चोली-दामन का साथ है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है "साहित्य का मानव-जीवन के साथ अविच्छेद्य सम्बन्ध है, क्योंकि मानव-जीवन के परिवेश में साहित्य का जन्म और परिपोषण होता है । परन्तु इस सम्बन्ध के अनेक वृत है । साहित्य का सम्बन्ध साहित्यकार की वैयक्तिक अनुभूति चेतना के साथ ही उसके संकोच-विस्तार की परिधि के अनुसार समाज राष्ट्र और समस्त विश्व के साथ भी है । कलाकार की साहित्य चेतना समसामयिक युग-जीवन से निरपेक्ष रहकर, निराधार शून्य में रचना नहीं करती, अपितु उसके कला चित्र की निर्मिति किसी चित्रपट§कैनवास§ पर ही होती है । जिस जगत में वह उत्पन्न होता है, बढ़ता है, जीता है- उसकी परिस्थितियों से प्रभावित होना और वहीं से अपने लिये चित्रपट ग्रहण करना उसके लिये अनिवार्य है । वह समाज और संसार का ही अंग है ।अंगी और उस पर पडने वाले प्रभावों से अंग का सर्वथा पृथक और अप्रभावित रहना असंभव है । चाहकर भी कलाकार उन प्रभावों से अपने को अछूता नही रख सकता । जगत में अपने चतुर्दिक अनुगुंजमान रागिनी से प्रतिध्वनित हुये बिना उसकी अन्तरतंत्री रह ही नहीं सकती । इस

प्रकार कोई भी साहित्य युग और जीवन से ही प्रेरणा ग्रहण करता है । प्रत्येक सृजन इतिहास और जीवन, परिवेश और वातावरण तथा परम्परा और चिन्तन से प्रभावित होता है ।[27] इस प्रकार प्रत्येक देश और क्षेत्र की सामाजिक, ऐतिहासिक राजनीतिक, धार्मिक, भौगोलिक, मनोविज्ञानिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव उसके साहित्य पर पड़ना अनिवार्य है ।

सांस्कृतिक बुन्देलखण्ड का साहित्यिक योगदान किसी भी प्रकार कम नहीं रहा है । उसकी एक विस्तृत परम्परा है । "जिस प्रकार बुन्देलखण्ड की वसुन्धरा को वीरता के क्षेत्र में वरदान प्राप्त है, उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में बुन्देलखण्ड, को वरदान प्राप्त है, इसी बुन्देल भूमि ने अनेक साहित्यकारों एवं गद्य लेखकों को अपनी कोख से जन्म दिया है, जिन्होंने अपनी अटूट साधना द्वारा बुन्देलखण्ड को गौरवान्वित किया है । वैदिक और पौराणिक काल से आज तक बुन्देलखण्ड के साहित्यकारों ने ख्याति अर्जित की है। विगत शताब्दी में समस्त राष्ट्र और विश्व को नव-चेतना देने के कार्य में बुन्देलखण्ड के साहित्यकारों ने प्रशंसनीय योगदान किया है । द्विवेदी युग में ही कुछ गद्य-लेखकों ने हिन्दी गद्य-साहित्य में नव-जीवन का संचार किया । कृष्ण बल्देव वर्मा, सेठ गोविन्ददास, डा० रामकुमार वर्मा, पदमलाल पुन्नालाल बख्शी, वृन्दावनलाल वर्मा, डा० रामविलास शर्मा, और सियाराम शरण गुप्त ने हिन्दी में उपन्यास, कहानी, नाटक और आलोचना क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न की।[28] पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 14 वर्ष तक कुण्डेश्वर में रहकर जो सारस्वत-साधना की, वह अविस्मरणीय है । महाराज वीरसिंह जूदेव की प्रेरणा से "मधुकर" का प्रकाशन और "देव पुरस्कार" की संस्थापना इस क्षेत्र में अभूतपूर्व

---

27. आधुनिक हिन्दी कविता में यथार्थ बोध शोभा सोमानी राजीव प्रकाशन प्र. सं. 1993, इलाहाबाद, पृष्ठ 9

28. बुन्देलखण्ड दर्शन, मोतीलाल त्रिपाठी "अशान्त" शारदा साहित्य कुटीर, झांसी प्रथम संस्क० 1980, पृष्ठ 322-23,

विजातीयों के विरुद्ध संघर्ष करने तथा राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा करने हेतु यह जनपद सजग रहा है । पृथ्वीराज तथा परमाल के मध्य सिरसा तथा अकोड़ी §बैरागढ़§ के ऐतिहासिक युद्ध इसी जनपद में हुयें । बुन्देलखण्ड के संस्थापक महाराज छत्रसाल की शौर्यभूमि यह जनपद है । उनके द्वारा जीते गये बावन युद्धों में कोटरा का युद्ध यहीं हुआ था । प्रथम स्वातंत्र्य-समर कालगमन दो माह तक संचालन काल्पी के ~~कल्पी~~ चन्देल दुर्ग से हुआ था । रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, नाना साहब, राजा कुंवर सिंह तथा ताईबाई का यह क्रान्ति क्षेत्र रहा । स्वराज्य-आन्दोलन में पं० जवाहरलाल नेहरू की प्रथम गिरफ्तारी नव आनन्द भवन में हुई, तब उनके साथ इस जिले के पं० मन्नीलाल पाण्डेय भी बन्दी बनाये गये थे, उनके अतिरिक्त पं० बेनी माधव तिवारी तथा पं० चतुर्भुज शर्मा अग्रणी स्वतन्त्रता सेनानी एवं राजनेता रहे ।

हिन्दी साहित्य की परम्परा यहाँ कवि बीरबल "ब्रह्म" से प्रारम्भ होती है । काल्पी में उनका रंग महल अब भी विद्यमान है । हिन्दी के आठ सर्वांग निरुपक आचार्यों में एक आचार्य श्रीपति काल्पी के थे । जैमिनी पुराण को हिन्दी काव्य में रुपान्तर करने वाले कवि रतिभान इटौरा, ब्रजभाषा के रससिद्ध महाकवि कालीदत्त नागर, राष्ट्रीय ओज के चर्चित कवि द्वारिका प्रसाद "रसिकेन्द्र" डा० आनन्द, पं० प्रभुदयाल द्विवेदी "दयालु" पं० मोहनलाल शाण्डिल्य, शिवराम "मणीन्द्र" एवं रीतिकार दीनानाथ "अशंक" का जनपद भी यही है । सुप्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता बाबू कृष्ण बल्देव वर्मा तथा विशाल भारत के सह सम्पादक रहे, सशक्त गद्यकार ब्रजमोहन वर्मा भी मूलतः काल्पी के निवासी थे, उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर बाबू हर गोविन्द दयाल "नश्तर" तथा काव्य शूरि की उपाधि से सम्मानित संस्कृत कवि रामनाथ चतुर्वेदी "द्विम्र" कालीचरण दीक्षित "फणीन्द्र" भी इसी जिले के थे ।

हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास जालौन जनपद के समाचार पत्रों और पत्रकारिता की चर्चा किये बिना अधूरा रहेगा । क्योंकि इसने न केवल ऐसे पत्रकार दिये जिन्होंने राष्ट्रीय स्तर के पत्रों का प्रकाशन करके अथवा श्रमजीवी पत्रकार के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर पत्रकारिता की अग्रिम पंक्ति में स्थान प्राप्त किया । इनमें विश्वमित्र तथा "एडवांस के संस्थापक बाबू मूलचन्द्र अग्रवाल §कोटरा§ का नाम सर्वोपरि है । जिन्होंने सन् 1911 ई० में कलकत्ता से "दैनिक विश्वमित्र" का प्रकाशन किया था । इस पत्र के दो श्रेय है । पहला यह कि व्यावसायिक स्तर पर विज्ञापन को महत्व देकर दैनिक प्रकाशन, दूसरा यह कि एक पत्र को कई प्रांतों से निकालने का सफल प्रयास । यह पत्र कलकत्ता के अतिरिक्त बम्बई, पटना एवं कानपुर से भी प्रकाशित हुआ । दैनिक जागरण समूह के संस्थापक सर्व श्री जयचन्द्र आर्य, पूर्णचन्द गुप्त तथा जगदीश नारायण रूसिया सभी कालपी के ही थे । यह समूह आजकल उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश का प्रमुख अखबार प्रकाशक है । श्रमजीवी पत्रकारिता में देश के ख्याति प्राप्त पत्रकार श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी इस जनपद में जगम्मनपुर के मूल निवासी है । सांसद तथा संविधान सभा के सदस्य रहे बाबू बृजबिहारी मेहरोत्रा तथा क्रान्तिकारी सुरेश चन्द्र भटटाचार्य ने सन् 1913 ई० में यहां से साप्ताहिक "देहाती" निकाला था, जिसके परवर्ती सम्पादक पं० बेनीमाधव तिवारी को, एक क्रान्तिकारी आलेख लिखने पर तीन वर्ष की सजा भुगतनी पड़ी थी तथा प्रकाशन बन्द कर दिया गया था । एक दर्जन से अधिक समाचार पत्रों के सम्पादक तथा सम्पादकीय विभागो में रहे श्री शम्भूदयाल "शंशाक" भी उरई के थे इस जनपद के पत्रकारों की संघर्ष-चेतना प्रान्त में सुपरिचित है । वर्तमान में लखनऊ से प्रकाशित होने वाले दैनिक "लखनऊ मेल, दैनिक अमृत विचार" सीतापुर से प्रकाशित होने वाले "दैनिक व्यास" भारतीय तथा दिल्ली से प्रकाशित "मासिक दिग्विजय" के स्वामी इसी जनपद के मूल निवासी हैं । संप्रति जिला मुख्यालय से छः हिन्दी

दैनिक नियमित प्रकाशित होते है । यह है- "दैनिक कर्मयुग प्रकाश , "दैनिक लोक सारथी, दैनिक सोच समझ, "दैनिक एलार्म, "दैनिक अग्निचरण", दैनिक दीवान, कला के क्षेत्र में रागमाला और बारहमासा के मिनिएचर पेटिंग्स के कुशल चित्रकार कोंच निवासी पं० मन्नन मिश्र, नैनसुख डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जो योगदान दिया, उससे बिरले लोग परिचित है । इस परम्परा को श्री मन्ना धूसर जैसे कलाकारों ने आगे बढ़ाया। इन दोनों चित्रकारों के रंग चित्र मेरे पास सुरक्षित है । "सरस्वती" चांद" तथा "सुधा" जैसी पत्रिकाओं में श्री भगवती शरण सक्सेना, के रंगचित्र प्रायः प्रकाशित होते थे । देश के विख्यात संगीतकार विश्वनाथ भातखण्डे के संगीत गुरू पं० उमादत्त मिश्र एवं प्रभुदयाल मिश्र इसी जनपद के निवासी थे[29] ।

मासिक "अंकुर" साप्ताहिक "अगस्त एवं मासिक "मधुस्यन्दी के प्रकाशन भी उल्लेखनीय रहे है जिनका सफल सम्पादक क्रमशः डा० जयश्री, पुरवार, रमेश अग्रवाल, एवं डा० रामस्वरूप खरे ने किया । सबकी खैर खबर" के सम्पादक नासिर अली "नदीम" का नाम भी इस क्षेत्र में कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता ।

इसी प्रकार लेखकों और सम्वाददाताओं में डा० रामशंकर द्विवेदी डा० दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव, डा० राजेन्द्र कुमार पुरवार, डा० रामस्वरूप खरे, हरीमोहन पुरवार हरनारायण गुप्त, अयोध्या प्रसाद गुप्त "कुमुद" रामेश्वर दयाल श्रीवास्तव, अनिल शर्मा, के०पी० सिंह, डा० जयदयाल सक्सेना, इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

29- स्मारिका, उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन वार्षिक अधिवेशन 22-23 अक्टूबर 94 में अयोध्या प्रसाद गुप्त "कुमुद" का लेख" जालौन जनपद की सांस्कृतिक-साहित्यिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 19 , -20

1.5 :- सभ्यता एवं संस्कृति -:

आंग्ल भाषा के "सिविलाइज्ड" शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के "सिविटाज" और "सिविस" से हुई, जिसका अर्थनगर या नगर निवासी है । जो एक स्थान पर स्थायी रूप से रहते तथा जो शिक्षित है और जिनका व्यवहार जटिल है । एक सुप्रसिद्ध समाज शास्त्री के मतानुसार एक सभ्य समाज के लोग घुमन्तू जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा बड़ी संख्या में स्थायी निवास बनाकर रहते है । उनकी लिखित भाषा होती है, उनमें कार्य विभाजन एंव विशेषीकरण पाया जाता है, उनका व्यवहार औपचारिक रूप से आदिम समाजों की अपेक्षा संस्थाकृत एवं जटिल होता है[30]। जबकि एक अन्य विद्वान महोदय सभ्यता एवं संस्कृति को एक ही मानते हैं । उनके मतानुसार हम असभ्य व्यक्तियों के संदर्भ में ही सभ्य व्यक्तियों की चर्चा करते है । उच्च सभ्यता का निर्णय बौद्धिक, ललितकला, प्रौघोगिकी और आध्यात्मिक उपलब्धि-यों के आधार पर किया जा सकता है[31]। टायलर महोदय सभ्यता को मानव जाति की विकसित अवस्था स्वीकार करते है[32]।

---

30. सोसोलॉजी, जे.एच. फिचर, पृष्ठ 270

31. डिक्शनरी आँव सोसोलॉजी, एच.पी.फेयरचाइल्ड, पृष्ठ 14

32. क्योटिड ब्रूमण्ड सेल्जनिक, ई.बी. टायलर, पृष्ठ 77

मैकाइवर एवं पेज सभ्यता में उन भौतिक तत्वों को परिगणित करते है. जो हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करते है और जो हमारे उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये साधन के रूप में प्रयुक्त होते है । टाईपराइटर, टेलीफोन, प्रेस, फैक्टरी, डाक-तार, बैंक, यातायात के साधन, अस्त्र-शस्त्र आदि सभी का उपयोग हम मानव आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिये करते है. और ये हमें आनन्द एवं सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। ये सभी सभ्यता की श्रेणी में आते हैं । अर्थात "सभ्यता से हमारा अर्थ उस सम्पूर्ण यन्त्र- पद्धति और संगठन से है, जिसको मनुष्य ने अपने जीवन की दशाओं को नियंत्रित करने के लिये निर्मित किया है[33]।" इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सभ्यता में हम मानव द्वारा निर्मित भौतिक वस्तुओं को सम्मिलित करते है । दूसरे सभ्यता मूर्त होती है । तीसरे सभ्यता मानव आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है । यह मानव को आनन्द और सन्तुष्टि प्रदान करती है । चौथे सभ्यता संस्कृति के विकास का उच्च स्तर है । पाचवें सभ्यता की माप सरल एवं सहज है । छटवें सभ्यता सदैव आगे की ओर गतिशील होती है अतः वह प्रगतिशील है । सातवें सभ्यता का हस्तान्तरण एवं ग्राहयतासरल है । आठवें सभ्यता मानव आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है. तथा नौवें सभ्यता का सम्बन्ध मानव के बाह्य जीवन से है ।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से सभ्यता शब्द "सभ्य" से निष्पन्न है, जिसका स्पष्ट सम्बन्ध सभा से है । सभ्यता मूल अर्थ में तो व्यवहार की साधुता की द्योतक होती है "सभायां साधवः सभ्याः किन्तु अर्थ विस्तार से यह शब्द रहन-सहन की

---

33. सोसायटी, मैकाइवर एवं पेज पृष्ठ 498

की उच्चता तथा सुखमय जीवन व्यतीत करने के साधनों जैसे -कला-कौशल, स्थापत्य, ज्ञान-विज्ञान, की उन्नति पर लागू होता है[34]। सभा में बैठने की समझ रखने वाला या उसमें बैठने वाला "सभ्य" कहलाता है, और सभ्य का उचित व्यवहार "सभ्यता" है। सभा का अर्थ ही गोष्टी, समिति आदि है। अर्थात सभ्य समूहवाची संज्ञा है, अतः सभ्यता शब्द सामाजिक व्यवहार के उचित ज्ञान का सूचक हुआ। सभ्यता का एक अन्य अर्थ सदस्यता भी है। सदस्यता किसी सभा या समाज इत्यादि की हो सकती है। इस प्रकार सभ्यता एक सामाजिक गुण है, जिसके अन्तर्गत संसार की अपेक्षा मनुष्य की व्यवहार कुशलता और रीति-नीतियों को महत्व दिया जाता है, जबकि मनुष्य के सर्वागीण विकास के लिये आत्मगत और समाजगत दोनो संस्कारों की अनिवार्यता है। व्यक्तिगत संस्कारों से आत्मानुशासन द्वारा पाशविक और अशिव भावनाओं का संयम करके मनुष्य अपने प्राकृतिक दोषों का परिमार्जन करता है। दूसरी ओर वह समाज से इस विज्ञान की परम्परागत धरोहर को प्राप्त करता हुआ शील, शिष्टाचार, रीति-व्यवहार आदि सीखकर अपने व्यक्तित्व को निखारता है। आत्मगत संस्कारों की स्वरूप प्रायः सार्वभौम है। किन्तु सामाजिक संस्कारों में देशकाल -भेद के कारण विशिष्ट समाज विशिष्ट ढंग से आदर्श निरूपित करते है, सभ्यता के अन्तर्गत शिष्टाचार और विधि-निषेधों का ज्ञान और पालन करना सामाजिक एकरूपता और व्यवहार -साम्य की सृष्टि करता है, इसके अतिरिक्त व्यक्ति को

---

34. सांस्कृतिक भारत, भागवत शरण उपाध्याय, पृष्ठ 5,

समाज के प्रति शिष्ट आचरण का ज्ञान होता है[35]। इस प्रकार सभ्यता निश्चित रूप से एक वाह्य आवश्यकता है। मनुष्य अपने सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जो कुछ भी उपयोगी उपकरण प्रस्तुत करता है, वे सब सभ्यता के अन्तर्गत ही परिगणित किये जाते है। इस प्रकार निःसन्देह सभ्यता तो वाह्य व्यवहार की वस्तु है[36]।

यद्यपि सभ्यता एवं संस्कृति परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। अतः कई बार दोनों का प्रयोग समान अर्थो में किया जाता है, फिर भी इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। सभ्यता को मापना सरल है क्योंकि इसका सम्बन्ध भौतिक वस्तुओं की उपयोगिता से है। सभ्यता को वस्तुओं के गुणों एवं कुशलता के आधार पर माप सकते हैं। सभ्यता साधन है, जिसके द्वारा हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अतः वस्तु की उपयोगिता एवं गुणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि कौन सी वस्तु किसकी तुलना में अधिक उपयोगी है। उदाहरणार्थ बैल-गाड़ी की तुलना में रेल और चरस की अपेक्षा पम्पिंग सेट तथा वस्तु विनियम के स्थान पर मुद्रा विनियम अधिक उपयोगी है। वस्तुओं के गुणों एवं उपयोगिता का मूल्यांकन हम इस आधार पर करते है कि वे हमारे उद्देश्यों की पूर्ति में कहां तक सहायक हैं, इसके विपरीत संस्कृति की माप संभव नहीं है। वह साध्य है। एक संस्कृति को दूसरी संस्कृति से श्रेष्ठ या हीन नहीं बताया जा सकता क्योंकि प्रत्येक संस्कृति अपने युग एवं परिस्थितियों की देन होती है, प्रत्येक समाज की अपनी मूल्य अवस्था होतीहै।

---

35. भारतीय संस्कृति, गुलाबराय, पृष्ठ 2

36. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, डा० कृष्णा अवस्थी, पृष्ठ 36

मूल्यों में भिन्नता के कारण कोई ऐसा सर्व मान्य पैमाना नहीं है, जिसके आधार पर किसी संस्कृति को मापा जा सकें और एक ही तुलना में दूसरी को अच्छी या बुरी कहा जा सकें । सभ्यता सदैव आगे बढ़ती है, किन्तु संस्कृति नहीं । सभ्यता उन्नतिशील है, और वह एक दिशा में उस समय तक निरन्तर प्रगति करती है, जब तक कि उसके मार्ग में कोई बाधायें न आयें ।

संस्कृति पूर्णतः और निहित शक्तियों का परिचय देती है । इसका महत्व इस बात में नहीं कि हमारे पास क्या है, बल्कि इस बात में है कि हम क्या बन रहे हैं ? यह बाहरी स्थिति नहीं मानसिक और आत्मिक अवस्था है[37] । सुप्रसिद्ध विचारक एवं सांस्कृतिक युगकवि दिनकर का भी कुछ ऐसा ही अभिमत है । यथा- सभ्यता यह बताती है कि हमारे पास क्या है?, जबकि संस्कृति से यह पता चलता है कि हम स्वयं क्या है ?, संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज होती है । यह सभ्यता के भीतर उसी तरह रहती है जैसे दूध में मक्खन और फूल में सुगन्ध[38] । इस प्रकार "सभ्यता समाज की वाह्य अवस्था का नाम है । संस्कृति व्यक्ति के अन्तर के विकास का[39] । "सभ्यता भौतिक विकास की जययात्रा है, और संस्कृति विचार विश्वास, रूचि, कला और आदर्श की दुनिया है ।[40] "सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारों, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक, राजनीतिक संस्थाओं से समझना चाहिये जिनके द्वारा मनुष्य जीवन यात्रा सरल होती है, और स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होता है । इसके विपरीत संस्कृति का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियायें समझनी चाहिये जो मानव-व्यक्तित्व और जीवन के लिये साक्षात उपयोगी न होते हुये भी उसे समृद्ध बनाने वाली है । इस दृष्टि से हम विभिन्न शास्त्रों

---

37. कल्चर एण्ड एनार्की, मैथ्यू अर्नाल्ड, पृष्ठ 10.

38. संस्कृति और सभ्यता (वट-पीपल), रामधारी सिंह दिनकर,

39. विचार और वितर्क, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 123,

40. सांस्कृतिक भारत, भागवतशरण उपाध्याय, पृष्ठ 12

दर्शन आदि में होने वाले चिन्तन, साहित्य चित्रांकन आदि कलाओं और परहित साधन आदि नैतिक आदर्शों एवं व्यापारों को संस्कृति की संज्ञा देते हैं[41]। संस्कृति में केवल कलाओं दर्शन, धार्मिक एवं नैतिक परम्पराओं का ही सन्निवेश नहीं है, अपितु उसकी व्यापक परिधि में मानव जाति का समस्त चेतनामूलक जीवन आ जाता है। उसका सम्बन्ध मानव की अन्तश्चेतना, सौन्दर्यानुभूति और आनन्दोल्लास आदि तत्वों से है, जबकि सभ्यता भौतिक सुख सामग्री के संयोजन और उसके लिये आवश्यक संगठित प्रयासों का परिणाम है। संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा से है, और सभ्यता का सम्बंध कार्य-कलापों से है[42]। प्रारम्भ में सभ्यता इतनी समृद्ध नहीं थी। आविष्कारों एवं खोजों के कारण उनमें नवीन तत्व जुड़ते गये, और आज वह पहले की अपेक्षा कई गुना समृद्ध है। किन्तु संस्कृति के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। हम यह नहीं कह सकते कि शेक्सपियर के नाटक आज के नाटकों से अच्छे या बुरे थे। वैदिक कालीन साहित्य, मनोरंजन, नैतिक आदर्श, प्रथायें धर्म, कला, चित्रकारी आदि को आज के युग से कम या अधिक श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि संस्कृति की प्रगति की कोई दिशा निर्धारित नहीं है। यह उत्थान और पतन के दौर से गुजरती रहती है, इसके गौरव-शाली अतीत के आधार पर निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि उसका भविष्य और भी गौरवशाली होगा। इस प्रकार निःसन्देह सभ्यता संस्कृति की वाहक है। सभ्यता संस्कृतिक क्रियाओं को शक्ति प्रदान करती है। सभ्यता संस्कृति का पर्यावरण है।

---

41. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ 869,

42. भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, संस्करण सम्वत 1014, डा० प्रसन्नकुमार आचार्य, पृष्ठ 3,

तथा संस्कृति ही हमारी सभ्यता की दिशा को प्रभावित करती है । यों सभ्यता एवं संस्कृति में भेद होते हुये भी दोनों में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है । निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यदि संस्कृति ने मानव को पशु-स्तर से ऊंचा उठाया है तो सभ्यता ने उसे श्रेष्ठ प्राणी होने का गर्व प्रदान किया है ।

मानव इसीलिये मानव है कि उसके पास संस्कृति है । एक प्रकार से सभ्यता मानव की उन्नति का साधन है, और संस्कृति साध्य । सभ्यता के उपकरण मनुष्य के विकास के सूचक है, पर वे केवल साधन मात्र है, स्वयं लक्ष्य या साध्य नहीं । उनकी सार्थकता मूल्यांकन उपयोगिता की कसौटी पर किया जाता है । परन्तु साध्य का मूल्यांकन नहीं होता प्रत्युत उसकी दृष्टि से उन साधनों का मूल्यांकन किया जाता है कि वे उक्त लक्ष्य के कहाँ तक अनुकूल है ।[43] सभ्यता आदर्श और मूल्य निर्धारित नहीं कर सकती इसी से केवल सभ्यता की अधाधुन्ध उन्नति अनेक सामाजिक और नैतिक समस्याओं को जन्म देती है । उदाहरण के लिये -आधुनिक युग के अणु और हाईड्रोजन बम, राकेटों आदि के आविष्कारों को एक मत से भौतिक वैज्ञानिक उन्नति का चरम विकास कहा जा सकता है पर इसका प्रयोग मानव जाति के लिये क्या हो ? इसका निर्णय संस्कृति को लेना होगा, क्योंकि वही सभ्यता की उपयोगिता के मूल्यांकन के लिये प्रतिमान उपस्थित करती है ।[44] क्योंकि किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन-व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों की समष्टि ही तो संस्कृति है ।[45] निरन्तर विकासशील जीवन, प्राकृतिक पर्यावरण इतिहास और परम्पराओं के समन्वित प्रभाव का नाम ही संस्कृति है । यह स्वाभाविक और अनायास ही धीरे धीरे चरित्र में रम जाने वाला तत्व है । अतः किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के

43- समाज शास्त्र के मूल तत्व, सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, पृष्ठ 331-32

44. हिन्दी विश्व कोश, बारहवां खण्ड, पृष्ठ 448

45. भारतीय संस्कृति का विकास, वैदिक धारा, मंगलदेव शास्त्री पृष्ठ 4

बलपूर्वक दूसरी संस्कृति में दीक्षित नहीं किया जा सकता है । सभ्यता अपेक्षाकृत अमरी तत्व है । उसे ग्रहण करने को विवश किया जा सकता है । सभ्यता का हस्तान्तरण उद्योगरहित होता है । देश, धर्म आदि उसमें बाधक नहीं होते ।परन्तु संस्कृति सूक्ष्मतत्व होने के साथ-साथ किसी देश के भौगोलिक और प्राकृतिक स्थितियों, सामाजिक परम्पराओं, रीति-नीतियों, और लोक विश्वास आदि से अनुप्राणित होने के कारण देशगत या समाजगत परम्परा के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र की निजी सम्पत्ति होती है ।[46] सभ्यता के पीछे शहरपन का स्पर्श है । यह नगरों से निकली हुई चीज मालूम होती है, किन्तु संस्कृति ग्रामों के सहज जीवन की याद दिलाती है[47]। संस्कृति के अभाव में मानव को पशु से श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता। संस्कृति ही मानव की श्रेष्ठतम धरोहर है । जिसकी सहायता से मानव पीढ़ी-दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहा है, प्रगति की ओर उन्मुख होता रहा है । यदि मानव से उसकी संस्कृति छीन ली जावें, तो जो कुछ शेष बचेगा, वह केवल अन्य पशुओं के समान एक प्राणी है । मानव और पशु में मुख्य अन्तर संस्कृति का ही तो है । मनुष्य अपने मेधावी मस्तिष्क की सहायता से सोच सकता है, जबकि पशु नहीं । मनुष्य तर्क प्रस्तुत कर सकता है, कार्य-कारण सम्बन्धों का पता लगा सकता है, और अनेक आविष्कार कर सकता है । इन सब विशेषताओं के अतिरिक्त भाषा के आविष्कार ने मानव को वह शक्ति प्रदान की है, जिसकी सहायता से वह विचारों का आदान प्रदान कर सकता है तथा अपने चिन्तन के परिणामों को आगे आगे आने वाली पीढ़ियों को हस्तान्तरित कर सकता है । वास्तव में भाषा और प्रतीकों के माध्यम से ही मानव

---

46. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास का सांस्कृतिक अध्ययन, डा० कृष्णा अवस्थी पृष्ठ 44

47. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी दिनकर, पृष्ठ 10

ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति कर पाया है । अतः स्पष्ट है कि मानव ही विश्व में एक ऐसा प्राणी है[48] जो अपनी इन विशेषताओं व क्षमताओं के कारण संस्कृति का निर्माण कर पाया है । अतएव संस्कृति एक अवधारणा मात्र है । वह है एक अन्तः प्रक्रिया, जो किसी समाज में निरन्तर प्रवाहित रहती है[49] । इस प्रकार "संस्कृति कला एवं उपकरणों में व्यक्त संस्कारगत ज्ञान का संगणितरूप है, जो परम्परा में रक्षित होकर मानव-समूह की विशेषता बन जाता है[50] । इसी प्रकार श्री चन्द जैन ने रालफिल्टन का मत अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक में व्यक्त किया है "संस्कृति सीखे हुये व्यवहारों एवं उनके परिणामों की वह व्याख्या है जिसके निर्माणकारी तत्व विशिष्ट समाज के सदस्यों द्वारा प्रयुक्त एवं हस्तान्तरित होते है[51] । मैकाइवर एवं पेज के मतानुसार संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार है " संस्कृति मूल्यों, शैलियों एवं भावात्मक अभियानों का संसार है । इसलिये संस्कृति सभ्यता का प्रतिवाद है । यह हमारे रहने और सोचने के ढंगों, कार्यकलापों, कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन, एवं आनन्द में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है[52] । अमेरिकन समाज शास्त्री आगबर्न ने संस्कृति को "भौतिक संस्कृति" एवं अभौतिक संस्कृति" इन दो भागों में विभाजित किया है । संस्कृति के अन्तर्गत हम मानव द्वारा निर्मित भौतिक और अभौतिक सभी तथ्यों को सम्मिलित करते हैं। मानव ही ऐसा प्राणी है जो संस्कृति का धनी है । संस्कृति ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करती है, इसके व्यवहार को निर्देशित एवं नियंत्रित करती है, उसे पशु-स्तर से ऊंचा उठाकर मानव बनाती है । सहस्त्रों, वर्षों से मानव को यह विरासत में मिलती रही है, जिस पर आज उसे गर्व है ।

---

48. महाभारत, वेदव्यास- "न हि मनुष्यात श्रेष्ठतं हि किंचित् ।
49. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, डा० उषा भटनागर पृष्ठ 9
50. लोक जीवन और साहित्य, डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ 39,
51. बुन्देली लोक साहित्य, श्रीचन्द्र जैन, पृष्ठ 2
52. सोसायटी, मैकाइवर एण्ड पेज, पृष्ठ 499

प्रत्येक संस्कृति अपने जीवनगत आदर्शों, मूल्यों, सिद्धान्तों और जीवन-पद्धतियों की विशिष्टता के आधार पर ही दूसरी संस्कृतियों से भिन्न प्रतीत होती है। एक देश की संस्कृति के निर्माण में उसका इतिहास, परम्परा और समाज सभी का महत्वपूर्ण योग रहता है। इसी से देशकाल की सीमा में बंधे हुये हमारा घनिष्ट परिचय या सम्बन्ध एक ही संस्कृति से संम्भव है। वही हमारी आत्मा और मन में रमी हुयी होती है, तथा उसका संस्कार करती है।[53] यह सत्य है कि संस्कृति और राष्ट्रीयता का घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रत्येक व्यक्ति अपना सम्बन्ध एक विशिष्ट संस्कृति से ही रख सकता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि संस्कृति का अन्तर्राष्ट्रीयता से कोई विरोध हो, क्योंकि संस्कृति में निहित सामुदायिकता का भाव राजनीतिक अथवा किसी अन्य स्वार्थपूर्ण उद्देश्य से प्रेरित न होकर लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होता है। संस्कृति ने ही सर्व प्रथम मानवता अथवा मानवीय एक्य की भावना को जगाया है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि अपनी संस्कृति से प्रेम करने का यह अर्थ नहीं" कि हम अपने विचारों को किसी प्रकार संकुचित कर लेते है। सच तो यह है कि जितना अधिक हम एक संस्कृति के मर्म को अपनाते हैं, उतने ही ऊँचे उठकर हमारे व्यक्तित्व संसार के दूसरे मनुष्यों, धर्मों, विचार धाराओं और संस्कृतियों से मिलने और उन्हे जानने के लिये समर्थ और अभिलाषी बनता है। ...एक संस्कृति में जब हमारी निष्ठा होती है तो हमारे मन की परिधि विस्तृत हो जाती है, हमारी उदारता का भण्डार भर जाता है।[54]

---

53. हिन्दी निबन्ध की विभिन्न शैलियां {शीर्षक संस्कृति का स्वरूप} वासुदेवशरण अग्रवाल पृष्ठ 243,
54. हिन्दी निबन्ध की विभिन्न शैलियां {शीर्षक संस्कृति का स्वरूप} वासुदेवशरण अग्रवाल पृष्ठ 243,

इसप्रकार भारतीय संस्कृति की कुछ मूलभूत विशेषतायें है, जिन्हें अपनाकर मनुष्य अपने-अपने वर्ण धर्मानुसार कर्तव्य पूर्ण करके पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति कर सकता है । समन्वयवादिता, मृत्युंजयता, आध्यात्मिकता, योजनाबद्ध जीवन-पद्धति, लोकमंगल की भावना, सत्य के प्रति आस्था, उदारता, सहिष्णुता, सत्य, अहिंसा, विश्व मैत्री, करुणा, त्याग एवं पंचशील की भावना आदि संस्कृति रूपी सूर्य की देदीप्यमान किरणें हैं ।

संस्कृति के महत्व का प्रतिपादन इस प्रकार किया जा सकता है- कि संस्कृति सर्व प्रथम मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करती है । दूसरे वह व्यक्तित्व के निर्माण में अपना अभूतपूर्व योगदान करती है । तीसरे संस्कृति मनुष्य को मूल्य एवं आदर्शों से परिचित कराती है । चौथे संस्कृति ही मनुष्य की रूचियों, आदतों और स्वभाव को एक अभिनव दिशा प्रदानकरने में पूर्णरूपेण सक्षम होती है । पांचवें, इसके द्वारा ही मनुष्य एवं समाज में उचित अनुचित का भेदाभेद करतेहुये वह हमें उच्चतम नैतिकता के आदर्शों की ओर ले जाती है । छटवें यही संस्कृति मनुष्य के व्यवहारों में समानता तथा एक रूपता लाती है । सातवें संस्कृति अनुभव एवं कार्य कुशलता की अभिवृद्धि करती है । आठवें संस्कृति ~~अनुभवएवं कार्य~~ व्यक्ति को सुरक्षा भी प्रदान करती है । नौवें प्रत्येक संस्कृति में प्रत्येक परिस्थिति से सम्बन्धित आचरण के नियम तय होते हैं । अतः जब भी व्यक्ति के सम्मुख कोई समस्या या संकट आता है, तो वह उनका हल अपनी संस्कृति से प्राप्त अनुभवों, ज्ञान एवं नियमों के अनुसार ढूढ़ता है । इस प्रकार वह समस्याओं के समाधान निकालने में पूर्णरूप से समर्थ होती है । दसवें मानव जन्म से ही एक जैविकीय इकाई होता है । समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा वह अपनी संस्कृति को सीखता है । संस्कृति को आत्मसात करनाही समाजीकरण है । इस प्रकार संस्कृति निश्चय रूप से मनुष्य को पशुत्व से विलग कर मनुष्यत्व की ओर ले जाकर समाजीकरण में योग देती है । ग्यारहवें, संस्कृति ही प्रस्थिति एवं भूमिका का निर्धारण करके सामाजिक नियंत्रण में अभूतपूर्व सहयोग

प्रदान करती है । इस प्रकार सच्चे अर्थों में ...सद्गुणों का समुच्चयही संस्कृति है । "मानव जीवन श्रेष्ठतम उपलब्धि मानी गई है । मनुष्य को मनुष्य रूप में श्रेष्ठतापूर्वक ही जीवन यापन करनाचाहिये । ऊंचा आचार-विचार, ऊंची यातनायें, उन्नत आदर्श और उदात्त व्यवहार मनुष्य को शोभा देते है[55] । इन सभी को संस्कृति कहते हैं ।

जिन देशों में भौतिकता का विकास नहीं होता, संस्कृति की क्रिया अवरुद्ध हो जाती है, उनकी संस्कृति मृत हो जाती है । स्पेंगलर यदि इस दशा में भारत, चीन और इस्लामी देशों की संस्कृति को मरा हुआ मानते है तो अतिशयोक्ति नहीं करतें[56] । संस्कृति की परिणति सभ्यता में होती है, यह बात स्वीकारी जा सकती पर, यह मानना सम्भव नहीं है कि सभ्यता के बिना संस्कृति हो सकती है । संस्कृति और सभ्यता का अन्योन्य सम्बन्ध है, इसीलिये यह भी कहा जाता है कि संस्कृति हीन सभ्यता हो सकती है, पर सभ्यताहीन संस्कृति नहीं । जड़ सभ्यता और जड़ संस्कृति दोनों प्रगति में बाधक होती है, इसलिये सभ्यता के लिये संस्कृति का होना आवश्यक है । इससे स्पष्ट है कि सभ्यता की रीढ़, संस्कृति है । अतः यह कहना गलत है, कि आधुनिकीकरण और सभ्यता जन-विरोधी है । दोनों की संस्कृति के विकास में अमूल्य भूमिका होती है[57] ।

आधुनिकीकरण के ऊपर एक प्रश्न चिन्ह अक्सर लगाया जाता है कि इसमें सामाजिक विरासत[58] अथवा सामाजिक परम्परा[59] का निषेध होता है, और इससे व्यक्ति स्वतन्त्रता को धक्का पहुंचता है । बात कुछ उल्टी ही है । आधुनिकीकरण का आधार सभ्यता होताहै, और सभ्यता औद्योगीकरण, तकनीकी विकास, नगरीकरण, और भौतिक उपलब्धियों की कुल जमा होती है । सभ्यता के स्तर पर पहुंचने में

---

55. अखण्ड ज्योति, सम्पा० डा० प्रणव पण्डया, जून 1995, पृष्ठ 11
56. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० देवराज, पृष्ठ 140
57. बुन्देली लोककाव्य, डा० बलभद्र तिवारी, पृष्ठ 263,
58. दि स्टडी आफ काम्पलैक्स कल्चर्स, पृष्ठ 410, 411,
59. दि स्टडी आफ काम्पलैक्स कल्चर्स, पृष्ठ 413, 414,

मनुष्य की सुरक्षा और स्वतन्त्रता निश्चित हो जाती है । वस्तुतः सभ्यता का निर्माण करके मनुष्य ने जीवित रहने की कठिन क्रिया को रोचक तथा रसपूर्ण बना लिया है, और उन जरूरतों को जो कष्ट का कारण थी, आनन्द तथा रस का स्रोत बना डाला है ।[60] फिर आधुनिकता प्रगति विरोधी हुई या विकासोन्मुखी यहीं पर हम तय कर ले कि जिस संस्कृति में सामान्य जन के जीवन की सुरक्षा स्वतन्त्रता तथा प्रगति के अवसर उपलब्ध होते है, वह जन-विरोधी कैसे हो सकती है ? संस्कृति में लोकपक्ष ही प्रधान होता है । जिन देशों की संस्कृतियों में "जन" सामान्य जन को नकार कर विशिष्ट वर्ग {इलाइट} महत्वपूर्ण हुआ है, वह एक ऐसी संस्कृति है, जिसे अभिजन यानी खास वर्ग की संस्कृति कहा जाता है । अभिजन संस्कृति की जनक शासन व्यवस्था, पूंजीवादी व्यवस्था या धर्म तंत्री व्यवस्था होती है, इसमें लोक" {जन} का पूर्ण निषेध होता है । अतः वह "फोक सोसायटी[61] और फोक कल्चर को प्रस्तुत नहीं करती है । वह कर भी नहीं सकती क्योंकि उसमें लोकधर्मिता का अभाव होता है । यदि यह लोकधर्मिता के तत्व से अनुप्राणित हो जायें, तो उसका अभिजात्य खतरे में पड़ जायेगा । बात साफ है कि लोकधर्मिता के हटने पर संस्कृति कृत्रिमता, आरोपण, निष्क्रियता और स्थिरता के गर्त में गिर जाती है, उसकी "ग्रेट ट्रेडीशन" या "यूनीवर्सलाइजेशन" की भावना की अनुपस्थिति अभिजन संस्कृति को पैदा करती है । जिसमें साहित्य, कला, जीवन-दर्शन, आदि का रूप निष्प्राण होता है । मूल्यों से इसका सीमित सरोकार होता है, जो सीमित तबके तक ही होता है । जाहिर है कि अभिजन संस्कृति अपनी जननी जन-संस्कृति को ही नकारती है ।[62]

अभिजन संस्कृति वैसे व्यापक जन-संस्कृति की धारा में अपनी एक खास भूमिका अदा करती है । एक दूसरे पर प्रभाव डालने की प्रक्रिया में यह अपने

---

60. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० दिवराज, पृष्ठ 164
61. फोक कल्चर एण्ड ओरल ट्रेडीशन, एस.एल. श्रीवास्तव, पृष्ठ 10,
62. बुन्देली लोक काव्य, डा० बलभद्र तिवारी, पृष्ठ 264

स्वार्थों की पूर्ति के लिये जो कुछ भी सम्भव हो सकता है, करती है। भ्रम, अनिश्चय मूल्यहीनता, व्यक्तिपूज्या के वातावरण के निर्माण में वह कभी त्यागी, कभी कृत्रिम जन-हितैषी कभी अभिजात्य वर्ग के रूप में प्रस्तुत होती है। जन-संस्कृति की शक्तिमत्ता से आक्रान्त अभिजन संस्कृति अपने व्यक्तिवादी स्वरूप को ढकने के लिये अनेक मुखौटे अपनाती है। इन्हीं से सावधान रहकर लोक सामान्य यदि असलियत को सामने ले आता है तो अभिजन संस्कृति के संवाहकों की पराजय होती है, और संस्कृति संकट का प्रचार[63] प्रसार होता है। यह असंगत और गलत है क्योंकि जन सामान्य का बौद्धिकता से घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। उदाहरण के लिये जन द्वारा निर्मित चित्र संस्कृति-सर्जना का अंग माना जाता है पर बौद्धिक कहलाने वाले इंजीनियर की डिजाइन का कहीं ठौर-ठिकाना नहीं होता। यहां बौद्धिकता चित्रकार के साथ सघन रूप में संसक्त है, और वह लोकधर्मिता की पक्षधर है। इस प्रकार समस्त क्रिया-व्यापारों में संस्कृति लोकधर्म की ही संवाहक होती है। अतः लोकधर्मिता को संस्कृति की समृद्धि और विकास के निमित्त आवश्यक तत्व मानना होगा। लोकधर्मिता जहां भी होती है, वह साहित्य या कला अमर हो जाता है। जिस संस्कृति, साहित्य, कला जीवन-दर्शन, भाषा और संस्कारों में लोकधर्मिता के तत्वों का अभाव होता है, वे मृत हो जाते हैं। इसके विलोम में लोकधर्मिता से संसक्त होने पर वे विशिष्ट वर्ग से दूर तथा सर्वलोक की आत्मा के रूप में स्थायी महत्व के हो जाते है। निष्कर्ष यह है कि लोकधर्मिता को काटकर संस्कृति संस्कृति नहीं रह जाती है।[64]

संस्कृति के नियामक तत्वों में भाषा, साहित्य, कलायें, संस्कार, रीति-रिवाज और जीवन-दर्शन को परिगणित किया जाता है। इतिहास से हमें संस्कृतियों की विविधता मिलती है, जिसका निरूपण विभिन्न जातीय तथा स्थान सम्बन्धी मानव

---

63. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा0 देवराज, पृष्ठ 1, 2

64. बुन्देली लोक काव्य, डा0 बलभद्र तिवारी, पृष्ठ 265

समुदायों में हुआ है और जिन पर किसी कौम के इतिहास की तथा एक निश्चित भौगोलिक तथा सामाजिक वातावरण में उसके जीवन की छाप होती है।[65] बुन्देला जाति का उद्भव और विकास विशिष्ट वर्ग की संस्कृतियों में "उप संस्कृतिक वर्ग" का संघटन करता है । बुन्देला जाति शौर्य के लिये प्रसिद्ध है। समस्त बुन्देलखण्ड में इस विशिष्ट वर्ग की चेतना का संपोषण करने वाले है । बुन्देली का साहित्य भले ही गत एक हजार वर्षों में विभिन्न रूपों में सृजित होता रहा हो पर प्रादेशिक संस्कृति का इतिहास सात आठ सौ वर्षों से पुराना नहीं है । विकासावस्था में बुन्देली व्रज की सहोदरा है, और पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आती है । समस्त हिन्दी साहित्य में जिस प्रकार सन्त काव्य जन-चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, और अपनी लोकधर्मिता के सबसे स्थायी महत्व का बन गया है, बोलियों के शिष्ट एवं लोक साहित्य में भी यही प्रक्रिया हुई है । बुन्देली का सुप्रसिद्ध लोकगाथा काव्य आल्हखण्ड" विशिष्ट वर्ग की संस्कृति का परिचायक है, परन्तु इसके जन-समाज में मौलिक परम्परा से अब भी प्रचलित रहने की दशाओं का आकलन अपेक्षित है ।

जन-चेतना का सही प्रतिनिधित्व उन निचले तबके कवियों में अधिक हुआ है जो किसी राज्याश्रम से नहीं बंधे हैं । इनमें सन्तश्रेणी के कवि और लोकभावनाओं के प्रस्तुतकर्ता लोक-कवि विशेष महत्व के हैं । बुन्देली के सन्त साहित्य में "राम, कृष्ण को हिन्दी के सन्त काव्य की भाँति ही प्रस्तुत किया गया है । तुलसीऔर सूर की परम्परा में विष्णुदास और बख्शी हंसराज की रचनायें "राम और कृष्ण की प्रतीकात्मक छवियां व्यक्त करती है । राम और कृष्ण अवतारी या विशिष्ट वर्ग की चेतना के संवाहक न होकर जन-जन की

---

65. ऐतिहासिक भौतिकवाद, केलने और कोवालजोन, पृष्ठ 158-59

भावनाओं को अभिव्यक्त करते है । लोक मंगल उनका मुख्य कार्य है । लोक साहित्य में जन-चेतना की पग-पग पर अभिव्यक्ति है ।

लोक-संस्कृति के प्रथम उपादान के रूप में वीरता या शौर्य का लक्ष्य लिया जा सकता है । साहित्य के आधार पर इसे "आल्ह खण्ड" से प्रमाणित किया जासकता है[66] । सुप्रसिद्ध उक्ति देखिये -

"बारह बरस लौं कूकर जीवें और सौरा लों जियें सियार ।

बरस अठारह सौ छत्री जीवें, आगे जीवें तो धिक्कार ।।

बुन्देलखण्ड में उत्तरोत्तर वीरों के गुणों में वृद्धि हुई है । उदाहरण के लिये आल्हा, ऊदल के उपरान्त वीरसिंह देव, चम्पतराय, छत्रसाल, सभासिंह, हृदयशाह, बख्तबली, मर्दन सिंह आदि में शौर्य के साथ स्वाभिमान संकल्प निष्ठा बढ़ती ही गई है । हरदौल, अमान सिंह, और जगतसिंह सामन्त थे, पर लोक में उनके त्याग, बलिदान और शौर्य की जो लीक पड़ गयी, वह अब अमिट है, वे देव हो गये हैं । बुन्देलखण्ड के सिवाय अन्य किसी प्रदेश में नरको उसके महान कार्यों के आधार पर देव नहीं बनायागया है । अपनी आन पर मर मिटने की निराली "धज" यहां बेमिसाल है इसलिये लोक संस्कृति के द्वितीय उपादान के रूप में स्वाभिमान और वचन निभाने की दृढ़ संकल्प प्रियता को लिया जा सकता है ।

बुन्देली साहित्य में बुन्देलखण्ड के दार्शनिक और साहित्यिक स्थानों की ओर हमारा ध्यान ले जाता है । बुन्देली लोक गीत, लोककथायें, लोक नाट्य, लोक सुभाषित और लोक भाषा का सौन्दर्य संस्कृति के अन्य पक्षों का उद्घाटन करते हैं । लोकगीतों में जीवन के सभी पक्षों को किसी न किसी प्रकार अभिव्यक्त किया गया है । श्रृंगारिक गीत मनुष्य की मूल श्रृंगारिक वृद्धि की सूक्ष्मताओं का परिचय देते है । ऋतुओं के बदलने त्यौहारों के आने पर उल्लास, उत्साह और पूजा,

---

66. बुन्देली लोक काव्य, डा० बालभद्र तिवारी, पृष्ठ 267,

के गीत गाये जाते है तो श्रम करते समय भी गीतात्मकता में नरमी नहीं आती । नाचें तो गीत, संस्कार करें तो गीत, खेले तो गीत, गोद झुलाये तो गीत, गीत कहां नहीं हैं । लोक संस्कृति का यह तीसरा उपादान है । बहुदेव वाद लोक संस्कृति का चौथा उपादान माना जा सकता है ।

वैचारिक स्तर पर जन समाज में एक तटस्थता है तो साथ ही भ्रातत्व की भावना, करुणा, सत्कार की प्रवृति एवं आदर्शप्रियता सबसे अलग है । औद्योगिक सभ्यता से दूर होने के कारण बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति अब भी मानवता वाद की हामी है । यही कारण है कि सभ्यता के विकास में बुन्देलखण्ड भले ही पिछड़ा मानलिया जायें पर लोक संस्कृति की दृष्टि से वह अग्रगण्य है । कोमल-कान्त भाषा, मधुर भाव व्यंजना, लालित्यमंडित समरस जीवन-पद्धति तबस्पष्ट हो जाती है जब मनुष्य का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है । फिर "आग यहां की बानी में और ताब यहां के पानी में ।" वाली कहावत चरितार्थ होती है । सीधे-सादे निवास में रहने वाले लोगों को छल-कपट अभी भी पूरी तरह नहीं आता है । अर्थात जीवन की सादगी वैचारिक क्षेत्र में परिलक्षित होती है ।इसे हम बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण तथ्य कह सकते हैं । एक हाथ में तलवार हो दूसरे में घुंघरू की झनकार इन दोनों का अद्भुत समन्वय बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति में ही उपलब्ध होता है । राष्ट्र प्रेम, स्वामिभक्ति वचन के प्रति निष्ठा ये इस संस्कृति के अतिरिक्त गुण है, जो उसे अन्य संस्कृतियों से पृथक करते है[67] ।

लोक साहित्य के अन्तर्गत "फड़ साहित्य" भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । यह लोकगीत के अन्तर्गत आने वाली एक अत्यन्त सशक्त एवं समृद्ध विधा है ।

---

67. बुन्देली लोक काव्य, डा० बलभद्र तिवारी, पृष्ठ 275

एक प्रकार से इसे हम "प्रतिद्वन्द्वितात्मक लोक-काव्य" भी कह सकते है । प्रकारान्तर से "फड़ साहित्य एक प्रकार का प्रतिद्वन्द्वी लोक साहित्य है । जिसमें शिष्ट एवं जन साहित्य का सम्मिश्रण है । इसकी जड़ें, बुन्देली लोक-जीवन में बहुत गहरे तक धंसी हुयी है और उसकी आस-पास की पतली जड़ें बुन्देली जन-मानस में भी दूर-दूर तक फैली हुई हैं जिनके कारण हमारी बहुत सी सांस्कृतिक मान्यतायें आज भी सुरक्षित हैं । मुंशी अजमेरी के स्वर[68] में अपना स्वर मिलाते हुये मै इसकी वन्दना करती हूँ :-

"तुलसी केशवलाल, बिहारी, श्रीपति, गिरधर ।

रसनिधि, रायप्रवीन, पजन, ठाकुर, पद्माकर ।।

कविता-मन्दिर-कलश-सुकवि कितने उपजाये ।

कौन गिनावे नाम जाँय कितसे गुन गायें ।।

यह कमनीया काव्य-कला की, नित्य भूमि है ।

सदा सरस बुन्देलखण्ड साहित्य भूमि है ।।

मनुष्य न केवल वस्तु जगत के विषय में वरन स्वंय अपने विषय में परिभाषायें गढ़ता और तोड़ता रहा है । सदियों तक यही कार्य करने के बावजूद वह आज भी एक स्वल्प परिभाषित प्राणी बना हुआ है । अब, जबकि ज्ञान के नये क्षितिज निरन्तर उद्घाटित होते जा रहे हैं और पहले की तरह किसी अन्तिम और पूर्ण ज्ञान की कल्पना अस्वीकृत हो गई है, यही मानना अधिक संगत होगा कि सापेक्ष रूप में यह स्थिति संभवतः सदैव बनी रहेगी।

---

68. बुन्देलखण्डी फड़ साहित्य, डा० गनेशीलाल बुधौलिया, पृष्ठ ।

पिछली दो शताब्दियों में उसकी कुछ नई परिभाषायें विकसित हुई हैं । उनमें एक यह है कि मनुष्य संस्कृति-निर्माता प्राणी है । यह परिभाषा उसके सम्बन्ध में प्रचलित कई परिभाषाओं से अधिक संगत है क्योंकि संस्कृति उसकी निजी उपलब्धि है - एक वैसी विशेषता जिसमें किसी दूसरी जीव-जाति की भागीदारी नहीं है । इसका कारण यह है कि संस्कृति की व्याख्या न तो केवल जैविकता के आधार पर की जा सकती है और न केवल सामाजिकता के आधार पर । यह बात दूसरी है कि न केवल मनोवैज्ञानिक वरन कुछ मानव वैज्ञानिक भी इसकी प्राकृति का विश्लेषण केवल सहज प्रवृत्तियों और जैवी प्रयोगों के आधार पर करते रहे हैं। जैसे यह कहा गया है कि "मानव जाति की वैवाहिक संस्था कोई पृथक घटना नहीं है वरन् इसका प्रतिरूप कई पशु-जातियों में विद्यमान है, और यह शायद किसी प्राक-मानव पूर्वज से प्राप्त विरासत है[69] यह सही है कि अन्य जीव-जातियों की तरह मनुष्य में भी यौन भावना पाई जाती है लेकिन इससे अधिक से अधिक यही प्रमाणित होता है कि उनकी तरह उसमें भी युग्मन की प्रवृत्ति विद्यमान है । इससे न तो विवाह संस्था की व्याख्या की जा सकती है, और न विश्व में फैले विवाह-प्रथाओं की । इनकी व्याख्या सांस्कृतिक इतिहास की अपेक्षा में ही सम्भव है । इसका अर्थ यह नहीं कि संस्कृति का जैविकता से कोई सम्बन्ध नहीं, बल्कि यही कि यह जैविकता का बढ़ाव होते हुये भी उसका अतिक्रमण है, जैवी आनुवांशिकता के आधार पर संस्कृति की व्याख्या नहीं की जा सकती, क्योंकि यह आनुवांशिकता न होकर अर्जन है। यथा-"आनुवांशिकता चींटी के लिये पीढ़ी-दर-पीढ़ी वह सब सुरक्षित रखती है जो कि उसे प्राप्त है। लेकिन आनुवांशिकता सभ्यता के एक कण, एक विशिष्ट मानव प्राणी को भी कायम नहीं रखती

---

69. मानव विवाह संस्था का इतिहास, वेस्टर मार्क, प्रथमखण्ड 2922, पृष्ठ 72

है और न रख सकी है। क्योंकि यह §उसे§ कायम नहीं रख सकती है।" - क्रोबर, 1917, 178

इसी प्रकार केवल सामाजिकता के आधार पर भी संस्कृति की व्याख्या असम्भव हो जाती है क्योंकि मनुष्य से भिन्न जीव-जातियों में भी सामाजिकता है। मानवाकार मानव जातियां सामाजिक है, और कूलर तथा अन्य जीव-वैज्ञानिकों ने यह बतलाया है कि उसमें मनुष्य की तरह ही बुद्धि, अन्तर्दृष्टि और रचनात्मकता- जैसी शक्तियां प्राप्त है, इसके बावजूद वे संस्कृति-रहित है। इसका एक कारण बतलाया गया है कि मानव प्रमस्तिष्क का विशेष स्वरूप। इससे मनुष्य में प्रतीकीकरण की क्षमता उत्पन्न हुई, किन्तु इस क्षमता से भी बड़ा कारण भाषा है। संरक्षण और संवहन की वह विशुद्ध मानवीय प्रक्रिया जो संस्कृति को संभव बनाती है, भाषा का ही अवदान है, अन्यथा व्यक्ति के स्नायविक गठन में बस जाने वाले विचार और व्यवहार के सामूहिक अभ्यास कभी संभव नहीं हो पाते[70]।

ये बातें अपने आप में इतनी स्पष्ट और स्वीकार्य हैं कि इन पर बहस की कोई विशेष संभावना नहीं है। सबसे बड़ी कठिनाई संस्कृति शब्द के अभिप्राय के सम्बन्ध में है। इसके सामान्य से लेकर शास्त्रीय प्रयोग तक विवादास्पद बने हुये हैं। यही कारण है कि कुछ समाज वैज्ञानिकों ने, इसके अर्थगत अनिश्चय के कारण, इसके प्रयोग का बहिष्कार ही उचित माना है, लेकिन यह एक आत्यन्तिक धारणा है। यह शब्द सामाजिक विज्ञानों में एक ऐसी केन्द्रीय स्थिति प्राप्त कर चुका है, जिसके चारों ओर समाज, व्यक्तित्व आदि संकल्पनाओं का गठन किया गया है। ऐसी स्थिति में इसके अर्थ की व्याप्ति का निर्धारण कहीं अधिक उचित है। वस्तुतः अर्थ का विशेषीकरण या परिसीमन उच्चतर ज्ञान की अनिवार्यता है, क्योंकि पारिभाषिक महत्व के शब्द विश्लेषण, तुलना और मूल्यांकन के उपकरण बन जाते हैं। वे जितने पारदर्शी होंगे, उतने ही वे इन कार्यों के उपयुक्त सिद्ध होंगे[71]।

---

70. लोक साहित्य और संस्कृति, डा० दिनेश्वर प्रसाद, पृष्ठ 81-82
71. उपर्युक्त, पृष्ठ 82

इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा द्वन्द्व संस्कृति और सभ्यता के अर्थ को लेकर है । टायलर, जिसने गुस्टाफ क्लैम द्वारा पहली बार प्रयुक्त संस्कृति शब्द के अभिप्रायों को गठित कर आज के सामाजिक विद्वानों को एक नई संकल्पना दी, अपनी पुस्तकों में कहीं "संस्कृति" कहीं "सभ्यता" और कहीं "संस्कृति या सभ्यता" जैसे प्रयोग करता है । किन्तु आगे चलकर मानव विज्ञान दर्शन आदि में इनके पार्थक्य की स्वीकृति पर बल दिया जाने लगता है । यह बात दूसरी है कि सामान्य व्यवहार में और कभी-कभी उच्चतर ज्ञान के क्षेत्र में लेखकों द्वारा अपनाये गये दृष्टिकोण के कारण, इनका सभ्यता एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग बना हुआ है । इसका कारण सभ्यता और संस्कृति द्वारा व्यक्त अभिप्रायों की वह समानता है जिसका उपयोग कर इनका वैकल्पिक रूप में प्रयोग किया जाता है । इसलिये एक सुप्रसिद्ध विद्वान की भाँति यह तुरन्त नहीं कहा जा सकता कि संस्कृति "मानव व्यक्तित्व और जीवन को समृद्ध करने वाली, चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की.... क्रियाओं या मूल्यों का अधिष्ठान मात्र है[72] इस द्वन्द्व से निष्कृति का उपाय यही है कि टायलर द्वारा विकसित संस्कृति की व्यापक संकल्पना को स्वीकारकर लिया जाये । टायलर इसे "वह जटिल इकाई मानता है जिसके अन्तर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, विधि, रीति और अन्य वे क्षमतायें और अभ्यास सम्मिलित है, जिन्हे मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अर्जित करता है । इस तरह वह यह प्रतिपादित करता है कि संस्कृति सामाजिक परम्परा से अर्जित चिन्तन, अनुभव और व्यवहार-संक्षेप में मानसिक और क्रियात्मक व्यवहार की समस्त रीतियों की समष्टि है । यह संकल्पना मनुष्य के अध्ययन के लिये पर्याप्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है, और परवर्ती मानव वैज्ञानिकों की कार्य प्रणाली का आधार रही है । अस्तु "संस्कृति के अन्तर्गत वंशागत शिल्प-तथ्यों, वस्तुओं, तकनीकी प्रक्रियाओं, धारणाओं, अभ्यासों तथा मूल्यों का समावेश हो जाता है ।[73] यही अभिमत टायलर, लिण्टन, क्लकहान, क्रोबर इत्यादि का भी है, जो सत्य है । इस संकल्पना को स्वीकार कर लेने पर स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति

---

72. प्रिमिटिव कल्चर, टायलर, संस्करण 1872, पृष्ठ 1,
73. एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल सायंसेज, संस्करण 1931, पृष्ठ 62।

सामाजिक मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता है । इसी साधनके द्वारा वह परिवेश के साथ अपना समायोजन करता है । उसके द्वारा अपनी संस्कृति को अर्जन करने की संस्कृतीकरण की यह प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है । लेकिन जीवन के आरम्भ से ही अपने को संस्कृति विशेष में पाने के कारण वह शायद ही इसे अपने ऊपर आरोपित अनुभव न करता है । पूर्व प्रदत्त होने के कारण वह सहज हो जाती है । इसका चेतन धरातल पर अनुभव तभी होता है जब मनुष्य अपने से भिन्न संस्कृति के सम्पर्क में आता है । इस प्रकार संस्कृति विभिन्न पक्षों {जैसे धर्म, भाषा, संगीत, अर्थ व्यवस्था, परिवार आदि} में विभाजित रहती है, किन्तु इसके सभी पक्ष परस्पर सम्बद्ध और स्वकेन्द्रित होते है । इसकी व्यवस्था और नियमितता ही इसे वैज्ञानिक अध्ययन का विषय बनाती है । अध्येताओं ने इसे विशेषकों {न्यूनतम सार्थक इकाईयों} और विशेषक- संकुलों में विभाजित कर यह निर्दिष्ट किया है कि यह विश्लेषण सहज है ।

प्रत्येक संस्कृति विशेषक-संकुलो की एक सुनिश्चित इकाई है । यह स्वीकृति हमें इस निष्कर्ष तक पहुंचने में सहायता करती है कि संस्कृति अध्ययन के उपयोग के लिये गढ़ी गयी एक संकल्पना है । जबकि संस्कृतियां वास्तविकताहै । हर संस्कृति का अपना एक विशिष्ट चरित्र है, और यह उसे दूसरी संस्कृति से भिन्न बना देता है । विभिन्न समुदायों के तुलनात्मक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि किन्ही पूर्व कल्पित सार्वभौम विश्वासों धारणाओं और मूल्यों की अपेक्षा सापेक्ष विश्वासों, धारणाओं और मूल्यों की चर्चा कहीं अधिक सार्थक है । मानसिक होते हुये भी मूल्य अपनेपरिणत अर्थात व्यवहृत रूप में वस्तुनिष्ट होते है । मूल्य-व्यवस्था को व्यवहार व्यवस्था से इसके आधारित होने के सामाजिक संदर्भ से विछिन्न कर देखना वस्तु स्थिति का वैसा सरलीकरणहै जो किसी भी मूल्य को सार्वभौम कह देने की सुविधा प्रदान कर देता है । दोनोंव्यवस्थाओं को जोड़कर देखने पर यह प्रतीत होगा कि मानव-जाति की वह प्रचारित मानसिक एकता का दर्शन पुनर्विचार की अपेक्षा रखताहै ।

विभिन्न संस्कृतियों के अध्ययन की तुलनात्मक संरचना यह बतलाती है कि मानव जातियां एक ही वास्तविकता का मूल्यांकन अलग-अलग रूपों में करती है। सुन्दर और कुरूप, शिव और अशिव, सार्थक और निरर्थक आदि धारणाओं और मूल्यों के सम्बन्ध में उनमें पर्याप्त मतभेद है। वस्तुतः हम जिस दुनियां में जीते है, वह कोई निरपेक्ष और हमारे आवेग से अरंजित शुद्ध वास्तविकता नहीं है। वह हमारी अपनी संस्कृति द्वारा परिभाषित हुई है। बल्कि यह कहना चाहिये कि परिभाषित रूप में ही हमें प्राप्त हुई है। इस सच्चाई और इसके वैचारिक अभिप्रायों को जिन्हे सम्मिलित रूप में सांस्कृतिक सापेक्षतावाद कहा गया है, सामाजिक विज्ञानों और मानविकी में वह महत्व नहीं मिला है जो कि इसका प्राप्य है। सांस्कृतिक सापेक्षतावाद मनुष्य की आशंसा में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित कर सकता है[74]।

---

74. लोक साहित्य और संस्कृति, डा० दिनेश्वर प्रसाद संस्करण द्वितीय 1989, पृष्ठ 86

द्वितीय अध्याय

2.0 :- बुन्देली लोक साहित्य की पृष्ठभूमि -:

लोक साहित्य में किसी देश या जाति की हजारों वर्षों की परम्परा, राष्ट्र के उत्थान, पतन, मानव जाति के सम्पूर्ण जीवन की कहानी गुम्फित है । अतीत से लेकर आज तक की समस्त बौद्धिक, धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियों का विकासशील इतिहास लोक साहित्य में मिलता है । लोक साहित्य का सम्बन्ध नृशास्त्र, समाज शास्त्र भाषा विज्ञान, इतिहास, भूगोल, मनोविज्ञान आदि शास्त्रों के अखण्ड रूप से है । लोक ज्ञान के बिना इन सब शास्त्रों का ज्ञान अपूर्ण है । लोक साहित्य समुद्र की भांति है जिसकी भाव-लहरियों और भाव गहवरों का पार पाना आसान काम नहीं । परन्तु जिन्होने भावसागर की गहराई में प्रवेश किया, उन्होने अनूठे रत्न खोज निकाले है । भाव -उर्मियों के बोलते छन्दो के कलश में देश की गाथायें संस्कृतियां जन-जन के कण्ठों से मुखरित हो रही है । राम ,कृष्ण और शिव की अमरता का श्रेय पुराणों और इतिहासों को उतना नहीं है, जितना लोक साहित्य को । इन गीतकारों ने रामत्व और कृष्णत्व को मानव जीवन के साधारण धरातल पर ला खड़ा कियाहै । और उनसे तादात्म्य स्थापित करनें में गौरव अनुभव किया है[1]।

भारत वर्ष का लोक साहित्य आध्यात्मिकता और धार्मिक विश्वासों से ओत प्रोत है, यह कहने में कोई सन्देह नहीं । देश की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परायें हमें लोक साहित्य द्वारा आज विरासत के रूप में प्राप्त हुई हैं । भले ही भाषा और भावों में अन्तर आ गया हो पर आधुनिक संस्कृति की मूलधारा खोजने में हमें

---

1. बुन्देली लोक साहित्य, डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेही", पृष्ठ 27

कठिनाई नहीं होती । भारतीयों की सहिष्णुता नि:सन्देह प्रशंस्य है "वनों के निषाद और शबरों के प्रति भी हिन्दू धर्म ने सदा सहिष्णुता की आरती सजाई है ....चतुर्दिक जीवन के साथ सहानुभूति और सहिष्णुता का भाव इसकी विशेषता रही है । आज का हिन्दू धर्म भारत वर्ष के महाकान्तार दण्डकारण्य की तरह ही विशाल और गम्भीर है जिसमें अपरिमित जीवन के प्रतीक एक दूसरे के साथ गुंथ कर किलोल करते रहे है[2] ।"लौकिक साहित्य समानरूप से नगरों और ग्रामों दोनों की ही सम्पत्ति है । साहित्यिक वर्ग जहाँ परिष्कृत एवं परिमार्जित भाव और भाषा का अध्ययन, मनन एवं श्रवण करता है वहाँ अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित मानव समुदाय भी अपने ज्ञान वैभव को प्रदर्शित करने का इच्छुक रहता है । परम्परागत नरसी, ढोला और भरथरी के कथा गीतों को गाकर आत्मानन्द प्राप्त करता है । तभी विद्वान ग्रिम ने कहा है कि "लोकगीत जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिये रचा गया काव्य होता है[3] ।

इसी प्रकार कर्नल एफ॰एल॰ब्रेमर ने भी कहा था "मुझे हिन्दुस्तान के गाँवों के गीत युगोस्लाविया, नार्वे, डेनमार्क, रूस, इटली, फ्रांस, और इग्लैण्ड के ग्राम गीतों की अपेक्षा अधिक सजीव और हृदयस्पर्शी प्रतीत होते है[4] । लोक साहित्य के सम्बन्ध में श्री डा0 कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है "यह साहित्य प्राय: जब तक मौखिक रहता है तभी तक इसमें ताजगी तथा जीवन पाया जाता है । लिपि की कारा में रखते ही इसकी संजीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है[5] । हिन्दी का "लोक" शब्द बहुत प्रचलित है । वह अंग्रेजी के "फोक" शब्द सम्पूर्ण अर्थ का संकेतक बन गया है । परन्तु रामनरेश त्रिपाठी ने "फोक" के लिये "ग्राम" शब्द पर विशेष बल दिया है । यथा-

2. लोकवाणी, जनवरी 1946, महामहिम लोक जीवन, डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल पृष्ठ 64
3. ए बैलेडइज दि पोयट्री ऑफ दि प्यपिल, बाई दि प्यपिल, फॉर दि प्यपिल ।
4. "मधुकर- सम्पा. बनारसीदास चतुर्वेदी, हमारे ग्रामगीत जिन्दाबाद ले. शम्भूनाथ सक्सेना जून 1943, पृष्ठ 39। से साभार ।
5. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, 16 वां भाग, प्रस्तावना, पृष्ठ 4

ग्रामगीत, ग्राम साहित्य[6] पर यह दृष्टिकोण कुछ सीमित-सा लगता है। वस्तुतः लोक शब्द अत्यन्त व्यापक और विशद अर्थ से संयुक्त "फोक" के पूर्णार्थ को व्यक्त करता है । इसी लिये द्विवेदी जी को लिखना पड़ा "वस्तुतः लोक शब्द बहुअर्थी है । वेद के समान स्वतन्त्र एवं सामान्य अस्तित्व का अधिकारी है । बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ ही "लोक" शब्द मानवता की भावना का वाहक बन गया । "लोक" शब्द में अंग्रेजी के "फोक" शब्द की यथार्थ भावना दिखती है । अतः "लोक" शब्द ही "फोक" का उपर्युक्त पर्याप्त है[7]।" इस "लोक" को जानने के पश्चात "लोक तत्व" को समझना भी अत्यधिक आवश्यक है, डा० सत्येन्द्र के मतानुसार "लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोकतत्व कहलाते हैं[8]। "इस प्रकार जनता का साहित्य ही लोकाभिव्यक्ति है । यह इतिहास के सम्यक ज्ञान, उसकी टूटी श्रृंखलाओं की सुसम्बद्धता, मनुष्य की शुद्ध मानवीय संस्कृति की अप्रतिहत धारा के स्वरूप और उसके विकास का दर्पण है । इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन भी माननीय है "भारतीय जनता का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिये पुराने परिचित ग्रामगीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, केवल पण्डितों द्वारा प्रवर्तित काव्य-परम्परा का अनुशीलन ही अलम् नहीं है"[9] इस प्रकार यदि "साहित्य को मानव मन की सूक्ष्मतम अनुभूतियों का इन्द्रधनुषी प्रतिबिम्ब कहें तो उसमें परिव्याप्त लोक तत्व को उसकी अंतरंग सतरंगिणी आभा का मूल कहा जाना चाहिये । साहित्य में लोक तत्व की यह परिव्याप्ति इतनी अंतरंगिणी और सूक्ष्म है कि उसमें ब्र सतत"

---

6. जनपद, खण्ड 1, अंक 1,
7. आधुनिक हिन्दी कविता में लोक तत्व, डा० वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी, पृष्ठ 16
8. हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञान मण्डल वाराणसी, संवत 2015, पृष्ठ 685-86
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास (ना. प्र. स. काशी) सातवां संस्क. संवत् 2008, पृष्ठ 600,

विद्यमान रहने पर भी वह प्रायः अप्रतीत बनी रहती है।[10]

कहीं कहीं "लोकवार्ता" शब्द को भी विद्वानों ने अपनाया है । यह अंग्रेजी के "फोक लोर" का पर्यायवाची है । यह अभिधान सन् 1846 में विलियम जोन्स थामस ने दिया था । वांटकिन महोदय ने इस संदर्भ में लिखा है "लोकवार्ता हमारे जीवन की गतिशीलता एवं सत्यता है । यह न तो बहुत दूर की है, और न प्राचीन ही । इसमें भूत, वर्तमान से और अशिक्षित वर्ग ऐसे वर्ग से कुछ कहना चाहता है जो अपने भौतिक, मौखिक और लोकतांत्रिक संस्कृति के मूल और आदिम स्वरूपों के अध्ययन से अपनी कलाओं की तह तक जाना चाहता है, जिसके द्वारा उसकी कलाओं के ऐतिहासिक विकास पर रोशनी पड़ती है।[11] जनता से सम्बन्धित जो भी बातें कही या सुनी जाती है या जनता जो भी कहती है, वह सब लोकवार्ता ही है । सच पूछिये तो लोकवार्ता की उत्पत्ति लोक मानस में ही होती है । यह लोक की रामायण है । रामायण की भांति लोकायन की लोक सर्वस्व को अपने भीतर समाविष्ट किये रहता है।[12] फोकलोर के लिये हमारे यहां अनेक पर्यायवाची शब्द है। जैसे -लोकवार्ता, लोकविद्या, लोकज्ञान आदि । डा० वासुदेव शरण अग्रवाल "लोकवार्ता शब्द को ही समीचीन ठहराते है जबकि पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी इसे "लोकसंस्कृति मानते हैं । डा० सुनीति कुमार चटर्जी इसे "लोकायन" नाम देते है । मराठी शब्द कोषानुसार इसे "जनश्रुति" कहा गया है ।जबकि कालेलकर और कर्वे महोदय "लोक विद्या अभिधान स्वीकार करते है । किन्तु अब अधिकांश विद्वान "लोकवार्ता" शब्द

---

10. हिन्दी उपन्यासों में लोक तत्व, डा० इन्दिरा जोशी, पृष्ठ 3
11. अमेरिकन फोकलोर, {पाकेट बुक} की भूमिका, पृष्ठ 15,
12. आधुनिक हिन्दी कविता में लोक तत्व, डा० वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी, पृष्ठ 19

ही व्यवहृत करते है, जो उपर्युक्त, समीचीन और तर्क संगत के साथ-साथ "फोक्लोर" का सम्पूर्ण अर्थ व्यक्त करने वाला है । श्री जे. एल. मिश्र के मतानुसार "ऐसे सभी प्राचीन प्रथाओं, परम्पराओं का सम्पूर्ण योग जो सभ्य समाज के अल्प शिक्षित लोगों के बीच आज तक प्रचलित है फोकलोर, है । इसकी परिधि में परियों की कहानियां, लोकानुभूतियां, पुराण कथायें, अन्ध विश्वास, उत्सव, रीतियां, परम्परागत खेल या मनोरंजन, लोकगीत, प्रचलित कहावतें, कला कौशल, लोक नृत्य और ऐसी सभी अन्य बातें सम्मिलित की जा सकती है।[13] श्रीमती वायोलेट एलफार्ड ने फोकलोर को सामान्य जनता के ज्ञानकोश की संज्ञा दी है।[14] लोकसाहित्य एवं लोकवार्ता के एक सुप्रसिद्ध विद्वान ने "लोकवार्ता" के औचित्य पर प्रकाश डालते हुये कहा है-"जनता जो कुछ युग-युग से कहती और सुनती आई है अर्थात मौखिक परम्परा की समूची सामग्री लोकवार्ता के अन्तर्गत आ जाती है । अतीत से लेकर अब तक की समस्त बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक और सामाजिक गतिविधि का सम्पूर्ण इतिहास, "लोकवार्ता में निहित है । इसके बिना देश के वास्तविक इतिहास का निर्माण असम्भव है।[15]

अक्सर देखा जाता है कि लोक तात्त्विक अनुभूतियां मानव की ऐसी गहरी अनुभूतियां है जिन्हे वह वर्तमान शिष्ट समाज में रहकर भी भूल नहीं पाता। शहरी जीवन के नवीनतम दृष्टिकोणों से प्रभावित होकर भी जब कभी वह लोक वातावरण में पहुंचता है, और वहां उसे उन तत्वों के दर्शन होते है -चाहे ग्रामगीतों की रसमयता में, कथात्मक वार्ताओं में या ग्रामीण रीति-रस्मों में, वह भी उन्ही गीतों रीति-

---

13. स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर, भाग 1, न्यूयार्क 1949, पृष्ठ 401,
14. इन्ट्रोडक्शन टू इंग्लिश फोकलोर, चैपटर 1, पृष्ठ 1,
15. बेला फूले आधीरात, डा० देवेन्द्र सत्यार्थी, ब्रजभारती, पृष्ठ 38, 39,

रस्मों, एवं कथाओं का हो जाता है । उसे गौरव होता है अपनी पैतृक विभूतियों के साथ नाता जोड़ लेने में । लोकतत्वों में हमारी अनुभूतियों का साधारणीकरण होता है । हमारी संस्कृति का आदर्श रमता है, हमारा अपना खून बहता है । उदाहरण के लिये हम देख सकते है कि हमारे जीवन में कुछ खास ऐसे क्षण आते है । जिनका होकर ही, जिनमें मिलकर ही हम उनका सम्पादन करते हैं । जैसे किसी के मरने पर केश मुण्डित कराना, विवाह में मौर धारण करना, महावर, काजल आदि लगाना, बच्चा पैदा होने पर अशौच का नियम पालन करना आदि ।

कोई लाख "अपटूडेट" क्यों न हो जाये, इनसे सम्बन्ध तोड़ना असम्भव है यही बात हमारे लोकवार्ता तत्वों के लिये भी है । लिखित साहित्य में भी यदि इनका समावेश पाया जाता है, तो उसका कारण यही है कि साहित्य और कुछ नहीं जीवन है, और वह जीवन लोक तत्वों पर आधारित है । अतः यदि साहित्य में जीवन है, तो वह लोकतात्त्विक आधारों से पृथक नहीं हो सकता[16] ।

संसार का कोई भी देश ऐसा न होगा जिसका अपना लोक साहित्य न हो, क्योंकि लोक साहित्य की नींव पर ही शिष्ट एवं परिष्कृत साहित्य का सुन्दर सौध प्रतिष्ठित होता है । आइये, संसार के लोक साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालते चलें -

जहां तक इग्लैण्ड के लोक साहित्य का प्रश्न है, इग्लैण्ड का इतिहास बहुत पुराना नहीं है । सामान्य तौर पर उसका आरम्भ कवि चासर से माना जाता है । अंग्रेजी का जन्म ऐंग्लो सैक्सन बोली से छठवीं शताब्दी ईश्वी में हुआ। इससे पूर्व यहां लैटिन का प्रभाव था । 'बैलेड आफ एजिनकोर्ट' अंग्रेजी काव्य साहित्य

---

16. आधुनिक हिन्दी कविता में लोक तत्व, डा0 वीरेन्द्र नाथ द्विवेदी, पृष्ठ 24.25

पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ गया है । सैमुअलडेनियल ने "वार आफ दि ऐजिज" युद्ध का इतिहास कविता में लिखा । टामस कैरो ने कवेलियर कवियों का श्रीगणेश किया । उसकी शैली रागात्मक है और संकलनों में उसके प्रेम सम्बन्धी लिरिकों के उदाहरण प्राप्त है । "दि रैपचर" नामक कविता में अश्लील श्रृंगार अंकित हुआ है ।

विलियम वर्ड्स वर्थ रोमासवादी कवियों में सबसे बड़ा है । इसके लिरिकल बैलेड्स अत्यधिक प्रसिद्ध है । सरवाल्टर स्काट, रोसटी, तथा स्विनबर्न इस धारा के अन्य सुप्रसिद्ध कवि माने जाते है ।

फ्रांस का लोक साहित्य बड़ा सम्पन्न और समृद्ध है, उन्नीसवीं सदी की पिछले काल तक फ्रांस में देहाती प्रणय, नृत्य और चुटीले व्यंग्य आदि के गीतों की मात्रा अधिक थी। सहस्त्रों की संख्या में लोक गीत फ्रांस से 16वी 18वीं शताब्दी में कनाडा और मिसीसिपी की घाटी में फैल गये, और वहां के वनों, उपवनों और पर्वतीय अंचलों को गुंजित करने लगें । फ्रांस में एक प्रकार का चारण गीत "रो,द्राएगे" प्रचलित था ।

डेनमार्क के प्राचीनतम साहित्य का अधिकांश भाग लोक साहित्य है जो उस काल की पौराणिक ख्यातों, जंतरमंतर, ऐतिहासिक घटनाओं और वीरकृत्यों पर प्रकाश डालता है । एण्डर्स सौरन्सेन वेडेल बैखर का समकालीन व्यक्ति ने नौर्डिक लोकगीतों का संग्रह किया । वाइकिंग कविता-काल तो वास्तव में चारण काव्य ही है जो "स्कालिदक" कहलाता है । थ्योदोल्फ और आइविन्द ने हेगल्फ और हाकन के दरबारों का वर्णन और उनकी प्रशस्तियां गाई है ।

फिनलैण्ड का लोक साहित्य[17] सन् 1200 से 1500 ई० तक का साहित्य माना जाता है जिसमें लिरिक और वीरकाव्य आदि की रचनायें बहुतहुई हैं, ।अब

---

17. बुन्देलखण्डी लोक साहित्य, डा० गनेशीलाल बुधौलिया, पृष्ठ 9

वहां लगभग पचास हजार लोक कविताओं का संग्रह हो चुका है । प्रोफेसर पोर्थन (1759-1804) फिन्नी भाषा और लोक साहित्य का संग्रह किया । इसने "कालेवाला" नामक विशाल ग्रन्थ में प्राचीन लोक लिरिक, बैलेड और हयातों का अनूठा संग्रह किया जो उसका कीर्ति स्तम्भ माना जाता है ।

रूसी लोक साहित्य में स्वनाम धन्य कवि पुश्किन ने अपने थोड़े से जीवन में बड़े सुन्दर और मधुर लिरिक के अतिरिक्त अनेक बैलेड भी लिखे- पोप और बाल्दा की कहानी अधिक प्रसिद्ध है ।

पोल लोक साहित्य की रूसी साहित्य की तरह स्लाव साहित्य है । इग्नासी कासिकी, स्तनानिल्ला का समकालीन था जिसने लिरिक कवितायें, और एक "चोकिम की लड़ाई" वीरकाव्य लिखा । जुलियन उर्सिन नीमसीविक्स रोमांसवादी बैलेड लिखे साथ ही साथ हडरे, गेटे और शिलर के बैलेडों का पोली भाषा में अनुवाद किया।

योगोस्लाव का लोक साहित्यक योरोप के अन्य देशों से टक्कर लेता है । उसके लोकगीत अत्यधिक प्राचीन हैं और महिलाओं के लोक गीत तो 13वीं सदी से कम के नहीं हैं । युगोलोक साहित्य का मुख्य अंग उन वीर काव्यों का है जिनमें नेमान्याकुल की प्रशस्ति गायी गयी है । सहस्त्रों की संख्या में लिखे गये इन लोकगीतों को वहां के अन्ध गायकों ने सुरक्षित रक्खा ।

स्वीडिस लोक साहित्य को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वहां लिपि का प्रयोग बहुत पहले से होने लगा था । क्योंकि वहां 800 ई० से भी पहले के अभिलेख प्राप्त हुये हैं । यहां भी लिरिक और वीर काव्यों की प्रधानता रही है लार्स विवालियस (1605-69) स्वीडन का प्रथम लिरिक कवि था । हेडेन्सताम रोमांसवादी कवि था ।

स्पेनी लोक साहित्य का आदिकाल हिन्दी साहित्य के आदिकाल की भांति वीरगाथा काल है । ऐपिक काव्य की भांति वहां का लिरिक साहित्य भी विकसित हुआ । इसके विकास में अरबी जेजल (गजल) मुख्य था । अल्फोंज्जो

षष्ठ §1256ई0-57ई0§ के शासन काल तक देशी गान पद्धति के लोकोत्सवों में बड़ी लोकप्रिय रही । वहाँ के गड़रियों के गीत अपने देश के अहीरों के बिरहाओं की भांति सब जगह गाये जाने का रिवाज था । यहाँ अनेक लोक गायकों के नाम भी उपलब्ध होते है ।

फारसी लोक साहित्य के अन्तर्गत[18] अरबों में यज्दगिर्द को शिकस्त देकर जब ससानी खानदान का चिराग गुल कर दिया तो साहित्य के क्षेत्र में उसका बड़ा गहरा असर पड़ा । जरतुश्ती मजहब का नामोनिशान मिटा और उस जमाने की हयातें, कथायें और लोक साहित्य निश्चिय पूर्वक सुरक्षित रहे, जो भावी साहित्य की बुनियाद के रूप में काम आयें । फिरदौसी यहाँ का सुप्रसिद्ध महाकवि माना जाता है । जिसका शाहनामा काव्य प्रतिभा का सुन्दर उदाहरण है ।

चीनी लोक साहित्य का भण्डार अत्यन्त विपुल और समृद्ध है । यहाँ के लोक गायकों ने मुरली और तंत्री की सहायता से यहाँ की संस्कृति को अक्षुण्ण रक्खा । ट्यांग युग चीनी साहित्य का स्वर्ण युग है इनकी रचनाओं का आधार उस समय के प्राचीन लोकगीत थे । चाऊ के राज्यकाल से ही ग्रामीण और गांव की लोक संस्कृति के प्रेमी अपने दुख सुख, संयोग वियोग, प्रणय-मिलन के गीत लिखने लगें थे।

तुर्कीलोक साहित्य खास तौर से हंसी मजाक का है, इस प्रकार के हास्य परक लोक साहित्य का प्रभाव अरबी और फारसी साहित्य पर पडा । संस्कृत-पाली एवं प्राकृत का लोक साहित्य भी कुछ कम नहीं है । वेद में ऋचाओं के रूप में लोकगीत की आत्मा विद्यमान है । इसके अनन्तर कालिदास प्रणीत "मेघदूत लिरिक"

---

18. बुन्देली फाग साहित्य, डा0 गनेशीलाल बुधौलिया, पृष्ठ 11

विश्व का श्रेष्ठतम गीतकाव्य है । जयदेव का गीतगोविन्द, हाल की गाथा सप्तशती काव्य के श्रेष्ठ उदाहरण है । इसके जन साहित्य के माध्यम से प्रेमालाप अनूठा है । पाली साहित्य में जातक[19] भी लोक साहित्य की अक्षय निधि है ।

जहां तक भारत वर्ष के लोक साहित्य का प्रश्न है यहां के मराठी गुजराती, कर्नाटकी, बंगाली, पंजाबी, खासी-जैंतियां, गढ़वाली, नेपाली, मध्यदेशीय भू-भाग में लोक साहित्य का अजस्र प्रवाह अबाध गति से प्रवाहित हुआ, जिसने यहां की शुष्क और नीरस भूमि को रस प्लावितहीन ही कर डाला । इन सबमें बुन्देलखण्ड का लोक साहित्य सर्वथा अनूठा है ।

"देश की सामाजिक एवं राजनीतिक हलचलों ने लिपिबद्ध साहित्य में गुणकारी परिवर्तन ला दिया है । बौद्ध धर्म के हृास के बाद शैव, शाक्तों आदि के संयोग से निर्मित नाथ संप्रदाय तथा परवर्ती सन्तों ने लोकवाणी की अभिव्यक्ति अपने काव्य ग्रन्थों में की।मुस्लिम तथा पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव अमिट रहा । इससे राष्ट्रीय चेतना का आविर्माब हुआ । परन्तु यह सत्य है कि लोक भाषाओं के अपढ़ भारतीयों ने संस्कृति की रक्षा की । लिखित साहित्य को धर्मविरोधी आक्रामक नष्ट कर सकते थे परन्तु मौखिक साहित्य को रोक करना उनके वश की बात नहीं थी । यही कारण है कि लोक साहित्य आज भी स्वच्छन्द, अविरल गति से बहता चला आ रहा है जो अतीत गौरव का प्रहरी बनकर भविष्य उद्बोधक प्रेरणा देकर हमारे वर्तमान को सजीव बनाये हुये है[20] ।"

देश के विभिन्न क्षेत्रों के समान ही बुन्देलखण्डी भूमिका मानस धरातल भावों की उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित है । यहां के आचार-विचार, संस्कार

---

19. बुन्देलखण्डी का फड साहित्य, श्री गनेशीलाल बुधौलिया, पृष्ठ 13,
20. बुन्देली लोक साहित्य, डा0 रामस्वरूप श्रीवास्तव स्नेही, पृष्ठ 28,

रीति-रिवाज, एवं मान्यतायें उसी रूप में प्रचलित है जैसी अन्य प्रान्तों में, भले ही आनुष्ठानिक अभिचारों में थोड़ी बहुत विभिन्नता हो । यहां के धार्मिक व्रत-त्योहार और उनसे सम्बन्धित लौकिक अभिचार तथा कथायें, बालक-बालिकाओं के खेल तथा खेल गीत, स्त्रियों द्वारा संस्कारों की औपचारिकता तथा तत्सम्बन्धी गीत, सामाजिक रीतियाँ लौकिक विश्वासों की रूढ़िवादिता, स्त्री-पुरुषों की पारस्परिक वासनात्मक अभिव्यक्तियां कौटम्बिक स्नेह एवं विद्वेष की प्रकृत भावना में बुन्देली लोक साहित्य में समान रूप से उद्भासित हुई है । इस सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विचार पठनीय है -"यदि सब देशों के लोक गीत संकलित किये जा सकें, और उनका तुलनात्मक अध्ययन हो तो यह प्रत्यक्ष होगा कि उनमें एक ही मन और एक ही हृदय छिपा है, जो मनुष्य मात्र में समान है ।"[21] गीतों के रचनाकाल एवं उनके लेखकों के अज्ञातनामा होनेके सम्बंध में वे आगे लिखते है "उन सब कविताओं में चिरत्व है । न मालूम कब किस काल में कौन सी कविता लिखी गयी, किसने इन्हें लिखा ये प्रश्न किसी के मन में उठते ही नहीं । इसी स्वाभाविक चिरत्व गुण के कारण ये आज रचित होने पर भी प्राचीनहै, और एक हजार साल पहले लिखे जाने पर भी नवीन है ।"[22] निःसन्देह भारतीय नारी इस मौखिक साहित्य की सृजेता एवं संरक्षिका रही है । उसमें लोक साहित्य की रचना में महत्वपूर्ण योगदान किया है ।

लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन की नींव जर्मन विद्वान जैकनग्रिम ने सन् 1812 ई० में डाली थी । पूर्व में लोक साहित्य "पोपुलर एन्टीक्विटीज" कहलाता था । सन् 1846 ई० में अंग्रेज पुरातत्वविद् विलियम जोन थामस ने इसे "फोकलोर" नाम दिया । विधिवत अध्ययन हेतु "अमेरिकन फोकलोर सोसायटी" की

---

21. माडर्न रिव्यू, सितम्बर 1934,

22. लोक संस्कृति विशेषांक, §सम्मेलन पत्रिका§ संवत् 2010, पृष्ठ 464,

स्थापना की गई । ये परिषदें लोक साहित्य सम्बन्धी पत्रिकायें प्रकाशित करती है । फ्रांस में "क्रिश्चियन कृषक "युवकसंघ" स्वीट्जरलैण्ड में "एसोसियेशन फार लोकल कस्टम" द्वारा तथा जर्मनी में "हिटलरयूथ" और "जर्मन सिंगर्स सोसायटी" द्वारा संकलन कार्य सम्पादित होताहै ।,भारतवर्ष में भी लोक साहित्य के सम्पादन एवं प्रकाशन कार्य का शुभारम्भ हो गया है, जिसका श्रेय पाश्चात्य विद्वानों को है । सन् 1886 ई0 में ए. हिसलय महोदय ने मध्यदेशीय साहित्य का पुस्तक रूप में प्रकाशन कराया । सन् 1901 ई0 में सी.ई.ल्यूअर्ड द्वारा 'एथनालाजिकल सर्वे आफ सेण्ट्रल इण्डिया एजेन्सी' का प्रकाशन हुआ जिसमें ग्वालियर, होलकर, धार आदि राज्यों के आदिवासियों के गीतों कासंग्रह हुआ । सन् 1911 ई0 में जार्ज ग्रियर्सन ने लिग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया" का प्रकाशन तीस वर्षों के अनवरत अध्ययन एवं भ्रमण के पश्चात ग्यारह जिल्दों (वोल्यूम्स) में कराया । डा0 उदयनारायण तिवारी ने उक्त ग्रन्थ के खण्ड । भाग । का हिन्दी अनुवाद सर्व साधारण की सुलभता हेतु प्रस्तुत किया है । डा0 वैरियर ने "फोक टेल्स आफ महाकोशल" स्वयं तथा "फोक सांग आफ मैकल पर्वत" शामराव हिवले के साथ मिलकर लिखा है ।

भारतीय विद्वानों में लोकगीतों के संकलन का व्यवस्थित कार्य पं0 रामनरेश त्रिपाठी से प्रारम्भ होता है । सन् 1924 ई0 से उन्होंने उत्तर प्रदेश, पंजाब, गुजरात, काठियावाड़ आदि प्रदेशों में घूमकर सन् 1928 ई0 तक कई हजार लोकगीत संकलित किये । ये गीत "कविता कौमुदी" भाग 5 में प्रकाशित हो चुके है ।

बुन्देलखण्ड में लोक साहित्य के प्रति अभिरूचि उत्पन्न करने का सर्व प्रथम प्रयास पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी ने किया । उन्होंने "मधुकर" मासिक कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) से अक्टूबर सन् 1940 ई0 में निकाला जिसमें बुन्देलखण्ड की संस्कृति एवं लोक साहित्य सम्बन्धी सामग्री की प्रचुरता पाई जाती है । यह मासिक पत्र सन् 1944 ई0 में बन्द हो गया था । सन् 1944 ई0 में आपकी ही प्रेरणा से टीकमगढ़ में

में "लोकवार्ता परिषद" की स्थापना की गई । ओरछा वीरसिंह जूदेव के संरक्षण में तथा कृष्णानन्द गुप्त के सम्पादकता में "लोकवार्ता" त्रैमासिक पत्रिका जून 1944 ई० में निकाली गयी जिससे लोक साहित्य सम्बन्धी शोध-कार्य में प्रगति हुई । पत्रिका के लेखक वर्ग में वृन्दावनलाल वर्मा, कृष्णानन्द गुप्ता, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पं० काशी नाथ नायक, चन्द्रभान, रामस्वरूप योगी, सत्यसोधक, माधवराव विनायक किबे, भास्करराम चन्द्रभालेराव, स्वामी प्रसाद गंगेले, पीताम्बरराव तैलंग, त्योहार राजेन्द्र सिंह एवं गौरी शंकर द्विवेदी "शंकर" प्रभृति विद्वानों का योगदान रहा । पनवाड़ी {हमीरपुर} निवासी वारेलाल ने ईसुरी, ख्यालीराम और भुजबल आदि लोककवियों की लगभग 500 फागें इकट्ठी की । भगवानदास कानूनगो {ओरछा} ने कुचबंदियों और बेड़ियों के जीवन की छानबीन की । इन लेखकों ने बुन्देली लोकगीत, रीति-रिवाज, कहानियाँ ग्राम देवता आदि विभिन्न विषयों को संकलित सामग्री सुलभ कराई । इसके अतिरिक्त पन्ना से विंध्यभूमि" नामक पत्रिका पं० हरीराम मिश्र के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई । यह सन् 1945 ई० से 1948 ई० तक चल सकीपुन: बन्द हो गयी ।

पुन: दूसरी त्रैमासिक पत्रिका "विंध्यभूमि" विद्या निवास मिश्र के सम्पादकत्व में सूचना प्रसार विभाग रीवां से संवत 2010 में निकाली गई । तीन अंकों के पश्चात यह भी बन्द हो गयी । सन् 1956 ई० में डा० रामकुमार वर्मा के सम्पादकत्व में "बुन्देली भूमि" का प्रकाशन हुआ किन्तु यह भी सन् 1958 ई० में बन्द हो गई। सन् 1962 ई० "बुन्देलीवार्ता" नामक पाक्षिक पत्रिका श्री कन्हैयालाल "कलश" द्वारा गुरसराय {झांसी} से प्रकाशित हुई । पुनश्च मऊरानीपुर {झांसी} में ईसुरी परिषद की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य लोकसाहित्य का संकलन तथा प्रकाशन है । बुन्देलखण्डी विद्वानों ने लोक साहित्य के क्षेत्र में स्तुत्य कार्य किया है । हरप्रसाद शर्मा ने "बुन्देलखण्डी लोकगीत" एवं उमाशंकर शुक्ल ने 'बुन्देलखण्ड के लोकगीत' प्रकाशित किये है । श्रीचन्द्र जैन ने सन् 1954 ई० में "विन्ध्यप्रदेश के लोकगीत "पुस्तक निकाली तथा "मोरी धरती,

गया, "विंध्य प्रदेश के लोक गीत" में 'करना,' नाम की जंगली [illegible] । जाति के गीतों का संग्रह है । गौरीशंकर द्विवेदी "शंकर" ने 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' में बुन्देलखण्डी लोकगीतों का संग्रह तथा व्याख्या दी है । देवेन्द्र सत्यार्थी ने "बेला फूले आधी रात" में लोक साहित्य का आलोचनात्मक वर्णन किया है, जिसमें विविध भाषा क्षेत्रों के लोक साहित्य का विवेचन हुआ है ।

ईसुरी की फागें" तीन भागों में कृष्णानन्द गुप्त ने सम्पादित की है । जबकि गौरीशंकर द्विवेदी "शंकर" ने ईसुरी प्रकाश" प्रथम भाग प्रकाशित कराया है । इन्होंने "बुन्देलवैभव" तथा सुकवि सरोज" में बुन्देलखण्डी कवियों की रचनाओं पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है । "माहौर अभिनन्दन ग्रन्थों में प्रसिद्ध आधुनिक लोक कवियों नाथूराम माहौर, गंगाधर व्यास, कालीकवि, युगलेश जी एवं अजमेरी आदि कवियों की कला कृतियों का विवरण सुलभ है । रामचरण हयारण "मित्र" का बुन्देली गीत संग्रह "लौलैंया" एवं श्री लक्ष्मीप्रसाद "वत्स" का एक काव्य संकलन प्रकाश में आया है । अवध श्रीवास्तव एवं प्रकाश सक्सेना के भी बुन्देली काव्य-संकलन प्रकाशित हो चुके है ।

"विंध्य प्रदेश की लोक कथायें, {श्रीचन्द्र जैन}, बुन्देलखण्ड की ग्राम कहानियां {शिवसहाय चतुर्वेदी} एवं "बुन्देलखण्ड की लोक कथायें {श्रीकान्त व्यास} लोक-कथा साहित्य में उल्लेखनीय कृतियां है । हरगोविन्द गुप्त एवं कृष्णानन्द गुप्त ने लगभग एक हजार बुन्देली कहावतें इकट्ठी की है । कृष्णानन्द गुप्त का "बुन्देली कहावत कोश" भी इस संदर्भ में प्रशंसनीय ग्रन्थ है ।

डा० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल का "बुन्देली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन" डा० महेशप्रसाद जायसवाल की "ए लिंग्विस्टिक स्टडी आफ बुन्देली" व्याकरण का ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है । श्याम सुन्दर बादल का बुन्देली फाग साहित्य एवं डा० गनेशीलाल बुधौलिया का "बुन्देली का फड़ साहित्य" श्रेष्ठ शोध ग्रन्थ हैं । डा०

रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेही" ने लगभग 1500 लोकगीत, 350 बुन्देली कथायें, 60 बुन्देली मुहावरें, 352 बुन्देली पहेलियां, 1200 बुन्देली कहावतें, और दो हजार बुन्देली शब्दों का संकलन किया है जो अभी अप्रकाशित एवं स्तुत्य है । सागर विश्वविद्यालय सागर की बुन्देली पीठ का भी इस क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान है जिसने बुन्देली लोक साहित्य की अनेक कृतियां प्रमाणिक रूप से प्रकाशित की हैं । संप्रति "ईसुरी" वार्षिक पत्रिका भी कम उल्लेखनीय नहीं है । इसी प्रकार बुन्देलखण्ड साहित्य, अकादमी, छतरपुर से डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त के सम्पादकत्व में "मामुलिया" मासिक {बुन्देली पत्रिका} इस क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य सम्पादित कर रही है । डा० रामस्वरूप खरे एवं डा० हरगोविन्द सिंह के सम्पादन में "बुन्देली काव्य, भी उल्लेखनीय कृति है । यह बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी के बी०ए० तृतीय वर्ष के हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों के लिये पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकृत है । इसमें बुन्देली भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन तो है ही साथ में संकलित बुन्देली कवियों के काव्य की साहित्यिक समीक्षा और संकलन भी है । परिशिष्ट में प्रयुक्त अलंकार एवं बुन्देली शब्दों के हिन्दी रूप भी दिये गये है ।

इस प्रकार समूचा बुन्देली लोक साहित्य मौखिक रूप से लोकगीत कथाओं, लोकोक्तियों, मुहावरों, पहेलियों, एवं लोक रंजक साहित्य के रूप में यत्र तत्र बिखरा पड़ा हुआ है जिसके संकलन की आज महती आवश्यकता प्रतीत होती है ।

2.1. :- लोक साहित्य की परिभाषा एवं महत्व -:

लोक साहित्य में युग की जीवन्त नवीनता मुखरित रहती है । भाषा की दृष्टि से मूल अन्तर यह है विशिष्ट साहित्य की भाषा परिनिष्ठित या केन्द्रीय रूप में होती है जबकि लोक साहित्य की भाषाओं में स्थानगत विविधता होती है । केन्द्रीय परिनिष्ठित भाषा व्याकरण बद्ध हो स्थिर हो जाती है, जबकि लोक भाषा की गतिशीलता उसमें सदैव नवीन प्राणों का संचार करती रहती है[1] ।

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता में लोक तत्व, डा० वीरेन्द्र नाथ द्विवेदी, पृष्ठ 8।

लोक साहित्य जन जीवन का आइना है । इस दर्पण में अनपढ़ जनता की भावनाओं का सुख दुःख भरी विविध मनोवृत्तियों का प्रतिफलन होता है । नागर साहित्य में भाव- विचारों का प्रकाशन कलात्मक ढंग से, भाषा और कथन-शैली के परिष्कार के साथ होता है, परन्तु लोक साहित्य में यह बिना सजावट, बिना किसी बनावट के स्वतः प्रस्फुटित होता है । लोक साहित्य वह पौधा है जिसे किसी माली ने न तो सींचा है और न काटा छांटा है, वह तो बिना विशेष परिपोषण के पुष्पित और फलित होता है इसीलिये उसकी सुगन्ध मन्द और भीनी होती है । साहित्यिकता, संगीतात्मकता और कलात्मकता का लोक साहित्य में नागर साहित्य के समान उत्कर्ष नहीं मिलेगा, परन्तु साहित्य, संगीत और कला का मूल प्रेरक स्रोत लोक साहित्य और लोकगीतों में ही निहित है । भाषा का मूल रूप भी इसी साहित्य में प्राप्त होता है[2]।

वस्तुतः लोक साहित्य तो मीठे पानी का वह अगाध कूप है जिसमें अनेक अनेक अदृश्य छोटे-छोटे जल-स्रोत भिन्न भिन्न दिशाओं से आकर उसे गंभीर और मिठास से युक्त करने के साथ साथ शीतल और पवित्र बनाते है जिसे पान कर परि-श्रान्त पथिक अपने सन्ताप को दूर करके शाश्वत शान्ति का अनुभव करता है । भाषा का अकृत्रिम सहज सौन्दर्य जन भावों की शीतल मन्द सुगन्ध समीरण का संस्पर्श करता है तब उसमें अन्तर्मन की जो मधुर एवं मृदुल उर्मियां उद्वेलित होती है उनसे समूचा वातावरण सहजाभिव्यक्ति से स्वतः मुखरित हो उठता है । यदि साहित्य सुन्दर सरोवर है तो लोक साहित्य उसमें प्रस्फुटित सरस मधुर एवं दिव्य सरसिज है । निःसन्देह लोक साहित्य साहित्य की आत्मा है[3]।

---

2. हरयाणा प्रदेश का लोक साहित्य {उपोद्घात से} डा० दीनदयाल गुप्त
3. बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में दिये गये लोक साहित्य भाषण का अंश, डा० रामस्वरूप खरे, दिनांक 30.4.95

नवोदित कवि के लिये लोक साहित्य प्रेरणा का स्रोत है और जनपदीय अध्ययन के लिये समृद्ध पृष्ठभूमि । शिष्ट साहित्य के जो कलाकार जन जीवन से घुले-मिले रहे हैं; उनका साहित्य सामान्य जनता का साहित्य बन गया है। यही नहीं, वह तो जनता की विराट् अलिखित पुस्तक पर अंकित हो गया है । शिष्ट साहित्य का लोक साहित्य से घनिष्ट सम्बन्ध है । वास्तविक बात तो यह है कि शिष्ट साहित्य लोक साहित्य का ही विकसित, संस्कृत तथा परिमार्जित रूप है । इग्लैण्ड के चिडविक बन्धुओं ने "ग्रोथआव लिटरेचर" नामक ग्रन्थ में तथा एफ. बी. गूमर ने "बिगिनिंग्स आव पोयट्री" नामक सुप्रसिद्ध रचना में यह दिखलाने का प्रयास किया है अभिजात वर्ग के साहित्य के निर्माण में लोक साहित्य ने प्रचुर योगदान किया है[4]।

वस्तुतः किसी भी देश के लोक साहित्य का अध्ययन उसकी सभ्यता, संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कला एवं साहित्य, सामाजिक जागरण एवं आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन करने में सहायक होता है[5]।

संस्कृत की "लोकदर्शने[6], धातु से "घञ" प्रत्यय करने पर "लोक शब्द बना। इसकी व्युत्पत्ति अनेकशः है । यथा "(1) "लोक्यते उसौलोकः" (2) "लोकन्ते जनाः[7] अस्मिन् इति लोकः" (3) "लोकयते अनेन[8] (करणे, घञ) इति लोकः इस प्रकार "लोक"

---

4. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, 16वां भाग, (हिन्दी लोकसाहित्य) सम्पादकीय वक्तव्य से ।
5. खड़ी बोली का लोक साहित्य, डा० सत्या गुप्ता, भूमिका से ।
6. वाचस्पत्यम, षष्ट भाग चौ. सं. ग्र. मा. ग्रन्थ संख्या 94, पृष्ठ 4833
7. शब्द कल्पद्रुम, चतुर्थो भाग, सं. ग्र. मा. ग्रन्थ संख्या 93, पृष्ठ 23।
8. शब्द स्तोय महानिधि, सम्पादक- तारानाथ भट्टाचार्य, पृष्ठ 344,

शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ जन समुदाय बोधक हुआ । ऋग्वेद में "लोक" शब्द का अर्थ अनेक स्थानों पर "सामान्य जनता के लिये प्रयुक्त किया जाता है । इसी प्रकार वेद व्यास[9] प्रणरित महाभारत पाणिनि[10] की अष्टाध्यायी" पंतजलि[11] के महाभाष्य, भरतमुनि[12] के "नाट्यशास्त्र एवं अमरकोश[13] प्रभृति ग्रन्थों एवं कोशों[14] में "लोक" शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

बौद्ध धर्म के प्रचार के समय "लोक" शब्द का प्रयोग मानवीय भावनाओं से संयुक्त होकर प्रकट हुआ । यहाँ 'लोक' शब्द "साधारण जन-समाज" के अर्थ में व्यवहृत हुआ है । प्राकृत और अपभ्रंश ग्रन्थों के भी "लोकजन्ना", "लोक अपवाय" शब्द इसी अर्थ की ओर इंगित करते है । "लोक" शब्द परम्परा का सहेजक एवं अनुरति की संवेदना पूर्ण अभिव्यक्ति का सतत संवाहक है । उसके पास अपने शब्द, भाषा और लोकग्राही शैली है । जीवन से सम्बन्धित सभी उपकरणों के लिये उसका अपना एक सामूहिक व्यक्तित्व है । वस्तुतः जिसे संस्कृति की संज्ञा दी जाती है । वह लोक से भिन्न नहीं है । उसका उत्स लोक ही है । लोक का महत्व सर्वकालीन है[15] ।

लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है । उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है । लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है । लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है । अर्वाचीन मानव के लिये "लोक" सर्वोच्च प्रजापति है । "लोक" लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी, और लोक का व्यक्त रूप मानव- यही हमारे जीवन का अध्यात्म शास्त्र है । इनका कल्याण हमारी

---

9. "अज्ञान तिमिरान्धस्य लोकस्यतु विचेष्टतः,
   ज्ञानांजन शलाकाभिन्नेत्रोन्मीलन कारकम् । ..महाभारत, आ. पर्व।/84श्री मदभागवत गीता, अध्याय 15, श्लोक 18
10. "लोक सर्वलोकाहम, अष्टाध्यायी, 15. 1.44
11. "लोकस्य पूर्णे" सि0 कोमुदी, पृष्ठ 277 वार्तिक सूची
12. नाट्य शास्त्र, भरतमुनि, 14वां अध्याय,
13. अमरकोश, ज्ञानार्धवर्ग, श्लोक, 2, पृष्ठ 228,
14. हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञान मण्डल वाराणसी, पृष्ठ 686
15. भारतीय लोक शास्त्र, श्याम परमार, पृष्ठ 10

मुक्ति का द्वार, निर्वाण का नवीन रूप है । लोक-पृथ्वी-मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याण तम रूप है ।[16]

तुलसी[17] और पन्तजी[18] ने भी साहित्य में लोक हित सर्वोपरि माना है । इसी प्रकार "साहित्य" का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है "सहितेन साहित्यम" अर्थात साहित्य के लिये रमणीयता एवं चारुता वांछनीय है । साहित्य उसे कहा जाना चाहिये जिसे पढ़कर मानव भाव तन्मय हो उठे, उसकी अपनी भावनाओं के साथ साहित्यान्तर्गत भावनाओं का साधारणीकरण हो सकें, उसके दिल और दिमाग पर स्थायी प्रभाव पड़ सकें. जिसके जीवन की सच्चाईयां कुछ इस तरह पिरोयी हुई हो कि जीवन और साहित्य फूल की सुगन्ध की तरह आपस में एकाकार हो जायें । साहित्यकार को साहित्य में स्वयं को अभिव्यक्त करता है । यहां स्वयं से तात्पर्य अपने वातावरण से, अपने जीवन के सुख दुखात्मक भावों से, समाज की बहुरंगिणी, जीवन व्यापिनी अनुभूतियों से है । इस प्रकार उच्चतम कोटि का साहित्य चिरनवीन होता है । जीवन की बदली परिस्थितियों में भी वह एकसा रहता है क्योंकि उसके स्थायी भाव मानस मन की उन सूक्ष्म अनुभूतियों का दिग्दर्शन कराते हैं जो देशकाल की विभिन्न दशाओं में भी कभी अपना रूप नहीं बदलती साहित्य में इतनी विशालता और व्यापकता होनी चाहिये जिससे यह प्रत्येक युग में मानव मन को अपनीओर ~~व्यापकता~~ खींच सकें, और यह तभी सम्भव है जब साहित्यकार-मानव-मन को मानव जाति को विचारों को अपनी भावनाओं से रंगकर प्रस्तुत करें। यही साहित्यकार करता भी है और साहित्य की सच्ची और शाश्वत परिभाषा है[19]।

---

16. सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति विशेषांक, वासुदेव शरण अग्रवाल पृष्ठ 65
17. "भाषा भणति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कर हित होई ।
                                                            श्री रामचरित मानस ।
18. "वही प्रज्ञा का सत्यस्वरूप, हृदय में बनता प्रणय अपार ।
    लोचनों में लावण्य अनूप, लोक सेवा में शिव अविकार ।। ·रश्मिबन्ध,
19. आधुनिक हिन्दी कविता में लोक तत्व, डा० वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी, पृष्ठ 18-19

मनुष्य अपने को व्यक्त करने को आकुल क्यों है ? क्यों इसकी सिसृक्षा उसे चैन से नहीं बैठने देती है ? रम्यरूप और मधुरस्वरलहरी क्यों उसे अन्यमनस्क बना देती है । जनम -जनम रूप देखने के बाद भी रूप देखने की प्यास क्यों नहीं मिटती है[20]। रंग-रेखा, शब्द-रूप के माध्यम से बारबार उसे रूपायित करने के बाद भी यह रचना की परम्परा थम क्यों नहीं जाती ? उत्कृष्ट कला कृतियों के रस से बार-बार मनको भरने के बाद भी नवीन कलाकृतियों की रचना में मानव प्राण क्यों लगे हुये है ? बात यह है किमनुष्य की यह प्यास अनन्त है । इसकी इस प्यास को अनन्त ही भर सकता है । जगत में हम जिन पदार्थों में सौन्दर्य की झांकी पाते है, वे खण्ड रूप में है उसे आभासित करा पाते है । इसलिये ये हमारी अशान्त तृष्णा को शान्त करने के बजाय और बढ़ा जाते है कला कृतियों के माध्यम से मनुष्य उसी अनन्त को बांधकर अपनी अनन्त प्यास को बुझाना चाहता है । किन्तु उस अनन्त को बांधने का मनुष्य जितना ही प्रयास करता है उतना ही वह छूट जाता है और परिणाम यह होता है कि उसकी वेदना बढ़ती जाती है[21]। विरह उसका आराध्य बन जाता है[22] फिर मनुष्य अपनी जिन इन्द्रियों, मन, बुद्धि के माध्यम से उसकी अनुभूति करना चाहता है, जिन आकुलताओं में उसे बांधना चाहता है, वे अत्यन्त सीमित और बौने होते है । वह असीम की अनुभूति इन मन शक्तियों के माध्यम से कर ही नहीं सकता । वह बार बार उसे नये रूपों में पाना चाहता है " नवो नवो भवति आयमान:" वैदिक ऋषि का यही सूत्र इसके मूल में गतिशील है[23]। इसीलिये ऋषि उस एक तत्व को अनेक प्रकार से गाते हैं । मूल तत्व की बहुविध कल्पना, मीमांसा और

---

20. जनम जनम हम रूप निहारिल-नयन न तिरपित भेला- विद्यापति ।
21. साहित्य और सौन्दर्य बोध , डा0 रामशंकर द्विवेदी, पृष्ठ 12
22. "आकुलता ही आज बन गयी तन्मय राधा ।
 विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा । - महादेवी वर्मा ।
23. कल्पवृक्ष, डा0 वासुदेवशरण अग्रवाल, 1953, पृष्ठ 5.6

दर्शन भारतीय संस्कृति और साहित्य का व्यापक सत्य है[24]।

यों "लोक" और "साहित्य" शब्द संयुक्त होकर "लोक साहित्य" को जन्म देते है। लोक साहित्य में सहज सौन्दर्य और अकृत्रिम भाव-छवियों के जो मनोहारी चित्र अंकित रहते है, उन्हे देखकर सुनकर अथवा पढ़कर उसकी युग-युग की अतृप्त प्यास शान्त होती है। जहां लिखित साहित्य नश्वर और क्षण भंगुर है, वहीं लोक साहित्य अपने मूल रूप में शाश्वत और चिरन्तन है। लोक साहित्य तो एक अनगढ़ हीरे के समान है, जिसमें अभूतपूर्व दीप्ति और अनमोल सौन्दर्य सन्निहित है[25]।

भारतीय साहित्य का क्षेत्र अनन्त है। वह सागर-संगम के समान ज्ञान-विज्ञान एवं अध्यात्म का सुधासिन्धु है। वह न केवल इस लोक का प्रत्युत समूचे ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधित्व करता है और विश्व की एकात्मता का बोध कराता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने विस्मृत संचित वैभव को पहचानने और उसे उन्मुक्त मानस से ग्रहण कर देना, काल एवं समाज की नवीन आवश्यकताओं के अनुरूप अर्थान्वित वाणी में अभिव्यक्त करें। राष्ट्र भाषा की स्पृहणीय साहित्यिक उपलब्धि का रहस्य इसी में है[26]।

लोक साहित्य लोक संस्कृति का ही एक अंग है। लोक साहित्य को अपौरूषेय वाङ्मय की संज्ञा से अभिहित किया जाता है यह वह साहित्य है जिसमें अक्षरों का बन्धन नहीं है, शिष्ट साहित्य की तथाकथित अनुशासनबद्ध सीमाबद्धता भी नहीं है। यह साहित्य न तो पुस्तकों में सुरक्षित है और न स्याही में ही स्थिर। इसके रचयिता अज्ञात सहस्राधिक लोक कण्ठ हैं। लोक साहित्य युगों पूर्व की अपनी वेदना, हर्ष-विषाद, आनन्द-उद्वेग, उत्साह संयोग, वियोग, प्रतारणा, घृणा तथा ग्लानि आदि के

---

24. ऋग्वेद, 1/9/3

25. बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में दिये गये "लोक साहित्य" भाषण का अंश, डा० रामस्वरूप खरे, दिनांक 30.4.95

26. साहित्यिक निबन्ध, सम्पा. डा० श्यामनारायण पाण्डेय, {1987} सत्यका प्रेरक साहित्यकार लेखक- वीरेन्द्रस्वरूप, पृष्ठ 8,

गुम्फित भावों को आज के मानस तक बाधिक अभियान द्वारा पहुँचा रहा है। इस अपौरुषेय वाङ्मय-विटप की जड़ें अतीत की धरती की गहराई तक फैली हुई है।[27]

लोक साहित्य में तो जनाकांक्षाओं का प्रतिबिम्ब होता है। युगबोध के अनुसार जिस प्रकार साहित्य में बदलाव आता है उसी प्रकार लोक साहित्य में। उदाहरणार्थ गांधी जी के सम्बन्ध में आजनजाने कितने लोक गीत प्रचलित हो गये। यह बात अवश्य है कि बदलाव की वह प्रक्रिया साहित्य की अपेक्षा लोक साहित्य में धीमी गति से होती है। साहित्य में बौद्धिक चेतना के कारण यह परिवर्तन शीघ्र होता है, जबकि लोक साहित्य उसे तब अपनाता है, जब वह जीवन का अंग बन जाता है। लोक साहित्य में विजातीय शब्दों सहित वे सब बातें समाविष्ट हो जाती है, जो लोक व्यवहार में जिन्दा रहती है। लोक साहित्य मूलतत्व भावात्मकता अथवा संवेदनात्मकता है।[28]

2.2:-लोक साहित्य एवं लोकाभिव्यक्ति -:

साहित्य शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है किन्तु इसमें जगत के कल्याण तथा एकीकरण की भावना तो निर्विवाद रूप से समाहित है। प्रेमचन्द्र ने इसे "जीवन का आलोचना,[29] मैथ्यू अर्नोल्ड ने इसने जीवन की व्याख्या"[30] और पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने "ज्ञानराशि का संचित कोश,[31] माना है। यह साहित्य यद्यपि युगानुरूप करवट लेता है। आदि काल का साहित्य तद्युगीन परिस्थितियों और जीवन के अनुरूप करवट लेता है। आदिकाल का साहित्य तद्युगीन परिस्थितियों और जीवन के अनुरूप युगमय था। वीर रस प्रधान था, इसके बाद भक्तिकाल में साहित्य ने

---

27. प्रसाद के काव्यों का लोकतात्विक अध्ययन, डा० डे० अन्नपूर्णा(डा० विजयपाल सिंह के आशीर्वचन से, पृष्ठ 3,
28. हिन्दी मासिक वीणा, सम्पा० डॉ० श्यामसुन्दर व्यास, वर्ष 66, अंक 2, पृष्ठ 33
29. प्रेमचन्द्र कुछ विचार, पृष्ठ 6
30. "लिटरेचर इज द क्रिटिसिज्म आफ लाइफ"
31. "साहित्य की महत्ता" नामक निबन्ध से, महावीर प्रसाद द्विवेदी।

समाज की दिशा के अनुरूप ही अपना रूप भी भक्ति की ओर मोड़ दिया । इसी प्रकार रीतिकालीन साहित्य में तत्कालीन शृंगार और विलास की प्रवृत्तियों का योगदान है । आधुनिक काल के साहित्य में भी हमें भारतेन्दु युग से लेकर आज तक के साहित्य में समय, परिस्थितियों और जीवन शैली की छाप दिखाई देती है[32]।

साहित्य का ही एक अंग लोक साहित्य है । आज कल साहित्य और लोक साहित्य के मध्य सीधी एक विभाजक रेखा खिंची दिखाई देती है । हम लोक गीतों, लोक कथाओं आदि को साहित्य की परिधि से दूर रखते हैं । पहले इस प्रकार की दूरी नहीं थी । इसलिये प्रचलित लोक भाषा में रचना करके बहुत सारे कवि साहित्य में प्रतिष्ठित हुये और कालान्तर में उनका साहित्य लोकग्राह्य होकर लोक साहित्य भी बन गया । लोक साहित्य सदा लोक भाषा या जनभाषा में होता है । यह उसकी अनिवार्यता है जबकि साहित्य की भाषा लोक भाषा से कुछ भिन्न परिनिष्ठित और मानक भाषा होती है । इसलिये विभिन्न क्षेत्रों का लोक साहित्य उन क्षेत्रों की आंचलिक विशेषताओं और प्रचलित जन भाषाओं या बोलियों के कारण भिन्नता रखता लोक साहित्य में जन जीवन के वास्तविक यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है । उसमें उस अंचल की परम्परागत संस्कृति, उसके मूल्य, मुख्य उत्सव, त्यौहार, जीवन-पद्धति, रीति-रिवाज आदि के साथ मानवीय सम्वेदना का गहरा स्पर्श होता है । बहुत से लोगों को इससे भ्रम हो सकता है कि लोक साहित्य शताब्दियों से आ रही परम्परा का संवाहक है, जबकि समय के साथ इसमें भी परिवर्तन होता है । इस परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी अवश्य होती है । यह सब नया लोक ग्राह्य होने पर लोक साहित्य और लोक संस्कृति का अंग बन जाता है[33]।

---

32. हिन्दी मासिक "वीणा" सम्पा. डा0 श्यामसुन्दर व्यास, साहित्य और संप्रेषण" नामक लेख-अनिल सरवरे, वर्ष 63, अंक 7 जौलाई 90 पृष्ठ 53

33. हिन्दी मासिक वीणा, सम्पा. डा0 श्यामसुन्दर व्यास, वर्ष 66, अंक 1 जून 93 पृष्ठ 32,

लोक साहित्य और साहित्य की निकटता हम इस रूप में देख सकते हैं कि हिन्दी भाषी क्षेत्र की विभिन्न बोलियों की बहुत सी रचनायें, कालजयी साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित हुई । उदाहरणार्थ विद्यापति हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि हैं और उनके गीत मैथिली लोकगीत के रूप में उस अंचल में खूब प्रचलित है । अर्थात वे लोक साहित्य का भी अभिन्न अंग है । जायसी ने प्रचलित अवधी में "पद्मावत" की रचना की, परन्तु लोक जीवन की धारा से मेल न खाने के कारण वह लोक साहित्य न बन सका । इसके विपरीत तुलसीदास के "रामचरित्र मानस" में परिष्कृत अवधी के प्रयोग के बावजूद वह लोक साहित्य की ही भांति जन-मानस की गहराई में उतर गया । इसी प्रकार सूरदास के ब्रजभाषा के गीतों और ब्रज के लोकगीतों में कोई बड़ा अन्तर दिखाई नहीं देता । इससे सिद्ध हो जाता है कि साहित्य लोक ग्राह्यता के आधार पर लोक साहित्य बन जाता है और कोई लोक साहित्य महत्वपूर्ण साहित्य भी हो सकता है, भले ही नगरों की लाइब्रेरियों और प्रेसों में न आने के कारण लोग उसके प्रति उदासीन रहें । बुन्देली के लोककवि ईसुरी की फागें लोक साहित्य तो है ही, उनमें उत्कृष्ट साहित्य के तत्व भी विद्यमान है। असल बात तो यह है कि साहित्य और लोक साहित्य को अलग करने वाली कोई विभाजक रेखा नहीं, खींची जा सकती । दोनों में मूलतः कोई अन्तर नहीं है। यदि इस दृष्टि से अन्तर किया जायें कि लोक साहित्य अपढ़ ग्रामीणों और साहित्य नगरीय बुद्धजीवियों के लिये है तो बहुत सा साहित्य ऐसा मिलेगा, जिसे अपढ़ ग्रामीण भी सुनते गाते हैं और बहुत सा अलमारियों में कैद रहकर खत्म हो जाता है । अन्तर केवल बौद्धिकता और शिष्ट भाषा का है । और बहुत बार लोक साहित्य ही साहित्य का उत्प्रेरक होता है[34] ।

---

34. वीणा हिन्दी मासिक, डा० श्याम सुन्दर व्यास, पृष्ठ , वर्ष 66 जनवरी 93, अंक 1, पृष्ठ 32

लोक साहित्य की अन्य दो सशक्त विधायें "लोकगीत" और "लोक कथायें" है । इनमें भी लोक साहित्य में प्रचुर सामग्री विद्यमान रहती है । ये लोकगीत अथवा लोक कथायें बुद्धिजीवियों और सुधी साहित्यकारों द्वारा प्रणीत नहीं की जातीं यही इनकी मौलिकता है, वरन इनके रचनाकार नितान्त अज्ञातनामा और अशिक्षित होते हैं इसीलिये ये मौखिक परम्परा को प्राप्त जन-कण्ठ में बसे अकृत्रिम उपादान युग-युगों तक अविनश्वर और शाश्वत रहते हैं । इनमें जीवन कल-किल्लोल करता स्वाभाविक रूप से दृष्टिगोचर होता है । लोकगीतों की उपादेयता पर विचार करते हुये उपन्यास सम्राट वृन्दावन लाल वर्मा ने ठीक ही कहा है - "साधारण जन - मानस प्रकृति की हरियाली, लताओं, कलियों, फूलों, पतझड़, श्रृंगार एवं करुणा के अधिक निकट रहा है । पक्षी अपने भीतर की किसी गुदगुदी या पुकार पर चहक उठते हैं । लगभग उसी तरह जन-मानस के भीतर से लोक गीत उभरते और झरते हैं । इन गीतों में जो कुछ होता है, स्वाभाविक होता है । उनकी लाग और चोट सीधी होती है । लोकगीत किसी भी भूखण्ड के निवासियों के हों अपनी स्वाभाविकता, सरलता, ओजस्विता और बोधगम्यता से भरे पूरे होते हैं[35] । लोकगीतों के मर्मज्ञ पारखी एवं लोक तत्ववेत्ता श्री शुक्ल के मतानुसार -" कविता का सच्चा कार्य यदि संवेदनापूर्वक जीवन की रसमय व्याख्या करना है और यदि उसका उद्देश्य सुरुचि पूर्ण भावों और संस्कार युक्त भाषा में "जीवन की प्रतिच्छाया को उतारता है तो हम निःसंकोच कहेंगे कि शास्त्रीय ढंग की कविता या यों कहिये कि आधुनिक कविता उतने अंश में उस उद्देश्य को पूरा नहीं करती, जितने अंश में "लोकगीत" करते हैं फिर चाहे ये लोकगीत किसी प्रान्त, किसी देश और भाषा के क्यों न हो ? मानव जीवन का कोई ऐसा कक्ष नहीं, कोई ऐसा विषय नहीं जिस पर लोकगीतों का स्वर्गीय मधुर प्रकाश न पड़ा हो। सम्पूर्ण जीवन की व्यंजना

---

35. बुन्देलखण्ड के लोकगीत, वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन झांसी, संस्क. 1981, पृष्ठ ।

यदि कहीं हो पाई है तो लोकगीतों में । लोकगीत हमारे ऐहिक जीवन के पल-पल के साथी हैं । साहित्यिक काव्य केवल गिने-चुने हुये जीवन के कुछेक उभरे हुये स्तम्भों-विषयों पर अटका हुआ है । लोकगीतों की भावनायें, स्वाभाविक है, जीवन की वस्तुयें है[36] ।

जहाँ तक साहित्य में लोकाभिव्यक्ति का प्रश्न है, इसकी परम्परा अत्यधिक सशक्त और प्राचीन है । "हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रारम्भिक काल अपभ्रंश काल के नाम से अभिहित है । प्राकृत भाषा के बाद ही अपभ्रंश का प्रादुर्भाव हुआ । प्राकृत का बोध जिस प्रकार "गाथा" या "गाहा" से होता था उसी प्रकार "दोहा" या "दूहा" से अपभ्रंश का । अपभ्रंश को लोक प्रचलित काव्य भाषा भी कहते हैं ।[37] साहित्यिक क्षेत्र में अवतीर्ण होने के पूर्व इसे "देशभाषा" ही कहा जाता था यह सबकी अत्यन्त मधुर एवं प्रिय लगती है । नाट्याचार्य भरत मुनि भी ऐसा ही स्वीकार करते हैं । ब्रजभाषा और अवधी भाषा की भांति अपभ्रंश साहित्य को "भाषाकाव्य" कहा जाता है । भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश के लिये जिस भाषा काव्य या देश भाषा की चर्चा की गई है, मूलरूप में वह हमारी लोकभाषा ही है, जिसके माध्यम से लोक साहित्य अपने विविध भाषा रूपों में अवतरित हुआ है । हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में दो प्रकार की अपभ्रंश की चर्चा की है । "एक तो वह अपभ्रंश जिसकी चर्चा उन्होंने अपने व्याकरण में की है; यह साहित्यिक भाषा थी । दूसरी ग्राम्य अपभ्रंश जो सम्भवतः "रासकडोम्बिका" आदि श्रेणी की गेयरचनायें लिखी जाती थी[38] । दसवीं शताब्दी में अनेक चरित काव्यों की रचना हुई है जिससे हिन्दी साहित्य के कथानकों, कथानक, रूढ़ियों, काव्यरूपों, कवि प्रसिद्धियों, छन्द

---

36. बुन्देलखण्ड के लोकगीत, उमाशंकर शुक्ल, इण्डियन प्रेस लिमि. इलाहाबाद संस्करण संवत 2010, पृष्ठ 27,

37. कीर्तिलता, "देसिलवयना सब जन मिट्ठा ते तैसउ जम्पौ अवहट्टा", विद्यापति पृष्ठ 6,

38. हिन्दी साहित्य का इतिहास, {अपभ्रंशकाल} आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 10, 11.

योजना आदि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है. ये सभी विषय लोक तात्विक धरातल पर भी अंकित है । लोक तत्व की दृष्टि से भी इनका प्रचुर महत्व सुनिर्दिष्ट है । ये चरितकाव्य लौकिक काव्य ही है ।

नाथपंथ के प्रभाव में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही आते हैं जिनकी परम्परा किसी न किसी रूप में लोक में फैली हुई है । उस समय भी न जाने कितने फकीर झोली लटकायें, सारंगी बजाते हुये "राजाभरथरी" के गीत गा-गाकर भीख माँगा करते थे । राजाभरथरी का कथानक लोक कथानक के रूप में ही स्वीकार है । सिद्धों और योगियों की रचनाओं के विषय का जहाँ तक सम्बन्ध है, उनसे हमारे जीवन की स्वाभाविक अनुभूतियों से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि उनके विषय है योग साधना, तांत्रिक विधान आत्म निग्रह आदि । फिर भी भाषा की दृष्टि से उनका प्रयास हमारे लोक तत्व को छूता हुआ प्रतीत होताहै । उनकी भाषा "देशभाषा मिश्रित "अपभ्रंश" है[39] । अपभ्रंश काल में कुछ ऐसे रचनाकार हुये है जिनकी रचनाओं में लोक तत्व के बड़े ही हृदयग्राही उदाहरण मिलते हैं । यथा -

"जे बहुदिण्णा दिअहड़ा दइएं पव सतेण ।
ताण गणंतिए अंगुलिड जज्जरियाउ नहेण ।।"

अर्थात जो दिन या समयावधि प्रवास जाते समय मेरे प्रियतम ने दिये थे, उन्हे नख से गिनते-गिनते मेरी अंगुलियाँ जर्जर हो उठी । सुप्रसिद्ध समीक्षक एवं प्रख्यात साहित्यकार द्विवेदी जी के अनुसार-"वस्तुत: छन्द काव्यरूप, काव्यगत रूढ़ियों और और वक्तव्य वस्तु की दृष्टि से दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक का लोकभाषा का साहित्य परिनिष्ठित अपभ्रंश में "प्राप्त साहित्य का ही बढ़ाव है, यद्यपि उसकी भाषा

---

39. आधुनिक हिन्दी कविता में लोक तत्व, डा0 वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी पृष्ठ 87,

का साहित्य उक्त अपभ्रंश से थोड़ी भिन्न है । इसलिये ये दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के उपलब्ध लोक भाषा साहित्य को अपभ्रंश से थोड़ी भिन्न भाषा का साहित्य कहा जा सकता है[40] । "इसी आधार पर ही शुक्ल जी ने यहीं से हिन्दी साहित्य का आदिकाल स्वीकारा है[41] ।

वीरगाथा काल के साहित्यिक निर्माण की पृष्ठभूमि में जिस प्रकार की राजनीतिक दूरदर्शिता विद्यमान थी, बाहरी आक्रमणकारियों के कारण देश जिस प्रकार अस्त व्यस्त था, भला उच्चकोटि के काव्यात्मक सर्जन की गुंजाइश कहाँ थी ? उस समय लोक भाषा का साहित्य तो सुरक्षित नहीं रह सका, वह लोक मुख में ही जीवित रहा और लोक परम्परा ही उसके संरक्षण का आधार बनी । अत: उस समय केवल वीरगाथाओं का विकास सम्भव था । प्रथक मुक्तक के रूप में और द्वितीय प्रबन्ध के रूप में शुक्ल जी ने इन गाथाओं को प्रबन्ध काव्य के साहित्यिक रूप में और वीर गीतों {बैलेड्स} के रूप में विभाजित किया है । उनके अनुसार "साहित्यिक प्रबंध के रूप में जो सबसे प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है वह है "पृथ्वीराज रासो" वीरगीत के रूप में हम सबसे पुरानी पुस्तक "बीसलदेव रासो" मिलती है । समयानुसार इसमें भाषा के परिवर्तन का आभास मिलता है । जो रचना कई सौ वर्षों से लोगों में बराबर गायी जाती रही हो, उसकी भाषा अपने मूलरूप में नहीं रह सकती । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण "आल्हा" है जिसके गाने वाले प्राय: समस्त उत्तरी भारत में पाये जाते है[42] । पृथ्वीराज रासो की कथा शुक-शुकी सम्वाद के रूप में लिखी गयी है । यह सम्वादात्मक पद्धति लोक कथात्मक ही है । जगनिक का "आल्हा" वीरगीतात्मक पद्धति में उपलब्ध होता है । यह बड़ा ही सर्वप्रिय हुआ है। आज भी बरसात के दिनों

---

40. हिन्दी साहित्य {आदिकाल} आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 43,
41. हिन्दी साहित्य का इतिहास {अपभ्रंश काल} आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 20,
42. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 32,

में इसके गीत बड़ी वीरतामयी वाणी में गाये और सुने जाते है । आलोचकों ने "आल्हा" को लोक साहित्य के अन्तर्गत गिनाया है । भाषा और वस्तु के परिवर्तन के बावजूद यह आज लोक जीवन की सर्वाधिक प्रियनिधि बनी हुई है । श्री शर्मा के मतानुसार "आल्हा" तो इतिहास के कुछ तन्तुओं पर लोक साहित्य के ताने-बाने से बना हुआ है । इस गाथा में पद-पद पर लोक वार्ता का उपयोग हुआ है । इसमें उड़ने वाले घोड़े, जादू, के चमत्कार देवी-देवताओं की शक्ति का उपयोग, आश्चर्यकारक घटनायें एवं विविध लोक विश्वास सभी समाविष्ट हैं ।[43] जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार - "प्रसिद्ध बुन्देलखण्डी शूरवीर "आल्हा और उदल" के इतिहास के चारों ओर लोक गाथाओं का एक वृहत चक्र संकलित हो गया है[44] । संदेश रासक" तो हमारे लोक जीवन की मर्मस्पर्शनी कोमलानुभूतियों का ही दिग्दर्शक माना जाता है । "ढोला मारू" की मारवाणी और 'पदमावत' की नागमती की विरहानुभूतियां लोक-जीवन और लोक मानस की अनूठी निधियां है । लोक साहित्य में उपलब्ध विरहवर्णन से भिन्न कोटि का वर्णन इसे मानने की गुंजाइश प्रतीत नहीं होती। घरेलू जीवन की ऐसी सच्ची तस्वीर लोक गीतों के अतिरिक्त कहां सुलभहै । बोलचाल की भाषा में काव्य रचना करने वाला सर्वप्रथम अमीर खुसरों ही है । इनकी सारी रचनायें शत-प्रतिशत लोक साहित्य से प्रभावित है ।

तेरहवीं शताब्दी तक कुछ स्थिरता हो गई थी । धर्म को एक नई संज्ञा देने की नींव पड़ चुकी थी, और यह संज्ञा लोक मानस तक पहुंच कर लोकधर्म का रूप लेना चाहती थी । धर्म का पूर्ववर्ती स्वरूप कतिपय वर्ग की बौद्धिक चेतना का विलास समझा जाता था । आम जनता के लिये तत्सम्बन्धी परिज्ञान एक अनबूझ पहेली जैसा था । इसलिये सर्वसाधारण जनता जिस धर्म को पहचान सके, जिस जन जीवन का नक्शा धर्ममय हो जायें।

43. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 32,
44. हिन्दी मासिक "साहित्य सन्देश", गोवर्धन शर्मा, अक्तूबर 1952

ऐसी भावना बल पकड़ रहीथी । इसमें समस्त जनता के मन को आन्दोलित किया । इसने बिना किसी पार्थक्यके समाज के हर वर्ग, हर स्तर के लोगों को अपना अधिकार प्रदान किया । इसका क्षेत्र ही जनता का मन हो गया । यही कारण है कि सन्त कवियों ने इसके प्रसार का माध्यम भी लोकभाषा ही स्वीकारी, जो लोकधर्म एवं लोकचित्त से उद्भूत है, उसकी भाषा शास्त्रीय कैसे हो सकती थी[45] ? एक सुप्रसिद्ध विद्वान का कथन यहां अत्यधिक समीचीन है । यथा -

"इन सन्त भक्तों ने अपने उपदेशों और अपनी भक्तिज्ञान मूलक वाणी को सामान्य जनताके बीच प्रसारित किया । इसके लिये उन्होने भाषा भी जनता की चुनी अभिजात वर्गीय भाषा संस्कृत तो कुयें के जल की तरह बंधकर अपना लोक प्रवाह खो चुकी थी । लोक कण्ठ में जीवित समान्य बोल चाल की भाषायें बहते नीर के समान निर्मल और मधुर थी । सन्त भक्तों ने इसी लोक भाषा को ग्रहण किया[46] ।" उन दिनों जितने भी प्रकार के काव्य रूप प्रचलित थे और लोक साहित्य ने भी जितने प्रकार के काव्य रूपों के साहित्य में, गहीत [illegible] हो जाने की सम्भावना थी, उन सबका उपयोग भक्ति के नये आदर्श और नये जीवन के दर्शन के आधार पर किया गया । लौकिक रस की नीति परम्परा को सूरदास, नन्ददास, हित हरवंश और तुलसी आदि भक्तों ने अपूर्ण आत्म समर्पण मूलक और अनन्य सात्विक भक्ति के पदो में बदल दिया। चर्चरी, फाग हिन्डोला, बसन्त आदि लोक प्रचलित गानों पर कबीर, तुलसीदास, आदि भक्तों ने ऐसा भक्तिरंग चढ़ाया कि शताब्दियों बाद भी वह रंग रंचमात्र भी फीका या भद्दा नहीं हुआ है[47] । उत्तर मध्यकाल युग में हिन्दी कविता का एक नये सिरे से सामने आया। शास्त्राभ्यास के कारण इस काल की रचनायें जीवन से दूर हट गयीं, ये कवि रीति ग्रंथों

---

45. आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व, डा0 वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी, पृष्ठ 91,
46. हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व, डा0 रवीन्द्र भ्रमर, पृष्ठ 17,
47. हिन्दी साहित्य, डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 287-88,

के निर्माण में कुछ इस तरह लिपटे कि लोक पक्ष विस्मृत ही हो गया । परन्तु कुछ कवि "नीति" को विषय बनाकर "सतसई" लिखने में जुटे जो प्रत्यक्ष लोक साहित्य का रूपांतर कहा जा सकता है । लोकोक्तियों और कहावतों से इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा है । एक सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान के शब्दों में "अपने नीति शास्त्र की चतुरता में भारतवासी संसार में अद्वितीय रहे है ।। हिन्दी एवं प्रान्तीय भाषाओं के ऐसे मुक्तक इन कहावतों व लोक गीतों की विरासत में है[48]। सच पूछिये तो भारतीय जनता के जीवन में प्रविष्ट तीन कवि तुलसी, गिरधर और घाघ कभी भुलाये नहीं जायेंगें ।

डा० सिंह के अनुसार "रीति कालीन कवियों ने वंशी के सम्बन्ध में अनेक चमत्कार विन्धायिनी उक्तियां कही हैं, मान और खण्डिता के प्रकरण तो उनके प्रिय विषयही रहे है । प्रकारान्तर से दान लीला तथा अन्य अनेक प्रसंगो को इन कवियों ने रूढ़ि के रूप में समेट लिया है[49]।

भारतीय जीवन में कतिपय रीति-रिवाज ऐसे होते है जो देश की राजनीतिक परिस्थिति से प्रभावित होकर सामाजिकता को नया स्वरूप प्रदान करते हैं । पर्दा प्रथा का प्रादुर्भाव ऐसी ही परिस्थिति की देन है । मर्यादा और चरित्र की रक्षा के लिये मुस्लिम काल में जो इसका प्रारम्भ हुआ तो धीरे-धीरे यह प्रथा कुलीनता और प्रतिष्ठा बन गयी। भारतीय लोक जीवन तो उसके बाद इसे भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग ही समझने लगी। रीति कवियों ने इस सम्बन्ध परभी कलम चलाई है । पारिवारिक में कुछ ऐसी रूढ़ियां मिलती है जिनका पालन आज भी ग्राम्यजीवन में अधिकांशतः विद्यमान है । उदाहरण के लिये बहुधा देखा जाता है कि मध्यवर्गीय परिवार में पिता अपने पुत्र को बड़ो के सामने अपनीगोद में लेने से संकुचित होता है[50]। नई दुलहिन भी इसी प्रकार झिझकती है । इसी

---

48. संस्कृत कोश, {भूमिकासे} सरमा नियरविलियम्स,
49. रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, डा० बच्चनसिंह, पृष्ठ 211,
50. आधुनिक हिन्दी कविता में लोक तत्व, डा० वीरेन्द्र नाथ द्विवेदी, पृष्ठ 96

लोक परम्परा का बड़ा ही सुन्दर चित्र मतिराम ने उतारा है -

"निति छिननिन्दति नन्द है, छिन-छिन सासु रिसाति ।

प्रथम भए सुत को बहू, अंकहि लेत लजाति ।।"

इसी प्रकार घूंघट का भी प्रचलन हमारे यहाँ प्राचीन काल से ही लज्जा और संकोच की रक्षा के लिये शुरू हुआ । । पदमाकर ने इस रीति की चर्चा की है -

"मुखं घूंघट घालि सके नहि माइक, माइके पीछे दुराय रही"

रीतिकालीन कवियों के वातावरण के कारण जिस प्रकार श्रृंगारिक माहौल साहित्यिक-जगत में व्याप्तथा, उसकी प्रतिक्रिया जीवन के हर क्षेत्र में पड़ी है । कवियों में बड़ी चतुराई से या तो नायिका के सौन्दर्य वर्णन के बहाने या नायक नायिका के मिलन के लिये अवसरान्वेषण के उपक्रम में भारतीय जीवन के विभिन्न पर्वों एवं उत्सवों की ओर दृष्टिपात किया है । फिरभी कवियों की परम्परा प्रसूत आस्था जो अपने भारतीय स्वरूपों में विछिन्न नहीं हुई है, अवश्य सम्बन्ध स्थापित किये रहती है । इन कवियों द्वारा वर्णित इन अवसरों पर ऐसा ही वर्णन किया है । रीतिकालीन कवियों द्वारा वर्णित उत्सवों एवं व्रतों के सम्बन्ध में श्रीसिंह ने अपना मत इस प्रकार व्यक्ति किया है - "दीपावली का वर्णन केवल इन रूप में में आया है कि नायिका अटारी चढ़कर दीवावली का दृश्य देखने जाती है और उसकी अपनी ज्योति के सामने दीपावली की दीप मालिकायें मन्द पड़ जाती है । रक्षाबन्धन और दशहरे का वर्णन केवल "ठाकुर" ने किया है । रक्षा बन्धन के अवसर पर नायिका का श्रृंगार कजली का गान, कृष्ण के हाथों रक्षा बन्धन देखना तथा जौ के अंखुये को जल में प्रवाहित करना आदि का वर्णन इन त्यौहारों की झांकी उपस्थित करता है[51] ।श्री कृष्ण के दरवाजे पर ही दशहरे का उत्सव भी होता है, यहां पर आकर्षण केन्द्र श्रीकृष्ण का पान देने बैठना है[52] ।अरवती का अत्यन्त

51. ठाकुर ठसक, कवि ठाकुर, छन्द 125,

52. ठाकुर ठसककवि ठाकुर, छन्द 126,

रोचक वर्णन भी इनके काव्य में उपलब्ध हैं । यह बुन्देलखण्ड का त्यौहार है । वैशाख शुक्ल तृतीया [अक्षयतीज [अखती] के दिन स्त्रियां किसी वट वृक्ष के नीचे पुतलियां पूजने जातीं है । पुरूष वर्ग भी अपनी पूर्ण साज-सज्जा में इसे देखने के लिये उपस्थित होता है । यहां पर एकत्र स्त्री-पुरूष को अपने प्रिय अथवा प्रियतमा का नाम लेना पड़ता है यदि लज्जावश पति पत्नी का और पत्नी पति का नाम नहीं लेते तो वे कोमल गुलाब या चमेली की छड़ी से एक दूसरे पर आघात करते है । यह एक आंचलिक पर्व है । किन्तु उस अंचल का यह इतना अधिक प्रसिद्ध पर्व है कि "ठाकुर" ने पांच छन्दों में इसका वर्णन किया है । इस त्यौहार के साथ विनोद को इस प्रकार बांध दिया गया कि वह प्रेम परगहरा रंग चढ़ा देता है[53] । तीज का वर्णन महाकवि बिहारी ने इस प्रकार किया है -

"तीज परब सौतिन सजे, भूषन बसन सरीर ।

सबै मरगजे मुंहकरी, बहै मराजें चीर ।।"[54]

इस युग के कवियों ने नायिकाओं के वेश-भूषा के विविध उपकरणों की चर्चा की है जो हमारे भारतीय जीवन की प्रसाधन-सामग्रियां है । महावर, मेंहदी, काजल, अंजन, अंगराग आदि वस्तुयें रीतिकालीन कविताओं में प्रचुरता से मिलती है, जिनका प्रयोग लोक-जीवन का श्रृंगार माना जाता है, इन कवियों ने अपनी नायिकाओं को जिन गहनों से सज्जित किया है वे आज भले ही बदल गये हों, परन्तु लोक-जीवन की वे अक्षय निधियां है । शीशफूल, बरोना, कर्णफूल, गुलूबन्द, तथा नथ, बेसर, हार, बाजूबन्द, करधनी, पायल, बिछुआ आदि गहने लोक जीवन से कभी दूर नहीं होंगे, मुहावरों और लोकोक्तियों को लेकर रीति साहित्य लोक साहित्य के बहुत समीप आ जाता है । ठाकुर आदि कवियों की लोकोक्तियां बड़ी प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है ।

---

53. ठाकुर ठसक, कवि ठाकुर, छन्द 102.- 106
उक्त समस्त अवतरण "रीति कालीन कवियों की प्रेमव्यंजना" डा0 बच्चन सिंह, और प्रणीत कृति से लिये गये है । पृष्ठ 356,57

54. बिहारी सतसई, महाकवि बिहारी,

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल से लेकर रीतिकाल तक की लम्बी अवधि में लोक साहित्य की अनेकानेक विषय सामग्रियां हमें उपलब्ध हैं। हिन्दी कविता में लोकाभिव्यक्ति की ये ही पूर्व परम्परायें हैं।[55]

जहां तक भारतेन्दु युगीन कविता में लोकाभिव्यक्ति का प्रश्न है, निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि "जीवन की यथार्थ अवस्था के चित्र प्रतीक, कहावतें, और पहेलियों के प्रयोग से तो इन लोगों ने लोक-मानस को ही प्रतिबिम्बित कर दिया। भारतेन्दु और उनके समकालीन कवियों ने विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत, विदा के अवसर पर गाये जाने वाले गीत, जेवनार के समय गायी जाने वाले मनोरम गारियां आदि। इसतरह हम देखते है कि भारतेन्दु युग में लोक-तत्वों का समावेश अपनी स्वाभाविक विशिष्टताओं के साथ हुआ है। यह युग लोक-सामग्रियों से पूर्णतया समृद्ध है। कथायें लोकापादानों से मंडित है। विविध भावों से युक्त पदो में, स्तुतियों और भजनों में भी लोकतत्वों की प्रेरणा है और खास करके लोक गीतों की सर्जना तो अपने मूलरूप में ही अलंकृत है। मुहावरे, कहावतें और पहेलियां भारतेन्दु युग की विषयाभिव्यक्ति के प्राणवन्त आधार ही है। इसके अतिरिक्त भारतीय जीवन के विश्वास रीतिरिवाज, व्रत, पर्व, उत्सव आदि के चित्रण तो विषयक्रम में स्वतः स्फुरित होते गये है। इसलिये यह कहना कि यह युग लोकपक्ष की दृष्टि से बड़ा समृद्ध है, गलत नहीं होगा।[56]

काव्य के धार्मिक पक्ष में इन कवियों की उपदेश की प्रवृत्ति में कोई नवीनता नहीं है। आनन्द प्रद होते हुये भी ये कवि नैतिकता का पाठ पढाने का

---

55. आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व, डा० वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी, पृष्ठ 98,
56. आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व, डा० वीरेन्द्र नाथ द्विवेदी, पृष्ठ 105,

लोभ नहीं, संवरण कर सके हैं । इनकी उपदेशात्मक रचनायें कवरी आदि उपदेशकों की नीति सम्बन्धिनी रचनाओं से भिन्न नहीं है । कबीर आदि की भांति भारतेन्दु युग के कवि भी संसार की क्षणिकता का राग अलापते है[57]। यथा- "सांझ सबेरे पंछी क्या कहते है, कुछ तेरा है । हम सब इक दिन उड़ जायेंगें, यह दिन चार बसेरा है[58]।।"

इस प्रकार सोहर, पद, कीर्तन, लोरी, कजली, आल्ह, झूमर, मलहार, बारहमासी, हिंडोला, चैता, होली, प्रभृति लोकगीत, शैलियों को भरपूर अपनाया गया है इस युग में सच ही कहा गया है कि " इन रीतियों की आवधारा में वियोगिनी की व्यथा के साथ परिवर्तित होते काल का रूप और उसकी वियोग की प्रतीक्षा मिलकर आई है । प्रत्येक मास की प्रमुख रूपरेखा के आधार पर वह अपने प्रिय को याद कर लेती है । और उसके लिये विकल हो उठती है[59]।

इस युग में भारतेन्दु जी ने स्वयं कुछ काव्यात्मक लोक कथा में लिखी है। इनका अपना महत्व है इनमें देवी छद्म लीला, तन्मय लीला, दानलीला, रानी छद्मलीला, कृष्णलीला, एवं वेणुगीत लीला आदि प्रमुख है । इन्हें हम "वर्सठेल" कह सकते हैं । "इन लीला-कथाओं को परम्परा द्वारा ग्रहण किया गया है परन्तु परम्परा का साहित्यान्तर्गत लिखित रूप ही प्रकट हुआ है । आश्चर्यजनक और कल्पना मंडित अंशों की भी सांकेतिक पूर्ति इन लीलाओं से हो जाती है । साथ ही लोक-रूचि का लोक-रंजन, तो इन लीला-कथाओं का मुख्य आधारही होता है । अतः स्वीकृत लोक कथाओं के आधारभूत कारणों का भी उनके द्वारा सम्यक पालन होना प्रतीत होता है[60]।

द्विवेदी युग की कविता में भी लोकाभिव्यक्ति बड़ी सरस एवं मधुर हुई है इस युग के प्रमुख कवि रहे है मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय

---

57. आधुनिक काव्यधारा, डा० केसरी नारायण शुक्ल, पृष्ठ 85,
58. भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रेम फुलवारी, पृष्ठ 75,
59. प्रकृति और हिन्दी काव्य, (मध्ययुग) डा० रघुवंश, पृष्ठ 406,
60. आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व, डा० वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी, पृष्ठ 160,

एवं राम चरित उपाध्याय, इन कवियों ने न केवल साहित्यिक कृतियां सृजित की वरन् सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक ऐतिहासिक वृतों के आधार पर रचनायें प्रस्तुत की, जिनमें समाज की रूढ़िवादिता एवं पुरातन पंथिता की जड़ को काट फेंकने के लिये इन कवियों ने व्यंग्यात्मक शैली में प्रहार किया । किसान, मजदूर और नारी वर्ग की सेवा, विधवा, समस्या, बाल विवाह और बहु विवाह का प्रश्न, समाज की दरिद्रता, अर्थ व्यवस्था और तज्जनित दुरावस्था, धर्माडम्बर, शिक्षा का अभाव और शिक्षा प्रणाली के दोष आदि सभी प्रकार के प्रश्न और समस्यायें, समान रूप से इन कवियों का ध्यान आकृष्ट किये हुये थे[61]। इसके साथ-साथ राष्ट्रीय विचारधारा भी उदात्त रूप में इस युग में अभिव्यक्त हुयी है। "किसी भी देश का स्वर्णिम अतीत उसके वर्तमान की विपन्नता में प्रेरक हुआ करता है[62]। विदेशी सत्ता के आधीन रहकर पतनोन्मुख भारत को पुनर्जीवन देने के लिये यह आवश्यक था कि इस कालके कवि अपने अतीत का यश गान करके समृद्धि एवं पुनरुत्थान की दिशा में अपने देशवासियों को प्रवृत करते । इसी दृष्टि से युगीन कवियों ने राम और कृष्ण के चरित्रों की चर्चा से देशवासियों के मन में उनके प्रति श्रद्धा-भावना का संचार किया । इस युग के कवि, विचारक, लेखकों, आदि ने ऊँचे चरित्र की निर्मिति में ऐसे प्राचीन आख्यानक काव्यों का अवलम्बन लेकर जनता को सदा उत्प्रेरणा दी । द्विवेदी जी की स्पष्टता यहां पठनीय है- "भारत में अनन्त आदर्श नरेश, देशभक्त, वीर शिरोमणि और महात्मा हो गये हैं । हिन्दी के सुकवि यदि उन पर काव्य करें, तो बहुत लाभ हो । बलाशीर युद्ध, वृत्र संहार, मेघनाद बध और यशवन्तराव महाकाव्य की बराबरी का एक भी काव्य हिन्दी में नहीं वर्तमान कवियों को इस तरह के काव्य लिखकर हिन्दी की श्री वद्धि करनी चाहिये[63]। निःसन्देह जयद्रथ वध, मार्य विजय,

---

61- आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद, डा० परशुराम शुक्ल "विरही" पृष्ठ 95,

62- आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व, डा०वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी, पृष्ठ ७९,

63- सरस्वती हिन्दी मासिक§हिन्दी की वर्तमान अवस्था§ अक्तूबर 1911, महावीर प्रसाद द्विवेदी ।

वीर पंचरत्न, गांधी गौरव आदि लोक गाथाओं के विषय भी इनसे मिलते-जुलते होते हैं। अतः इन्हे लौकिक कथारूप की तरह स्वीकारा गया है । प्रिय प्रकाश, किसान, यशोधरा, मिलन, स्वप्न, पथिक आदि कृतियों में लोकाभिव्यक्ति के रूप में जिन लोक तत्वों का सम्मिलित किया गया है, वह प्रशंसनीय है । ऐसा करने पर कृतियों का और अधिक स्वरूप निखर उठा है । इस प्रकार "लोक जीवन के प्रतीक, किसानों की दुखभरी कहानी अपनी कथाओं में कहकर इन कवियों के इनके सरल जीवन पर होने वाले जुल्मों की चर्चा करके उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है तथा उनके सुखी जीवन की कामना की है । इस प्रकार विविध कथाक्रमों को पार करती हुई द्विवेदी युगीन आख्यानक गतियां अपने विषम वर्गीकरण के परिवेश में कथा तत्वों को संजाये हुये लोक तत्तात्मक कथा-रूपों को जीवन देती रही है । पौराणिक एवं काल्पनिक कथाओं के अनेक आयामों में लोक कथा के लिये निरूपिता विषयों की अनेकानेक झांकियां इस युग के कथा काव्यों में समाई हुई है । अतः इस दृष्टि से इस काल के कथा काव्यों की लोकतात्विकता प्रदान किये जाने का समर्थ आधार उपलब्ध है [64] ।

इसके अनन्तर छायावादी काव्य युग का श्रीगणेश होता है । यद्यपि इस युग की प्रमुख विधा मुक्तक, गीत और प्रबन्ध तथा महाकाव्य है फिर भी इनमें लोक तत्वों की अभिव्यक्ति प्रचुर परिमाण में हुई है ।

मूल रूप से द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर अन्तः प्रकृति की सूक्ष्मता, मार्मिक अभिव्यक्ति, काल्पनिकता एवं सौन्दर्यप्रियता से सम्बन्धित कवितायें सामने आईं। सुप्रसिद्ध समीक्षक एवं आलोचक श्री शुक्ल के मतानुसार "धीरे-धीरे काव्य-शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें सन्देह नहीं । इसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य मूर्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमलपद विन्यास,

---

64. आधुनिक हिन्दी कविता के लोकतत्व, डा0 वीरेन्द्र नाथ द्विवेदी, पृष्ठ 204

इत्यादि काव्य का स्वरूप संघटित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी।[65] इसमें कोई कोई सन्देह नहीं है कि छायावाद का भव्य भवन भले ही पाश्चात्य साहित्य की नींव पर खड़ा हुआ हो पर उसके अन्य सभी उपकरण उसके अपने है, भारतीय है। इसलिये तो "इसकी प्रवृत्ति में भारतीय जनमानस की आकांक्षाओं, हास, परिहासों एवं सामाजिक, नैतिक मूल्यों के दर्शन होने लगें और धड़ल्ले से यह काव्य प्रवृत्ति हमारे जीवन के साथ घुल मिल गयी। इसके विरोध में खुदी खाई पट गयी, व्यैक्तिक सीमाओं की संकीर्णता विशाल जनपथ की तरह प्रशस्त मालूम पड़ने लगी। यह बात प्रकट हो गयी कि इसमें समस्त मानवीय तत्वों का समावेश है, चाहे वह राजनीतिक अशान्ति हो या सामाजिक विषमता। हमारी विपन्नता हो या रूढ़िवादिता के खिलाफ आन्दोलन के स्वर सब कुछ इसमें निहित है। धीरे-धीरे छायावाद के ऊपर पड़ी संशय की कुहेलिका छटने लगी और इसे यथोचित सम्मान मिला[66]। डा० शर्मा के मतानुसार- "द्विवेदी युग की वैष्णवी श्रद्धा और सशंक नैतिकता के बदले पहले पहल अविश्वास और मानवीय प्रेम और शृंगार के स्वर सुनाई पड़ते हैं। नैतिकता के विरोध ने उच्छृंखलता का रूप नहीं लिया। नये कवियों ने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिये उस सामाजिक स्वाधीनता की मांग की, जिसे पिछले युग के सामाजिक बन्धन दबाकर रखना चाहते थे। इन कवियों ने नये ढंग से प्रकृति का चित्रण करना शुरू किया। पहले पहल हिन्दी कविताओं में उसके यथार्थ चित्र देखने को मिले। सामाजिक रचनाओं में दलित वर्ग के प्रति भावुक सहानुभूति प्रकट की तो साथ ही साथ सामाजिक ढांचा बदलने के लिये विप्लव और क्रान्ति की मांग की रहस्यवादी कविताओं में उन्होंने आनन्द और प्रकाश में इष्टदेव की कल्पना की, लेकिन अपने जीवन की दारुण व्यथा को वे भुला नहीं सके।[67]"

---

65. हिन्दी साहित्य का इतिहास, (नयी धारा) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 655,
66. आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व, डॉ० वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी, पृष्ठ 207,
67. निराला, डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ 68,

छायावाद में जिस प्रेम की भावना का निश्छल प्रकाशन हुआ उससे इसे वासनापरक काव्य बिल्कुल नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह अनादिभावना तो शाश्वत सत्य है । अनादि काल से इसका अभिव्यक्तीकरण होता आया है । हमारे यहाँ लोक जीवन की आदिम गाथायें प्रेम की विभिन्न अनुभूतियों से भरी पड़ी है । हमारा सम्पूर्ण लोक-वांग्मय, जिसकी परम्परा शताब्दियों से सर्वथा मौखिक रूप में ही अक्षुण्ण है, प्रेमगीतों की मधुर सरस पंक्तियों से रससिक है, जिन्हें भारतीय जीवन बड़ी तन्मयता से गाया करता है । फिर भला छायावादी काव्य प्रवृति में इसका होना कैसे असंगत ठहराया जा सकता है । ये गीत तो लोक काव्य की अन्तः सलिला की अकृत्रिम भावोर्मियां है । श्री चौहान के मतानुसार "पुराने काव्यानुशासनों से मुक्ति दिलाने के लिये छायावादी कवियों ने काव्य भाषा, छन्द, अलंकार, वस्तु विन्यास, मूर्तिविधान, और अभिव्यंजना शैली में शतशः प्रयोग किये, तुकान्त, अतुकान्त, मुक्त छन्द, विषम चरण बन्ध आदि सभी का नियोजन किया और सीधी सादी भाव संचलित भाषा से लेकर लाक्षणिक और अप्रस्तुत विधानों से युक्त चित्रमयी भाषा तकका भी प्रयोग किया। प्रगीत, खण्डकाव्य, प्रबन्धकाव्य भी लिखे और बरी गति, सम्बोधि गीति, शोक, गीति, व्यंग्यगीति आदि काव्य के अन्य रूप विधानों का भी प्रयोग किया । इन कवियों का भाषा और छन्द प्रयोग केवल बुद्धि विलास, वंचन, भंगिमा, कौशलया कौतुक वृत्ति प्रेरित नहीं रहा, बल्कि उनकी कविता में भाषा भावों का अनुसरण करते दीखती है, और अभिव्यंजना अनुभूति का । यह ठीक है कि छायावादी कविता विषय प्रधान है और बहिर्जगत और जीवन की समस्यायें कवि विशेष की व्यक्तिगत अनुभूतियों, यथातथ्य द्रव्य और वर्णन घुसकर विक्षिप्त नहीं उपस्थित करते और प्रत्येक कविता एक सुशृंखलित और अखण्डित मान इकाई की सृष्टि करती है[68]

---

68. हिन्दी साहित्य अस्सी वर्ष डा0 शिवदानसिंह चौहान, पृष्ठ 90

इस प्रकार समूचे छायावादी काव्य युग में प्रकृति प्रेम के साथ साथ चिन्मय, भावना, पुरातन मान्यताओं से विद्रोह, अहं का प्रकाशन, वैयक्तिक चेतना, का प्रादुर्भाव, सौन्दर्याकर्षण, कल्पना प्रधान भावुकता, रहस्यवादिता, राष्ट्रीय भावना सामाजिक वैषम्य के प्रति क्षोभ, निराशावाद, ऐन्द्रिय भावना एवं मानवतावादी दृष्टिकोण प्रवृति प्रवृतियों के सुस्पष्ट दर्शन होते है ।

अंग्रेजी के रोमानी पुनरुत्थान युग के कवियों ने भी अपने काव्यों में लोक कथाओं और पौराणिक तथा लोक जीवन के उपादानो {पात्रों, कहावतें आदि} का स्वीकार कर अपने मन्तव्यों की पुष्टि तो कीही है, प्रतीकादि से भाषा की अभिव्यक्ति शक्ति को भी बढ़ाया है[69]। छायावादी कवियों ने भी इसी प्रकार अपने काव्य का प्रणयन लोक तत्वों को आधार बनाकर ही किया है । "इन कवियों ने अपने काव्य का श्रृंगार ग्राम-प्रकृति के सौन्दर्य से, ग्राम्य जीवन एवं लोकवृत्तियों की गहन उदात्तता से किया साथ ही लोक भाषा एवं लोक गीतों की लाक्षणिकता, पतीकात्मकता तथा भावुकता से भी अभिनवता प्रदान की । इन कवियों ने लोकप्रवृति के साथ ही लोक गीतों की सम्प्रेषणीयता, संवेदनीयता को ही अपनी रचनाओं में उतारा है । इन्होंने मानवभावना, सहज अनुभूति, प्रतीक योजना, लाक्षणिकता, सहजता आदि जिन विशेषताओं के अपने काव्य का मण्डन किया है, वे सभी के सभी लोक गीतों की ही प्रेरणायें है । अपने समय की जड़ काव्यधारा को नया, प्राण देने के लिये शिष्ट और परिमार्जित काव्य ने सदैव ही लोक काव्य-धारा का सहारा लिया है, छायावाद ने भी शास्त्र बद्धता और औपचारिकता के विरुद्ध मानव हृदय के नैसर्गिक भावों को पकड़कर उनकी कल्पना और कला परक अभिव्यक्ति की है[70]। अतः स्पष्ट है कि "शास्त्रीय कविता लोक तत्वों की ऋणी है । इस प्रकार छायावादी

---

69. छायावाद के गौरव चिन्ह, प्रो. क्षेम, पृष्ठ 310
70. छायावाद के गौरव चिन्ह, प्रो. क्षेम, पृष्ठ 31

कविताओं की धमनियों में बहता हुई रस धारा अन्यत्र की नहीं, लोक भूमि ही है। इस युग के कवियों ने जन-जीवन की मर्म भेदिनी भावनाओं का अवलम्बन लिया है। प्रार्थना परक गीत हों या प्रकृतिपरक, लोरी गीत हो, चाहे चरखा गीत, ऋतु सौन्दर्य का वर्णन हो या होली, राखी जैसे पर्वों त्यौहारों का गायन और चाहे हमारे जीवन का रीति रिवाज हो चाहे अन्ध विश्वासों की ओर झुकाव सर्वत्र छायावादी कवियों ने लोक तात्त्विकता की चर्चा की है[71]। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है :-

"कल्पयुग व्यापी विरह को एक सिहरन में संभाले,
शून्यता भर तरल मोती से मधुर सुधि-दीप बाले,
क्यों किसी के आगमन के शकुन स्पन्दन मैं मानी ?
मेघपथ में चिन्ह विद्युत के गये जो छोड़ प्रियपद,
जो इन्हीं के चाय का मैं जानती संन्देश उन्मद, 72
किसलिये पावन नयन में, प्राण में चातक बसाती ?"

ग्राम्य जीवन के सुरम्य वातावरण में हंसती प्रकृति लोक रंगो में डूबकर कैसी मनोरम प्रतीत होती है निराला के निराले वर्णन में एक झांकी देखिये :-

"हंसते बढ़े धान-खेतों में जन पर हरे रेत जैसे,
अरहर, कांकुन, सांवा, उड़द और कोदो की खेती लहराई
बन आई है आमों की
निकले कमल सरों में और कांबुए लहरे,
खेत निराती हैं बालायें कर लियेखुरपिया,
गाती बारहमासी सावन और कजलियां,
हरी भरी खेतों की सरस्वती लहराई,

---

71. आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व, डा० वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी, पृष्ठ 210

72. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 16

मग्न किसानों के घर उन्मद बजी बधाई,

खुली चांदनी में उफ और मंजीरे लेकर,

बैठ गोल बांधकर लोग निछेखतों पर,

गाने लगे भजन कबीर के, तुलसीदास के,

धनुष भंग के और राम के वनोंरास के,

कतकी में गंगा-नहान की बढ़ी उमंगें,

सजीगाड़ियां, चले लोग मन चढ़ती चंगे ।"[73]

प्रसाद जी के शब्दों में लोक- जीवन की एक सुन्दर झांकी द्रष्टव्य है -

"दिन भर थेकहां भटकते तुम बोली श्रद्धा भर मधुर स्नेह,

यह हिंसा इतनी है प्यारी जो भुलवाती है देह गेह,

मै यहां अकेली देख रही, पथ सुनती तीपद ध्वनि नितान्त,

कानन में जब तुम दौड़ रहे मृग के पीछे बनकर अशान्त,

ढल गया दिवस पीला पीला तुम रक्तास्था बन रहे घूम,

देखो नीड़ों में विहग युगल अपने शिशुओं को रहे चूम,

उनके घर में कोलाहल है मेरा सूना है गुफा द्वार,

तुमको ऐसी क्या कमी रही, जिसके हित जाते अन्य द्वार ।[74]

स्वरों से अर्थ का अनुसरण और वायु ध्वनि का अनुकरण तथा भावाकि में ग्रामगीतों की प्रणाली को नाम एवं वस्तु गणना की परिपाटी में देखिये- "टी०वी०टी०टुट-टुट। सर्,-सर्, मर्-मर, झन्-झन्, सन्-सन् गाता कभी गरजता भीषण, वन-वन उपवन, पवन प्रभंजन ।"[75]

---

73. "अपरा" देवी सरस्वती, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृष्ठ 157, 158

74. कामायनी {ईर्ष्या सर्ग} जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 152,

75. पल्लाविनी, सुमित्रानन्दन पन्त, पृष्ठ 116,

तथा- "मिल रहे नवल बेलि तरू प्राण ।

झुकी-शुक, हंस हंसिनी संग ।।

लहर-सर, सुरभि-समीर, विहान

मृगी-मृग, कलि अलि, किरण-पतंग ।।[76]

विदा के समय अपनी प्रियवस्तुओं, प्रिय पात्रों के स्मरण की स्वाभाविकता लोकतत्व करूणा की कलित कालिन्दी बनकर प्रवाहित हो उठा है -

"ओ स्वप्नों के संसार विदा, ओ बालकपन के प्यार विदा ।

ओ शोभा के आगार विदा, मनमोहक के मनुहार विदा ।।

ओ भ्रान्ति विदा, ओ शान्ति विदा, ओ अपनी भोली भूल विदा।

ओ मेरी मुरझाई आशाओं की समधि के फूल विदा ।।[77]

प्रस्तुत विदा गीत में भाव लोक-स्पर्श से कैसा करूण और मार्मिक बन पड़ा है -

"पीलाचीर कोर में जिसके चकमक गोटा जाली

चली पियाके गांव उमर की सोलह फूलों वाली ।

मां की दीठ दुलार पिता की ओ लजवन्ती भोली

ले जायेगी हिय की मणि कोअभी पिया की डोली ।।

मंगल मय हो पंथ सुहागिन यह मेरा वरदान,

हरसिंगार की टहनी-से फूलें, तेरे अरमान ।

छाया करती रहे सदा तुझको सुहाग की छाँह,

सुख-दुख में ग्रीवा के नीचे रहे पिया की बांह ।।[78]

"आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व के जो स्वरूप मिलते है, उनसे पूर्ण युग में अपेक्षाकृत लोकतत्वों के रूपों की परम्परा अधिक सबल और समर्थ है ।...आधुनिक

---

76. पल्लविनी सुमित्रानन्दन पन्त, पृष्ठ 178.
77. नूरजहां§दसवां सर्ग§, गुरूभक्त सिंह "भक्त" पृष्ठ 7।
78. रसवन्ती, रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ 13, 15, 18

कविता लोकतत्वों से मण्डित होकर सहज ही दीर्घ जीवी हो गई है । उसका जो कुछ सहज है, जीवन के मूल उत्स से सम्बद्ध है, समसामयिकता से परे है वह सब लोक तात्त्विक स्पन्दन का परिणाम है । शिष्ट जन और सामान्य जन दोनों के लिये अनुरंजनकारी होने की सामर्थ्य इसीलिये आधुनिक कविता में आ गई है ।"[79]

"लोक गीतों के असीम नीलाकाश में लोकतत्व की लालिमा किसी मुग्धा नायिका के कपोलों की भीड़ की भांति सलज्ज सरस और मधुर हो उठती है । समूचे लोक साहित्य में लोकगीत की वे "मरु उद्यान" हैं जहां क्षणभर निरमकर हारे थके बटोही को अपार शान्ति का अनुभव होता है । फिर लोकगीत का स्वभाव तो सहज ही नैसर्गिक, सरल और अत्यधिक प्रेरक है । लोकगीतों में अभिव्यंजित मुक्त और हृदय स्पर्शी भाव उसे और अधिक तरल और सरल बना देते हैं । सच तो यह है कि उनमें एक अभूतपूर्व संजीवनी शक्ति विद्यमान है जिसे पाकर हमारा मृत अतीत भी जीवन्त हो उठता है । लोकगीतों को यद्यपि आभरणों की अपेक्षा नहीं है फिरभी वे सौन्दर्य को और अधिक निखार देने में पूर्णरूपेण सक्षम हैं । अनुभूति और अभिव्यक्ति में वे विरले है, उनकी कोई समता नहीं । लोकगीत तो अरण्य में प्रस्फुटित उन प्रसूनों की भांति हैं जिनमें सुगन्धि के साथ साथ मादकता, मोहकता और अनूठी मिठास है । कुछ सहज और ऋतु छवियां यहां दृष्टव्य है ।[80]

"देरी में इटिया न दइऔं मोरे बाबुल बिटिया न दइऔं परदेस ।

देरी की इटिया रिबसक जै है बाबुल बिटिया बिसूरे परदेश ।।"

ईसुरी की एक सशक्त फाग देखिये -

---

79. आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व, डा0 वीरेन्द्र नाथ द्विवेदी, पृष्ठ 274,

80. बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में दिये गये भाषण का अंश, दिनांक 30 अप्रैल 94, वक्ता युग कवि डा0 रामस्वरूप खरे पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष डी0वी0सी0 कालेज उरई §उ0प्र0§

"जो तुम छैल, छला हो जाते, परे अंगरियन राते ।
धरी-धरी घूंघट खोलत में, नजर सामने राते ।।
यों पोछत गालन खां लगते कजरा देत दिखाते ।
"ईसुर" दूर दरस के लानें, ऐसे नईं" ललाते ।।

अर्थात विदेशी प्रेमी यदि कहीं तुम मेरी इन अंगुलियों के छल्ला {अंगूठी} बन जाते तो तुम घूंघट घालते समय मेरी दृष्टि के सम्मुख रहा करते और मुंख पोछते समय मेरे कपोलों का स्पर्श करते तथा नयनों में काजल लगाते समय मेरे मुख की छवि को निरखा करते एवं अपने दूर वास करने पर भी मेरे दर्शन के लिये कभी भी लालायित नहीं रहते ।

फागुन मास आ गया है । यह मास अन्य मासों की अपेक्षा प्रत्येक बाल, वृद्ध और वनिताओं के लिये आनन्दवर्धक सिद्ध होता है । तभी तो इस महीने से आकर्षित हो कवि सेवकेन्द्र ने लिखा है "दरस परस को है, हरष हुलस को है, फागुन को मास रागरंग को है रस को है" गोस्वामी तुलसी जैसे भक्तकवि ने भी इस मास के सम्बन्ध में लिखा "मनहु मुये मन, मनसिज जागा" आल्हखण्ड के रचयिता जगनिक ने तो इस महीने में विधुरों का वर्णन करते हुये यह भाव प्रदर्शित कर दिये कि "रंडुवा रावे रे फागुन में, सुन-सुन बिछियन की झनकार" फागुन मासमें वास्तव में बिछियों की झनकार इतनी मधुर लगती है कि नेत्रेन्द्रिय की शक्ति क्षीण होने पर भी वृद्ध पुरूष अपनी कर्ण इन्द्रिय द्वारा इस झनकार को श्रवणकरने हेतु अति आतुर भाव से द्वार पर बैठे रहते है । बिछियों की झनकार के सम्बन्ध में लिखे गये लोकगीत बुन्देलखण्ड में "सैद" के नाम सेविख्यात है । उसके बोलों का चयन प्रस्तुत है। एक युवती दूसरी से कह रही है :-

धीरे धरो धन पांव, न कानन बिछियन की धुन सुन परे ।
बैसई चाल गयन्द की उर सई पै मद असकर । न कानन ......
गोर बनक बिछिया बने जो करतई गरल अहार । न कानन .....
गोरी फूंक-फूंक के डग धरौं उर "मित्र" जई में सार । न कानन ....

अर्थात हे धन्यास्त्री अपने पैरों को धरती पर धीरे-धीरे रखो जिससे तुम्हारे इन बिछियों की मधुर झनकार किसी के कानो में सुनाई न पड़ें, क्योंकि एक तो तुम्हारी चाल ही स्वभावतः मद मस्तगजेन्द्र की तरह है और उस पर मुग्धावस्था का मद चढ़ा हुआ है तथा इसके अतिरिक्त जो तुम अपने पैरों की अंगलियों में बिछिये पहने हो, वह मोरपक्षी के बनावट के हैं जो विषपान करता है तब फिर इन बिछियों के सम्बंध में क्या कहा जाये, इस कारण हे गोरी धना अपने पैर इस धरती पर फूंक-फूंक कर (धीरे-धीरे) धरकर चला करो, इसी में कल्याण है[81]।

लोक गीतो में "फाग" का अपना विशिष्ट स्थान है । कवि सौन्दर्य की परम्परा का आंखों से देखता है, इसीलिये उसमें संयम और मर्यादा है । फागकार का लोक मन गांव की रसिकता से परिपूर्ण है । उसकी दृष्टि गांव की गोरी के नखशिख पर बार बार ठहरती है और उसके सौन्दर्य का रसपान हर बार करती है । ऐसा लगता है कि कवि की ऐन्द्रिक संवेदना की प्यास कभी नहीं बुझती । असलियत यह है कि नायिका और कवि दोनों की आंखों में "रसयारा है । किसने किसकी आंखों में भरी है, कहना मुश्किल है । वैसे कवि कहता है[82]

"घूंघट खोलो आदर दैवे, पलक पांवड़न लैवे ।
आंखन में रसयार भरे सौं इन नैनन में नैबें ।
खोले दोर दोउ कअरारे राखी नईयां कैबें ।
कयं "प्रकाश" हिय-बाहिर पै दई जनम भरे कों रैबें ।"[83]

नायिका का सौन्दर्य कवि प्रसाद के सौन्दर्य की तरह "लाजभरा है । वह भारतीय मर्यादा के घूंघट से ढका रहता है । लेकिन नायिका ने सम्मान देने के लिये

---

81. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, रामचरण ह्रदयारण "मित्र" से साभार पृष्ठ 372
82. बुन्देली प्रकाश, ओमप्रकाश सक्सेना "प्रकाश" (आधायिका) से डा0 नर्मदा प्रसाद गुप्त की समीक्षा अंश, पृष्ठ 2-3.
83. उपर्युक्त ,

अपने घूंघट खोलाहै,पलकों के पांवड़े बिछाकर अतिथि देवता का स्वागत कियाहै ।
और उसके नेत्रों में "रसयार" उड़ेलने के लिये अपनी रसयार भरी आँखें टिका दी है
फिर सभी दरवाजे खोल दिये है और अपने हृदय की बखरी {निवास} जन्म भर को
दे दी है । इस प्रकार कवि ने सौन्दर्य औरप्रेम केरिश्ते को सांगरूपक से स्पष्ट कर
दियाहै । इसी "रसयार " से छकी आँखें कभी कभी लोक-संस्कृति के रंगो से रंजित
हो उठती है और कभी कभी लोक-चेतना के स्तर पर सामाजिक यथार्थ को विम्बित
करती है । कवि होली,सावन,दिवाली आदि उत्सवों और त्यौहारों द्वारा प्रेम-
व्यापारों की संगति ही खोजता है । ठीक भी है प्रेमी और प्रेम के बिना संस्कृति
के सभी उपकरणऔर श्रृंगार फीके हैं । उसे तो नायिका में ही सावन और दिवाली
दिखते हैं[84] । यथा -

> "मों पै घुघटा की ढिक डारे,नैन उरैन संभारें ।
> पूरें चौक मांग सेंदुर दै आंखन टीका पारें ।
> कजरा दै कें करें उमावस दोऊ नैन उजयारें ।
> लगत "प्रकाश" दिवारी आ गई हंसत झलझरी बातें[85] ।

प्रस्तुत फाग में दिवारी के अवसर पर पोतनी माटी से ढिंग डालना,
गोबर से उरैन संवारना,चौक पूरना औरफिर हल्दी से टीककर एवं अक्षत चढ़ाकरदीपक
रखनातथा फुलझाड़ी जलाना जैसी क्रमिक क्रियाओं से दिवारी का सांस्कृतिक चित्र
उभरता है । इस रूप मेंकविरीति कवियोंकीरूढ़ि से मुक्त छवियों की लिखाई करता
है[86] ।

---

84. उपर्युक्त,

85. उपर्युक्त,

86. उपर्युक्त,

2.3 :- लोक साहित्य के प्रकार -:

लोक साहित्य एक ऐसा निर्मल दर्पण है कि जिसमें तत्कालीन युग और समाज का सच्चा स्वरूप दृष्टिगोचर होता है । समाज अथवा युग को छोटी से छोटी बात का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ता है । जीवन से सम्बन्धित सारी घटनाओं का यथातथ्य चित्रण सहज रूप में विद्यमान रहता उसकी अपनी निजी विशेषता है । इस प्रकार "किसी भी देश अथवा प्रान्त के लोक साहित्य के विषय में कहा जा सकता है कि लोक के मौखिक साहित्य ने मानव जीवन के उल्लास और रूदन, उनकी मैत्री और मनोमालिन्य, दिलेरी और कायरता के भावों को अभिव्यक्त किया है[87] । लोक साहित्य के विशेषज्ञ और प्रशंसक ए.एम.गोर्की कहा करते थे कि "श्रमिक वर्ग का सच्चा इतिहास बिना उनकी मौखिक कृतियों के नहीं जाना जा सकता[88] । जबकि सर एडवर्डबी.टेलर के मतानुसार प्राचीन जातियों के विचारों का अध्ययन करने के लिये इतिहास की अपेक्षा उनकी पौराणिक गाथायें हमारे हित में अधिक शिक्षाप्रद हैं[89] । अस्तु स्पष्ट है कि "लोक वांग्मय लोक मानस का मौखिक सर्जना का परिणाम है और लोकसाहित्य उसी का अंग एवं अभिव्यक्ति है । इसमें मानवता के विकास के उस मंजिल की संस्कृति निहित और सुरक्षित है जबकि अभी लेखन पद्धति का प्रादुर्भाव नहीं हुआ है । लोक साहित्य मानवता का पालना है लेखन से पहले की मानवता की संस्कृति का अमूल्य भण्डार- जिसमें धर्म, दर्शन, अध्यात्म, संस्कार, कर्म-काण्ड, काव्य, नृत्य, गान आदि सभी पलते, झूलते और खेलते रहे हैं । और जो कि इन सबका समन्वित कलात्मक रूप है । लोक साहित्य धर्म, काव्यऔर कला एक साथ है । यह शब्द -व्यापार का प्रथम कलापूर्ण

---

87. बुन्देली लोक साहित्य, डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेही" पृष्ठ 36,
88. बुन्देली लोक साहित्य, डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव, "स्नेही-" से उद्धृत ।
89. बुन्देली लोक साहित्य, डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव, "स्नेही" से उद्धृत ।

आरम्भ भी है जिसके माध्यम पहेली, जंत्र, मंत्र, लोकगीत, लोक-कथाओं, आदि के रूप से प्रत्येक जाति अपनी जीवन-पद्धति और अपने जीवनानुभव को आने वाली पीढ़ी को सौंपती रही है[90]।

जहाँ तक लोक साहित्य के प्रकारों का सम्बन्ध है, विद्वानों के अनेक मत हैं। किन्तु किसी भी देश के लोक साहित्य को निम्न रूप में विभक्त किया जा सकता है। यथा -

1. लोकगीत।

2. लोक-कथायें।

3. लोक-कहावतें।

4. लोक-पहेलियाँ।

सम्पूर्ण बुन्देली लोक साहित्य भी उपर्युक्त विवरण के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है। आइयें, इसके ऊपर एक विहंगम दृष्टि डालते चलें -

1. लोकगीत :- बुन्देली के लोकगीतों की संख्या इतनी अधिक है कि अनुसंधानकर्ता के लिये सम्पूर्ण गीत संकलन करना कठिन कार्य है। लोकगीतों की भेद-बहुलता के कारण उनको श्रेणी बद्ध करना दुःसाध्य समस्या है। लोक-साहित्य के मर्मज्ञों ने लोक-गीतों का वर्गीकरण विभिन्न दृष्टिकोणों से किया है। इन गीतों की विभाजन प्रणाली के लिये यहाँ पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा किया गया वर्गीकरण अवलोकनीय है :-

§1§ संस्कार सम्बन्धी गीत §2§ चक्की और चरखे के गीत §3§ धर्मगीत§पर्व एवं त्यौहारों पर गाये जाने वाले भजन-कीर्तन आदि§ 4§ ऋतु सम्बन्धी गीत §सावन, फागुन एवं चैत के गीत§ 5§ खेती के गीत §6§ भिखमंगों के गीत §7§ मेलों के गीत, §8§

---

90. रूसी लोक साहित्य, डा० केसरी नारायण शुक्ल, §अपनी बात से§ पृष्ठ।

﴾8﴿ भिन्न-भिन्न जातियों के भीतर ﴾जैसे अहीर, चमार, धोबी, पासी, नाई, कुम्हार, भुजवा आदि﴿ 9﴿ गीत कथा ﴾छोटी-छोटी कहानियाँ जो गा-गाकर कही जाती है । ﴾10﴿ अनुभव के वचन ﴾जिन्हे घाघ भड्डरी आदि श्रेणियों में विभक्त किया गया है﴿[91]

पं० गौरीशंकर द्विवेदी "शंकर" ने भी बुन्देलखण्ड के लोकगीतों का वर्गीकरण किया है । त्यौहार राजेन्द्र सिंह[92] एवं श्री कृष्णानन्द गुप्त[93] के वर्गीकरण भी पठनीय है । किन्तु इन वर्गीकरणों में सभी प्रकार के लोकगीत समन्वित नहीं हो पाते । अस्तु स्त्री पुरूष के अवस्था भेद को दृष्टिगत रखते हुये गीतों का विभाजन इस प्रकार किया गया जा सकता है :-

﴾अ﴿ बालक एवं बालिकाओं के गीत -

1. खेलकूद के गीत ।

2. विशेष ऋतु और समय सम्बन्धी गीत ।

﴾आ﴿ स्त्रियों केगीत :-

1. संस्कार सम्बन्धी,

2. व्रत, त्यौहार एवं भक्तिभावना के गीत ।

3. श्रम, साधना के गीत ,

---

91. ﴾1﴿ सैरे , ﴾2﴿ राछरे ﴾3﴿ मल्हारे और सावन ﴾4﴿ बिलहारी और दिवासी ﴾5﴿ बाबा याभोला के गीत ﴾6﴿ फागें और लेदें ﴾7﴿ गारी ।
-मधुकर, 1 सितम्बर 1942,

92. ﴾1﴿ धार्मिक गीत- माता के गीत, कार्तिक के गीत, गोटे और बाबा के गीत, देवताओं के गीत, नौरता, सुअटा, के गीत ।
﴾2﴿ सामजिक गीत- साजन, बनरा, गारी, बन्नी, बधाई, सोहरे, गडरयाऊ, कछियाऊ, दादरे , लावनी, ख्याल, दोहरा, चौपरा, ।
﴾3﴿ सामाजिक गीत- मलारे, लेदें, सैरे, बिलमारी, फागें, दिवारी, दिवरी, सावन, बनजारा, लोरियाँ, राछला, ख्याल, राछरे, अछरी, कहरवा, होली, रसिया ।
- विंध्यभूमि, अगस्त-अक्टूबर 1947,

93. ﴾1﴿ ऋतुगीत ﴾2﴿ श्रमगीत ﴾3﴿ त्यौहार गीत ﴾4﴿ संस्कार गीत ﴾5﴿ यात्रागीत, ﴾6﴿ धार्मिक गीत, ﴾7﴿ बालगीत, ﴾8﴿ विविध गीत ।

(ङ) पुरुषों के गीत -

1. स्वच्छन्द एवं प्रेम सम्बन्धी गीत,

2. श्रमिक जातियों के गीत

3. बारहमासी

4. त्यौहार गीत

5. भजन

6. निर्गुणी लोकगीत

7. देवी देवताओं के गीत

8. भूत-प्रेतों के गीत,

9. सर्प-देश के सम्बन्धित गीत[94]

बालकों के गीतों के अन्तर्गत शिशु गीत[95] खेलगीत[96] एवं लोरिया[97] परिगणित की जाती है तथा किशोर-किशोरियों के गीतों के अन्तर्गत टेसू,[98] होरी[99] एवं मामुलिया,[100] सुअटा,[101] नौरता

---

94. बुन्देली लोक साहित्य, डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव, "स्नेही" पृष्ठ 40,

95. सोजासोजा बारे बीर, बीरन की बलइयां लै लेऊ जमुना के तीर ।

96. अटकन चटकन, दही चटाकन,
बाबा लाये सात कटोरी,
एक कटोरी फूटी·
मामा की बऊ रूठी,
काय बात पर रूठी,
दूध दही पै रूठी।

97. वर पै डारो पालना पीपर पै डारो डोर,
जौ लों भइया सोउन लागें तौनो आ गई भोर ।
तथा- झूल भइया झूल तोरी, टोपी में फूल, फट गई टोपी बिखर गये फूल ।

98. टेसू आये वावन वीर, हाथ लिये सोने को तीर, टेसू मेरा यहीं खड़ा, खाने को माँगे दही बड़ा ।

99. घिर गये घाट भरों कैसे पानी, बलमा पैज राम सौ ठानी,
जिन समुदन पै तुम गरजत ते, ऊ पै सिला उतरानी । घिर गये ....

100. ल्याओं ल्याओं चम्पा चमेली के फूल, सजाओं गोरी मामुलियां ।
ल्याओं ल्याओं घिया तुरइया के फूल, सजाओं भोरी मामुलिया ।।

101. पंगत पंगत आये है, नारे सुअटा, कौन विरन तेरी पौर?,
पौरन बैठें भैया पौरिया, नारे सुअटा, चौकिन बैठे कुतवाल।
बड़ी अटारी, बड़ेदवा नारे सुअटा बड़े तुमारे गांव ।
गज मुतयिन के झूमका नारे सुअटा, लटकें पौर, दुआर ।

झूलागीत, और मलहार तथा राछरे, प्रमुख है ।

[103] स्त्रियों के गीतों के अन्तर्गत संस्कार सम्बन्धी व्रत, त्यौहार एवं भक्ति भावना से समन्वित गीत, भजन एवं कीर्तन और श्रमसाधना के गीत प्रमुख है । इनमें से जन्म सम्बन्धी सोहरे[105] एवं विवाह सम्बन्धी बन्ना-बन्नी, गारी,[105] अत्यन्त आकर्षक है।

---

102. सावन कुजरिया जबई जे बै हैं
अपनी बहन को त्याव लिवाय
गउवा पिताय माई करो कलेवा
अपनी बहन को त्याव लिवाय
कहां बंधे मोरे उड़न बछेरा, कहां टंगी तलवार ।
सारन बांधि भैया उड़न बछेरा, खूंटान टंगी तलवार ।

103. तुलसी महारानी नमो नमो,
हरि की पटरानी नमो नमो,
कोमल पत्र नरम है मंजरी
हरिपद लपटानी नमो नमो
छप्पन भोग छत्तीसों व्यंजन
बिन तुलसी हरि एक न मानी । तुलसी...
तथा- मैया के दुआरे एक हरिहर पीपर, लाल छुंजा फहराय हो, मांय ।
मैया के दुआरे एक अंधरा पुकारे, देऊ नयन घर जांय हो माय ।।
मैया के दुआरे एक बांझ पुकारे, देऊ बालक घर जांय हो मांय ।

104. सुहाये नन्द के घर आज, बधाये नन्द के घर आज ।
टेरो टेरो सुघर नउनियां नगर बुलउवा देव । ... बधाये ....
सब सखियन सों ऐसी कइयो चलत बिलम नहि होय । बधाये ...
जुग जुग जीवे माई तोर ललना राखे सबई के मान । बधाये ....
तथा-चल देख सखीरी, गोकुल बजत बधाये ।
सोला गऊ के गोबर मंगाये जसोदा, चल देख सखीरी
ढिग घर आंगन लिपाये जसोदा । गोकुल ....

(गारी)
105. नजरिया के सामनेतुम हरदम लाला रहियो ।
तुमनेजनमलयो बरज में, तुमनेकोनो राज खलक में,
तुमरो जाहर नाव जगत में ।
ऐसी लाला अबै निबाही तैसी सदा निबहियो । नजरिया ....

(बन्ना) मेरी राम बना बन आयो, जाली की ओट में, राजा बना के सज रये आंगन के बीच में, दादी बना को सज रईं, परदे की ओट में, बाबुल बना के सज रये आंगन के बीच में, मैया बना की सज रईं, परदे की ओट में ।

(बन्नी) बन्नी खड़ी अटारे में, हेमन मन में, बन्ना के घर जाना है ।
सास बन्नी के झूमर तोड़े, मेंहदी संभाल बिदा कर दो,
फूलों से गजरा भर दो बन्ना के घर जाना है ।
ननद बन्ना के हार तोड़े, बाले संभाल बिदा कर दो, फूलों से गजरा भर दो
बन्नो के घर जाना है ।

इसी प्रकार पुरूषों के गीतों के अन्तर्गत स्वच्छन्द प्रेम सम्बन्धी[106] गीतों का बाहुल्य है । इनमें नायिका का नखशिख वर्णन भी आ जाता है । इसके साथ-साथ संयोग और वियोग के मनोरम गीत उपलब्ध हैं । त्यौहार गीत,[107] बारहमासी,[108] श्रमिक गीत,[109] भजन एवं देवी-देवताओं सम्बन्धी गीतों का बुन्देली लोकगीतों में प्राधान्य है ।

---

106. (1) हाथ कहानियां पाव पैजनियां माथें बेंदा सोहे
 तासें तेरे करों निहोरे राजी है जाय मोय
 घूम घुमारो पहर घांघरो फरिया फर-फर होंय ।

(2) हमरो हँसना सुभाव, भौजी बुरो जिन मानियों ।
 जिन मारो गुलेल जिन मारो गुलेल,
 आफत की मारी चिरैया ।
 जिन मारो ....

तथा -

देखो रजऊ खाँ पटिया पारै, सिर सवहार उघारें ।
मोतिन मांग भरी सेंदुर सों, बेंदा लेत बहारें ।।
टांकी हती टिकी चौखट सें, सैजढ़ अपने द्वारें ।
काम-समर में सिरकाटन सों, सौंसै दो तरवारें ।।

- ईसुरी

107. वीरन तेरे बिन कोऊ नैया,
 राखी का बंदवैया ।
 एक दिना सावन में रैगओ
 लेव खुद गोरे भैया ।

108. चैत चिते चहुं ओरे चित में हारी
 बैसाखन लागी आंख बिना गिरधारी
 जेठ जले अतिपवन अगिन अधिकारी
 असाढ़ में बोले मोर, सोर भयों भारी
 सावन में बरसै मेंघ जिमी हरयारी,
 भदवा की रात डर लगै, इकी अंधियारी,
 क्वार में करे करार अधिक गिरधारी, अंगना में भयो अंदेस मोय दुखभारी,
 पूस में परत तुसार, भींज गयी सारी, माघ मिले नन्दलाल, देखि छबि हारी,
 फागुन में पूरन काम, भए सुखकारी ।

109. रात जुन्हैया निरमल जिन हुइयों, जिन मेरी बैरिन होंय ।
 पिया पक्षर कों उठि जायेगें, मेरी सूनी सिजरिया होय ।।

2- लोक कथायें :- भारतवर्ष कथाओं का देश माना गया है । इस देश में आबाल-वृद्ध-नर नारी सभी कथायें बड़े चाव सेकहते और सुनते हैं । यह देश ही नहीं संसार के सारे देश कथा कहानियों से भरे पूरे है । फिर भी यह निश्चित है कि पाश्चात्य देशों में प्रचलित कहानियां पूर्वीय देशों विशेषतया भारतवर्ष से यात्रा करती हुई पहुंची है । अधिकांश भारतीय कहानियों केबीज वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि संस्कृत ग्रंथों में मिलते हैं । गुणाढ्यकृत पैशाची भाषा में लिखित "बड्डकहा" ।वृहद्कथा। संस्कृत में सोमदेव भट्ट द्वारा- प्रणीत "कथासरित्सागर" पालिभाषा में लिखी "जातक कथायें लोक कथाओं की श्रेणी में आती है । पं० विष्णु शर्मा ने राजनीति के शिक्षा के लिये पंच तंत्र की कथाओं का सृजन किया । "हितोपदेश" में नारायण पंडित ने पंत्रतंत्र के आधार पर कहानियों की रचना की । इसमें अनेक आतंक कथायें भी विद्यमान है । कहानी साहित्य में वैताल पच्चीसी ।वैताल पंचविंशति। सिंहासन बत्तीसी ।सिंहासन द्वात्रिंशिका। "शुक बहत्तरी" ।शुक सप्तति। आदि ग्रन्थों का भी महत्व है । सिंहासन बत्तीसी में राजा विक्रमादित्य के सिंहासन की बत्तीस पुतलियां धारानगरी के राजा भोज को विक्रमादित्य के बल-विक्रम, दानशीलता एवं परोपकार की कथायें सुनाती है । जैव साहित्य में भी कहानियों का भण्डार मिलता है । जैनों का प्राकृत-साहित्य कथा कहानियों से भरा हुआ है । जैन साहित्य का प्राचीनतम भाग आगम के नाम से प्रसिद्ध है। इन आगम-ग्रन्थों में महावीर स्वामी के उपदेशों तथा जैन-संस्कृति से सम्बन्धा रखने वाली कथा-कहानियों का संग्रह है ।[110] पाश्चात्य विद्वान इसे "श्रमण काव्य" स्वीकार करते है । यथा- "जैन टीका ग्रन्थों में भारतीय प्राचीन कथा साहित्य के अनेक उज्जवल रत्न विद्यमान है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते ।[111]

---

110. बुन्देली लोक साहित्य, डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेही", पृष्ठ 179,

111. हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर, भाग 2 डा० विंटरनीज, पृष्ठ 487,

आजकल लोक कहानियों को प्रान्तीय भाषाओं में सर्व सुलभ किये जाने का प्रयास किया जा रहा है । संस्कृत, प्राकृत, पालि, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, रूसी आदि विभिन्न भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में कहानियों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये है ।

जिन्हे लोक साहित्य प्रेमी सर्व साधारण को सुलभ कराने हेतु प्रयत्नशील है । प्राचीन कथा साहित्य के हिन्दी संस्करण प्रकाशित हुये है । बैताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, शुक बहत्तरी, किस्सा ग्यारह मंजिला, गंगाराम पटेल और पूत बुलाखीराम नाई आदि प्रकाशित कथा संग्रह अपनी पूर्व परम्परा का विकास ही कहा जा सकता है।

इस सम्पूर्ण कहानी साहित्य के भावात्मक समन्वय के सम्बन्ध में यह निश्चित पूर्वक कहा जा सकता है कि अधिकांश कथायें थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं में समान रूप से मिलती है । यही नहीं विदेशी भाषाओं में भी भारतीय कथाओं की छाप स्पष्ट दिखाई देती है । ये कथायें 'ईसप की कहानियां', सहस्त्र रजनी चरित" ⁅अरेबियन नाइट्स की कहानियां⁆ "कलेला दमना की कहानी, आदि के रूप में यूनान, अरब, फारस, अफ्रीका, आदि सुदूर देशों में पहुंच गयी है । इन कथाओं का उद्गम-स्थल भारत वर्ष माना गया है । यद्यपि समय-समय पर विदेशियों की अनेक कहानियां आती रही और यहीं घुल-मिल गईं ।[112]

एक सुप्रसिद्ध लोक साहित्य के विद्वान के मतानुसार "भारतीय कहानियों की परम्परा बहुत प्राचीन है । काल के रंध्रों से छनकर वे इस देश में सर्वत्र फैल गई है । यहां तक कि सभ्यता के बहुत दूर जंगलों में रहने वाली आदिम जातियां भी उनके प्रभाव से अछूती नहीं बची हैं । हिन्दू कथाओं के मूल अभिप्रायों में उन पर भी अपना असर डाला है ।[113]

---

112. बुद्धिस्ट बर्थस्टोरीज की भूमिका से, टी, डब्ल्यू. राइस डेविड्स, पृष्ठ 59

113. लोक वार्ता त्रैमासिक पत्रिका ⁅टीकमगढ⁆ जनवरी 1946, डा० वैरियर एल्विन पृष्ठ 1-2,

लोक कथाओं का महत्व इस बात में है कि वे अविकृत काव्य-भावना का स्थिर परिचय देती है । वे केवल परम्परागत भाषा में ही अभिव्यक्ति नहीं करती हैं वरन् जन समूह की वाणी का प्रकाशन करती हैं । उनमें कोई गोपनीयता नहीं । वे वस्तुः का यथा तथ्य चित्रण करती है । वे खुली हवा की भाँति ताजी है । वायु और सूर्य का प्रकाश उनमें खेलता है ।[114]

गूमर ने लोक कथाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है :-

1. प्राचीनतम गाथायें §ओल्डेस्ट बैलेड्स §
2. कौटुम्बिक गाथायें §कौरोनाक एण्ड बैलेड्स आफ दि ग्रुपर नेचुरल§
3. अलौकिक गाथायें § बैलेड्स आफ किनशिप§
4. पौराणिक गाथायें §लीजेण्डरी बैलेड्स§
5. सीमान्त गाथायें §बार्डर बैलेड्स§
6. आरण्यक गाथायें §ग्रीनवुड बैलेड्स§

डा० कृष्ण देव उपाध्याय,[115] डा० दिनेश चन्द्र सेन[116] एवं डा० सत्येन्द्र[117] ने भी लोक कथाओं का अपनी अपनी दृष्टि के अनुसार वर्गीकरण है । जो जानकारी के लिये

---

114. दि पोप्यूलर बैलेड, एफ.बी.गूमर, पृष्ठ 417,

115. 1.प्रेमकथात्मक, 2.वीर कथात्मक, 3रोमांच कथात्मक, भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ 394,

116. §1§ रूपकथा §2§ हास्यकथा §3§ व्रतकथा §4§ गीतकथा
फोक लिटरेचर ऑफ बंगाल,

117. §1§गाथायें§2§ पशु-पक्षी सम्बन्धी पंचतंत्रीय गाथायें, §3§ परी की कहानियां, §4§ विक्रम की कहानियां§5§ निरीक्षण गर्भित कहानियां§6§ साधु एवं पीरो की कहानियां §7§ कारण निर्देशक कहानियां§8§ बाल कहानियां ।
लोक साहित्य विज्ञान, पृष्ठ 210,
डा० सत्येन्द्र ने विषय वस्तु के आधार पर कथाओं के निम्नांकित भेद स्वीकार किये है- §1§ लोक कहानी§2§ धर्म महात्म्य कथा§3§ अवदान §जीलेण्ड§ §4§ वीर गाथायें §5§ साधु-सन्त कथा§6§ पौराणिक कथायें§7§ लौकिक संस्कार वर्णन सम्बन्धी कथायें एवं §8§ विविध एवं स्फुट ।

पठनीय एवं स्मरणीय है ।

बुन्देली लोक कथाओं की भावभूमि अन्य प्रान्तकी कथाओं से समानता रखती है,इसमें कोई सन्देह नहीं । अधिकांश कथायें सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक जान पड़ती है काल एवं परिस्थिति के प्रवाह में पड़कर बहुत सी लोक कथायें कुछ रूपान्तर के साथ प्रत्येक स्थान पर एक सी मिलती है । बुन्देलखण्डी कथायें भी इस तथ्य की अपवाद नहीं फिर भी स्थानगत विशेषतायें क्षेत्रीय कहानियों में दृष्टिगत होती है । बुन्देली भूमि वीर पुरूषों की क्रीडास्थली रही है । अतः यहाँ वीर चरित्र विषयक कथायें बड़े चाव से कही सुनी जाती है । जन साधारण में धर्म प्राणता के कारण व्रत एवं त्योहारों से सम्बन्धित लोक कथायें अत्यधिक प्रचलित है । बुन्देलखण्ड का प्रत्येक घर लोक कहानियों काभण्डार कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी [118] ।

उपलब्ध सामग्री के आधार पर बुन्देली लोक कथाओं को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है :-

§1§ व्रत त्योहार से सम्बन्धित लोक कथायें ।

§2§ वीर चरित्र विषयक लोक कथायें ।

§3§ कहावतों को अभिव्यंजक लोक कथायें ।

§4§ नीति एवं उपदेश परक लोक कथायें ।

§5§ कारण विवेचक लोक कथायें ।

§6§ प्रेम एवं श्रृंगार विषयक लोक कथायें ।

§7§ अन्ध विश्वास मूलक लोक कथायें ।

§8§ ऐतिहासिक एवं पौराणिक लोक कथायें ।

---

118. बुन्देली लोक साहित्य, डा0 रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेही" पृष्ठ 18।

§1§ व्रत त्यौहार से सम्बन्धित लोक कथायें :- व्रत त्यौहार से सम्बन्धित लोक कथाओं को अन्यतीन उपभेदों में विभक्त कर सकते है । यथा- §1§ धर्म महात्म्य की कथायें §2§ व्रत एवं अनुष्ठान सम्बन्धी कथायें एवं §3§ धर्म पुण्य की कथायें ।

धर्म-महात्म्य की कथा :- इसके अन्तर्गत गणेश चतुर्थी, सत्यनारायण व्रत, महालक्ष्मी, यम द्वितीया, शिवव्रत, हरितालिका व्रत, एकादशी व्रत, ऋषि पंचमी, सत्यवार व्रत, आदि की कथायें परिगणित की जाती है ।

इन व्रत दिवसों पर सम्बन्धित देवताओं का पूजन-अर्चन करते हैं, व्रत रखते हैं बिनाकथा सुने व्रत का फल नहीं मिलता । ये कथायें व्रत का महत्व और उसकी आवश्यकता बताते हैं । ये व्रत एवं कथायें देवी-देवताओं को प्रसन्न करने हेतु की जाती हैं । इनमें अपने पति, पुत्र माता, पिता, सास, ससुर, परिवार आदि के स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य की कामनाकी जाती है ।

इसी प्रकार प्रमुखतया व्रत की कहानियों के अन्तर्गत नाग पंचमी की कहानी, हरछट की कहानी, करवा चौथ की कहानी, सोमवती अमावस्या की कहानी, महालक्ष्मी की कहानी, गनगौर की कहानी, अहोई आठें की कहानी, कार्तिक स्नान की कहानी, दशारानी की कहानी एवं सकट चौथ की कहानियां प्रमुख एवं उल्लेखनीय है ।

धर्म पुण्य की कथाओं के अन्तर्गत देवी देवता अथवा उनकी प्रतीकों का उल्लेख रहताहै । कर्तव्याकर्तव्य, धर्म, अधर्म सदाचार कदाचार, शील, सत्य एवं सुमति का वर्णन रहताहै । पाप-पुण्य की व्याख्या पर आधारित लोक कहानियां इनमें प्रमुख हैं । ब्राह्मण राजा और शनि पुण्य की कसौटी,[119] लक्ष्मी का निवास, लक्ष्मी और मानवता,[120] लक्ष्मी का अहं, रघु और कौत्स, नारद अभिमान की कहानियों के साथ साथ भाग्य-वादिता

119. जैसी करनी वैसी भरनी, सम्पादक, शिवसहाय चतुर्वेदी, क्र. 6 एवं

120. लक्ष्मी, हरगोविन्द गुप्त, पृष्ठ 28 ने अपनी अपनी पुस्तकों में इनका उल्लेख किया है।

से सम्बन्धित कहानियाँ भी है, जिनमें लोक तत्वों का भली भाँति समावेश किया गया है।

§2§ वीर चरित्र विषयक लोक कथायें :- इन कथाओं के अन्तर्गत दो प्रकार की कहानियों का समाजमें प्रचलन है । प्रथम तो वे कहानियाँ है, जो अगेय है, और दूसरे वे कहानियाँ हैं जो गेय रूप में उपलब्ध होती हैं । ये प्रायः गद्य और पद्य दोनों विधाओं में मिली हुई है । इन कहानियों में वीर विक्रमादित्य की कहानियाँ बड़े चाव से कही सुनी जाती है । यद्यपि इतिहास की साक्षी के अनुसार उज्जैन का राजा विक्रमादित्य जिन्होने विक्रम संवत सन् 56ई0 में चलाया§ चन्द्रगुप्त द्वितीय, §375 से 413ई0§ स्कन्दगुप्त §455 से 467 ई0§ एवं काश्मीर का राजा विक्रमादित्य इसी एक नाम में संयुक्त है । पर यहाँ निर्विवाद रूप से जो बुन्देली लोक कथाओं में शौर्य साहस और प्रत्युत्पन्न मति का विधायक है उज्जैन का राजा वीर विक्रमादित्य ही अभिप्रेत है । वीर विक्रमादित्य उज्जैनाधि पति परमारवंशी महेन्द्रादित्य का पुत्र था । इन्होने ही उज्जैन में महाकालेश्वर के मन्दिर का निर्माण करवाया था । इन्होने ही आक्रमण कारी शकों को हराकर विजयोत्सव की स्मृति में विक्रम संवत का श्री गणेश किया । इनसे सम्बन्धित बुन्देलखण्ड में अनेक लोक कथायें प्रचलित हैं, जिनमें वीर विक्रमादित्य के साहस, शौर्य, दान शीलता, निर्भीकता, और न्यायप्रियता की स्पष्ट झलक प्राप्त होती है ।

इनके अतिरिक्त वीर बुन्देला लाला हरदौल, ढोला और कारसदेव की कहानियाँ भी बुन्देलखण्ड के घर-घर में प्रचलित हैं । हरदौल तो आज देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं । वीरांगना लक्ष्मीबाई, झलकारी कोरिन, दुर्गावती, फूलन देवी की कहानियों के साथ साथ सन्त बसन्त की कहानी भी कम लोकप्रिय नहीं है । सन्त बसन्त की कहानी अपार शौर्य, सहारा, धैर्य और करूणा से परिपूर्ण गद्य-पद्य मिश्रित शैली में सबका कण्ठहार बनी हुई है ।

§3§ कहावतों की अभिव्यंजक लोक कथायें :- इस वर्ग के अन्तर्गत वे लोक कथायें परिगणित की जाती है जिनमें कहावतों का आधार लिया गया है । इनमें कुछ घटनायें तो वास्तविक

है पर अधिकांश काल्पनिक है इन सभी कहानियों का मूल तो वेद, उपनिषद और पुराण ही है फिर भी नई नई कहावतों का जन्म सच्ची घटनाओं अथवा काल्पनिक अनुभूतियों को लेकर हुआ है । बुन्देलखण्डी कहावत जैसे को तैसा, "शठं प्रतिशाठ्यं समाचरेत" की प्रतिध्वनि है । यह कहावत इस कहानी से प्रादुर्भूत हुई है ।यथा- "एक व्यक्ति अपने पडौसी के घर वर्तन रखकर तीर्थयात्रा को गया । लौटने पर बर्तन मांगें, पडौसी की नियत बदल गई, उसने घुन के खा जाने की बात बनाली । बदले में उसने पड़ौसी के बच्चे को छिपा लिया, और कह दिया कि बच्चे को चील ले गई है । राजा के पूछने पर उसने बताया कि यदि चील बच्चे को नहीं ले जा सकती है, तो घुन भी पीतल नहीं खा सकते हैं । इस प्रकार राजा के न्याय द्वारा एक दूसरे को अपनी-अपनी वस्तुयें मिल गई ।" कहानी में दिखाया गया है कि जो जैसा अपने साथ व्यवहार करें, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये यही लोकनीति है ।

"अक्खड़ी कै भैंस", जोकी लाठी उकी भैंस, "जैसी करनी वैसी भरनी" "बन्दर और बया", "पढ़ा है, गुना नहीं" "तिमुण्डा तिगोंडा" "रंगासियार", "अपनी टेक निभाऊ, पिय की मूंछ मुड़ाऊं", "ग्यारह बारह तेरह," नथनी बालावीर", "पानी की कमाई, पानी में गमाई" इत्यादि इसी प्रकार कहावतों की अभिव्यंजक, मनोरंजक और प्रेरक तथा उपदेश परक कहानियां हैं ।

§4§ <u>नीति एवं उपदेश परक लोक कथायें</u> :- इन कथाओं के अन्तर्गत वे कथायें आती हैं जिनमें नीतियुक्त बातें अथवा उपदेशात्मक भाव स्थित हों । कथा सरित्सागर, पंचतत्र हितोपदेश आदि कहानी संग्रहों में नीति-कथायेंभरी पड़ी हैं । इस प्रकार की कहानियां बुन्देलखण्ड में भी कही जाती हैं । "उकतायें काम नसाय", "तीन लाख की तीन बातें", "राजकुमार और साधु," पिल्ला की करामात", "रानी और बांदी", राजकुमार का ब्याह" "लडई दाऊ और मगर, "ठगों कीमुठभेड़", "आई माई चंडिका", "तिरिया हठ," "कोरी को सगो", भोले बाबा," "अंधेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा" "कौआ और रे हंस" इत्यादि कहानियों में नीति और उपदेश भरे पड़े हैं । इनसे मनुष्य अपनी

गलतियों का सुधार कर अच्छा बनने का प्रयत्न करता है ।

§5§ कारण-निर्देशक लोक कथायें :- इन कथाओं में किसी वस्तु की उत्पत्ति अथवा घटना व्यापार कार्य के काल्पनिक कारण सम्बन्धों की उद्भावना कर ली जाती है । और उनका समुचित तालमेल बैठा दिया जाता है । अधिकांश कहानियां कल्पना प्रसूत होती है । इनमें ऐतिहासिक प्रामाणिक तथ्य बहुत कम पाये जाते हैं । परन्तु कहानी के पात्र वास्तविक चरित्रों की भांति कार्य करते दिखायें गये हैं । कहीं-कहीं अलौकिकता भी दृष्टिगोचर होती है । कुछ कहानियां इस प्रकार की कही जाती हैं, जिन में कार्य कारण का सम्बन्ध स्थापित कर लिया गया है । ऐसी ही एक कहानी "झाई" की है यथा -

"एक बुढ़िया थी । उसकी एक लड़की थी । उसका नाम झाई था । वह अच्छी अच्छी कहानियां कहने में चतुर है । देवलोक तक उसकी पहुंच हो गयी । देवता उसे बुलाकर कहानी सुनने लगें । उसकी सिफारिश से पापी लोग भी इन्द्रसभा में पहुंचने लगें । इन्द्र ने चित्रगुप्त को बुलाकर पाप पुण्य का खाता दिखलवाया, तो सैकड़ों पापी इन्द्रलोक में आ बसे थे । इन्द्र ने नाराज होकर कहा- "झाई रानी, तुमने यहां बहुत पाप फैलाया है झूंठी सिफारशेंकरके तुमने पापियों को स्वर्गलोक भिजवाया है । अतः आज से हम तुम्हारी बोलने की शक्ति छीनते है । दूसरे लोग जो बात कहें, वही तुम दुहरा सकोगी। इतना कहकर इन्द्र ने उसे धरती पर पटक दिया । तबसे झाई पागल बनी ऊजड़ स्थान पुराने किले, खण्डहर, मन्दिरों, कुआं और बावड़ियों में जाकर रहने लगी [2] । झाई अर्थात प्रतिध्वनि की नितान्त काल्पनिक कहानी का इस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ ।

अहंकार से पतन, "अफीम का जन्म", कौआ और उल्लू" भाई और बहिन "गिरगिट सफेद क्यों", "तुलसीजन्म" इत्यादि इसी प्रकार की कारण निर्देशक लोक कथायें हैं

---

[2]. बुन्देली लोक साहित्य, डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेही" पृष्ठ 202

जो बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अत्यधिक प्रचलित है ।

§6§ श्रृंगार एवं प्रेम विषयक लोक कथायें :- इस कथाओं के अन्तर्गत प्राय: वे कहानियां आती हैं जो प्रेम और विवाह से सम्बन्धित हैं । इनमें नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन पशु पक्षियों द्वारा सुनकर नायक के हृदय में उसके प्रति प्रेमभाव उत्पन्न होना तथा उसके पाने हेतु अदम्य साहस एवं अटूट धैर्य शीलता के वृतान्त हैं । प्रेम के अनन्तर ही विवाह होताहै । विवाह के पश्चात प्रेम नहीं । जैसी करनी, वैसी भरनी" में निर्वासित तीन राजकुमारों में से एक राजकुमार को पागल हाथी को मारने का झूठा यश मिल जाता है और राजा प्रसन्न होकर अपनी बेटी का विवाह उसके साथ कर देता है । एक सोलह वर्षीया सुन्दरी कुमारी को एक डायन ने कैदकर रक्खा है । दोनों राजकुमार वहां पहुंचते हैं । कुमारी उन्हे पीपल के पत्तों के ढेर में छिपा देती है । डायन को मानव गन्धआने पर वह बहाना बना देती है । डायन की मृत्यु का रहस्य पूछकर राजकुमारों से उसे मरवा डालती है । और मंझला भाई उस कुमारी के साथ विवाह कर लेता है, वे उड़न खटोले पर बैठकर अपने नगर को लौटते हैं, और राजा रानी बनते हैं।[122] वीरन पटवा", "रतन पारखी", राजाविक्रमादित्य और जंगला जोगी, "पडकुलियां रानी एवं मेढक राजकुमारी" की कथायें इसी प्रकार रूप सौंदर्य से परिपूर्ण प्रेम और विवाह की कहानियां है । यत्र तत्र उनमें श्रृंगार की मनोहारी छवियों का चित्रण भी उपलब्ध होता है।

वीरन पटवा का सार संक्षेप में इस प्रकार है - "एक राजकुमार आखेट हेतु दक्षिण दिशा की ओर जाता है । वहां धोबी घाट पर वीरन पटवा की बेटी के बहुमूल्य सुन्दर वस्त्रदेखता है । [illegible] घर आकर उससे विवाह करने को खाटपाटी लेकर पड़ा रहता है । विवाह हो जाता है, पर इस शर्त पर कि वह दिन भर तो राजकुमार के पास रहेगी, और रात को इन्द्रसभा में जाया करेगी । बाद में राजकुमार ने इन्द्र से उसे मांग लिया । छद्मवेष में एक चित्रकार ने रानी का चित्र ले लिया । और रानी का सम्पूर्ण शरीर पत्थर का हो गया । एक दूसरे राज्य के मन्दिर में पटवा की बेटी की पत्थर

---

122. बुन्देलखण्ड की लोक कथायें, शिवसहाय चतुर्वेदी, क्रमांक 7

की मूर्ति लगा दी गई और उसी में उसके प्राण रहने लगें । राजा की बेटी इस राजकुमार पर आसक्त होती है और उससे विवाह कर लेती है । एक रात्रि को पटवा की बेटी के साथ राजकुमार को पंसा सार खेलते देखकर वह कुद्ध जाती है और मन्दिर में लगी मूर्ति को पिसवा डालती है । अन्त में वीरन पटवा की बेटी पुनः पूर्वावस्था में आ जाती है । अब तीनों मिलकर प्रेम पूर्वक रहते हैं ।

इस कहानी में नायिका के सुन्दर वस्त्रादि को देखकर नायक आकृष्ट होता है । दूसरी बात यह कि नायक एकाधिक स्त्रियों से विवाह करने को आतुर दिखाई देता है ।

§7§ अन्ध विश्वास मूलक लोक कथायें :- इस शीर्षक के अन्तर्गत वे कहानियां आती हैं जिनमेंअन्ध विश्वास और मिथ्या लोकादर्शका दिग्दर्शन कराया जाता है । अन्ध विश्वास की भावनायें भारतीय जीवन में घर करगई हैं । यहीं नहीं देश विदेशों में भीइस प्रकार की कहानियां कही जाती हैं । बुन्देली लोककथा "आई माई चंडिका" में एक कृषक पत्नी अपनी सीधे सादे पति को झांसा देने में बड़ी निपुण है । वह अपने पति को तो चने की रोटी पर नमक की डली रख खेत पर पहुंचाती है और स्वयं प्रतिदिन घर पर कुठीला में से धान निकाल कर कूटती और उसका भात बनाकर गुड़ के साथ खा लेती है । रोज धान की भुसी कुठीला में भर देती है । कुठीला खाली होने पर मार पड़ने के डर से वह एक उपाय सोच निकालती है । मुंह से कालोंच पोत और हंडियां सिर पर रख जब वह खेत पर किसान के पास पहुंचकर कहती है - "आई माई चंडिका, धरे मूंड पै हंडका ।

तोय खाऊं तोरे बैलन खाऊं

कुठिला भर धान भुसी कर जाऊं ।।"

यह सुनकर किसान के प्राण सूख जाते हैं और वह विनती करता है कि हे माई चाहे कुठीला भर धान भुसी हो जाय पर मुझे और मेरे बैलों को बचा दो । स्त्री कुयें पर पहुंच कर कालोंच धो धाकर घर आ जाती है । किसान आकर सारी बात सुनाताहै

और जब कुठिला भर धान कीभूसी देखता है तो आश्चर्य चकित रह जाता है । यह सुनकर उसकी स्त्री कहती है :-

"के चलो तुम खुसी रओं,तुमाये बैल बने रएं, फिर धान की का फिकर ।
एक गोन का तुम खुसी रओं,तो केउ गोन हो जे है ।
रओं सवाल बउनी कौ,तो काउ से,मांग के,मोल लैके बो लियो ।

प्रस्तुत कहानी में अंध विश्वासी किसान को उसकी पत्नी मूर्ख बनाने में सफल हुई ।

इसी प्रकार की एक नहीं अनेक अन्धविश्वास से भरी पूरी कहानियां बुन्देलखण्ड के भू-भाग में प्रचलित हैं ।

"सम्राट की नई पोशाक",कोरी को सगो,डुकरिया को बुखार", "देर है अन्धेर नहीं", लालबुझक्कड की कहानियां","आकास इतो ऊंचो काय" "मिटटी की गोली" एवं "रानी सगुनौती" की कहानियां उपर्युक्त तथ्यों की पोषक और मनोरंजक हैं।

§8§ ऐतिहासिक एवं पौराणिक लोक कथायें :- बुन्देली लोक-कथाओं के प्रमुख दो रूप उपलब्ध हैं । प्रथम है गद्यात्मक कथायें और द्वितीय है गीत कथायें । गद्यात्मक कथाओं की संख्या अधिक है । ये शुद्ध बुन्देली भाषा में है जिनमें यत्र तत्र गद्य-पद्य का सुन्दर समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है । वक्ता अपनी बुद्धि के अनुसार दोहा,कवित,चौबोला, गीत आदि का प्रयोग कर जब इन्हें सुनाता है तब बरबश मन इनकी ओर आकृष्ट हो उठता है ।

गीत कथाओं के रूप में आल्हखण्ड एवं उसके भिन्न भिन्न कथा-प्रसंगों से सम्बन्धित ये गीत कथायें सुन्दर,सरस,मनोरंजक और ज्ञानवर्धक है । इसके साथ-साथ इनमें बुन्देलखण्ड की गौरवगाथा,शौर्य प्रशंसा,स्वाभिमान इत्यादि के अनेक प्रेरक प्रसंग सन्निहित हैं ।

इनमेंआल्हा,ऊदल कारसदेव,जगदेव,हरदौल,श्रवण कुमार एवं लक्ष्मीबाई आदि की ऐतिहासिक गाथायें अत्यधिक प्रसिद्ध है । इनके अतिरिक्त सरमन,चन्द्रावली, मथुरावली और चन्दना की गीत कथायें भी अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयस्पर्शिनी हैं ।

इन सबमें करुणा ,श्रृंगार एवं वियोग के मनोहारी चित्र प्रस्तुत किये गये हैं ।

वीर गाथाओं का अपना महत्व है । इन वीर गाथाओं को टेम्पल महोदय ने जहाँ छः भागों में विभक्त किया है । श्रीमती बर्न ने समूची वीर कथाओं को मात्र दो भागों में बाँटा है । पहला भाग है वीर कथा" और दूसरा भाग है - पुराण पुरुषा के शौर्य की कहानी वीर कथा के अन्तर्गत परिगणित की जाती है जबकि ऐतिहासिक पुरुषों के शौर्य-वर्णन की गाथा "साके" कहलाती है ।[123]

"पवाँडे" भी वीर गाथा से सम्बन्धित है । महाराष्ट्र में इनका अधिक प्रचलन है । बुन्देलखण्ड और ब्रजभूमि में प्रचलित "जगदेव का पंवारा, "जयमलका पंवारा मारक और वलिदान से ओत प्रोत है । महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश के लेखक ने "पंवाडे" का अर्थ "कीर्ति" लिखा है । और उसे सर्व साधारण की भाषा में बोला जाने वाला कहा गयाहै ।[124]

विषय वस्तु की दृष्टि से इन लोक कथाओं में प्रमुख रूप सेभाई बहन का निश्छल एवं अटूट प्रेम,पुत्र प्राप्ति की कामना,अखण्ड सौभाग्य की भावना,देवी-देवताओं का महात्म्य,कर्मों का फल एवं निर्वारण,परलोक वाद एवं पुनर्जन्म की भावना,देवी पार्वती का करुणाभाव,वीरता एवं पराक्रम के कार्य,चमत्कार एवं अलौकिकता के भाव,जादूगरी का प्रभाव,रूप-परिवर्तन,भाग्य की प्रधानता,व्रत निष्ठा का भाव,पुण्यात्मा का दूसरे शरीर में प्रवेश,अन्यपात्र का स्थान ग्रहण,स्त्री का पतिव्रत धर्म,सत की परीक्षा,अपत्तिसचक संकेत, बिछुड़े पात्रों का पुनर्मिलन,विश्वास घात,सपत्नियों का दुर्व्यवहार,संकटपूर्ण कार्यों की सिद्धि,पहेलियों का बुझाना,मालिन तथा अशरीरी आत्माओं का सहयोग तथा सुखान्त भाव की मनोहारी अभिव्यक्ति हुई है ।

---

123. हैण्ड बुक आँफ फोकलोर,श्रीमती बर्न,पृष्ठ 262,

124. महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश, विभाग 17वाँ पृष्ठ 217

॥3॥ लोक कहावतें :- बुन्देली लोक कहावतों का बुन्देली लोक-साहित्य में वरेण्य स्थान है । इन सारी कहावतों को हम दो भागो में बांट सकते हैं । पहला है सामान्य और दूसरा है स्थानीय । सामान्य कहावतें भारत के प्रायः समस्त क्षेत्रों में प्रचलित है । कुछ कहावतें थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ संसार के दूसरे देशों में समानार्थी पाई जाती हैं। दान की बछिया के दांत नहिं देखे जाते का रूपान्तर अंग्रेजी के "लुक नॉट ए गिफट हॉर्स इन दि माउथ" में मिलता है । मनुष्य का यह स्वभाव रहा है कि निकृष्ट और अनुपयोगी वस्तु दान में देता रहा है तथा कहा गया है कि "मरी बछिया बामन के नाम" इसमें व्यंग्य की विद्रूपता लक्षित होती है । कुछ कहावतों के पीछे घटनायें अथवा कहानियां अवश्य काम करती है जिनमें कुछ का पता लग सका है और कुछ अतीत के गर्भ में विलीन हो चुकी हैं, और उनकी पृष्ठिभूमि ढूंढना टेढ़ी खीर है । उपनिषद काल का एक उदाहरण है - जब कि बाजश्रवा नामक ऋषि ने यज्ञ की दक्षिणा में सारी गायें दे डाली पर वे सब गायें बूढ़ी और अनुपयोगी थीं । उस समय से कहावत प्रचलित हुई । ऋषि के रूप में मानव- स्वभाव की कमजोरी झलक उठती है । "उड़ौ चून पुरखन के नांव" की कहावत अंग्रेजी की कहावत से मिलती जुलती हैं । यथा- "सेटदैट भिच इजलोस्ट बी फार गॉड अर्थात खोई हुई वस्तु ईश्वर को अर्पित ।

बुन्देली कहावत में चक्की पीसते समय उड़ते हुये आटे को पुरखों के नाम दान कर देने में मजबूरी से दान किया जा रहा है, पर जो प्राप्य नहीं है । इन कहावतों का पता लगाना बड़ा कठिन है कि ये कब और किस देश में रची गयी ये कहावतें एक सी हैं, ये समस्या के प्रसार के साथ-साथ सर्वत्र फैल गयी हैं । संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की कहावतें देश के कोने-कोने में फैली हुई हैं । एक स्थान की कहावत दूसरे स्थान में पहुंच कर रूप परिवर्तन कर लेती है, और इस प्रकार घुल मिल जाती है कि उसका मूल स्थान का पता लगाना असंभव हो जाता है । जिन कहावतों को हम अपने देश की समझते है वे ही अन्य देशों में उसी प्रकार प्रयुक्त की जाती है । जोगरजे वे बरसे नहीं" वाली कहावत संस्कृत की "गर्जन्ति न वृथा शूरा निर्जला कुब तोयदा ।

से मिलती है । "हाँती झूमत जांय कुत्ता भौकत जांय" संस्कृत की लोकोक्ति "पिवन्त्येवोदकं गावों मन्डूकेषु रुवत्स्वपि" सेभावसाम्य रखती है । कहने का अभिप्राय यह कि कहावतों की परम्परा अत्यन्तप्राचीन है और वे न्यूनाधिक रूप में "परिवर्तन के साथ आज भी सर्वत्र प्रचलित हैं ।

कहावतों का प्रयोग विभिन्न देशों के संस्कारों एवं भाषा-विभिन्नता के कारण,प्रादेशिक विशेषतायें लिये होता है । परन्तु भाव-साम्य में कोई अन्तर नहीं पाया जाता । बुन्देली कहावत "गधा गुलकन्द का खा जाने" अथवा "कुतियां प्रागराज जैय तो हंडिया को चाटै" से मिली-जुली तिब्बती कहावत का अंग्रेजी अनुवाद देखियें "सिक्रप्युरल एडवाइस टू एन आस" इसी प्रकार "कुजरन अपने बेर खट्टे नई बताउत" तिब्बती कहात अपनी मां से मुसही कोई नहीं कहता" से भाव-साम्य है । इसी प्रकार बुन्देली कहावत" नाऊ-नाऊ की बारात,टिपारो को लै चलै" तथा "नाऊ की बरात में सबई ठाकुर" के रूप में मिलती है । यही स्पेनिश भाषा के अंग्रेजी अनुवाद का रूप देखियें "यू एलेडी,आई ए लेडी हू इज टूपुटदि सो आउट ऑफ डोर्स" अर्थात "तुम भी रानी हम भी रानी,फिर कौन भरेगा पानी" एक ही भाव-साम्य की बोधक है ।

घर की हीन दशा प्रकट करने को कहावत प्रचलित है "घर-घर भटया चूल्हे" इसकी स्पेनी कहावत है "देयर इज नौट ए हौस विदाउट इट्स हुश-हुश" वाचाल छिद्रान्वेषी व्यक्ति के सम्बन्ध में कहते है "कानी पनो टेंट तो देखत नइयां औरन की फुली बताउत" इसी आशय की अंग्रेजी कहावत मिलती है "दि क्लिन काल्स दि ओवेन बर्न्ट हाउस"बुन्देली कहावत "बडेई रूख पै गाज गिरत" बंगला में बड़या ह्रै झड़ लागे" के रूप में मिलती है।[125]

---

125. बुन्देली लोक साहित्य,डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेही" पृष्ठ 337-338

झांसी, जालौन, ओरछा, ललितपुर, आदि स्थानों में महुये के फल को गुलेंदा, कहते हैं जैसे- लपकी गाय गुलेंदें खाय । दौर दौर महुवा तरे जाय"। जबकि बांदा में यही कहावत वहां की बोली के कारण "लहटी गाय कोलईदन खावें, बार-बार महुबोरे जावें" । हो गई । यह स्थान विशेष की बोली का प्रभाव है । कुछ कहावतें स्थानीय होती है वे वहीं बोली और समझी जाती है अन्य स्थानों पर उनका उपयोग नहीं होता । ये कहावतेंकिसी विशेष घटना अथवा कहानी की व्यंजक होती है । उनमें देश-काल की विशेषतायें विद्यमान रहती हैं । इनसे तत्कालीन परिस्थितियों का पता लगाया जा सकता है । मेवाड़ की एककहावत है -"देखया राणा जी थारों देश, राँड़ सुहागन एक ही भेष"इससे मेवाड़ की सामाजिक {रहन-सहन} स्थिति का आभास मिलता है । इसी प्रकार काशी के सम्बन्ध में उक्ति कितनी सार्थक है - "राँड-साँड सन्यासी, इनसे बचे तो सेइय काशी" इसी प्रकार सामाजिक स्थिति और स्थानवाची कहावतें भी प्रचलित हो जाती है जैसे- फटी पनइयां टूटे म्यान, जे देखो दतियां केज्वान" इसी प्रकार " न बालाजी और न कुढ़ियन को ठौर"[126] ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कहावतें सोद्देश्य हुआ करती हैं । इन कहावतोंमें {1} पिष्टपेषण {2} उपदेश कथन{3} व्यंग्य वचन और {4} भविष्यकथन की प्रमुखता रहती है । आइयें, इन पर एक विहंगम दृष्टि डालते चलें -

{1} पिष्टपेषण- किसी व्यक्ति विशेष को कुछ कार्य करते देखकर उसके प्रमाण में परम्परा गत उक्ति कही जायें । अर्थात विशेष की सामान्य से पुष्टि की जायें जैसे- "नीम न मीठे होंय चाहे सींचों गुर घी सों" किसी व्यक्ति के कठोर, अभद्र व्यवहार में कोई

---

126. बुन्देली कहावत कोष, कृष्णानन्द गुप्त, पृष्ठ 46

परिवर्तन न होने पर कहा जाता है । कोई आलसी आदमी जब घर से बाहर नहीं निकलना चाहता, तो वह कुछ न कुछ बहाना बना लेता है । यथा- "आलसी निगड़या असगुन की बाट हेरै ।" इसी प्रकार गरजमंद व्यक्ति अधिक छानबीन करता । इसके लिये यह कहावत प्रयुक्त होती है उधार बासै पासंग नईं देखत" अर्थात दुकान से उधार लेने वाला तराजू का पासंग नहीं देखता । अच्छे काम करने में प्रशंसा कम होती है, यदि काम बिगड़ गया तो बुराई अधिक मिलती है । इसके लिये यह कहावत प्रयुक्त होती है कि "खुआये खिमाये को नाँव नईं" स्वायवें को नाँव होय ।" इसी प्रकार पति-पत्नी का साहचर्य अनिवार्य है । सम्भवतः इसी को देखकर कहा गया होगा कि "जितै सूज उतै डोरा ।"

{2} उपदेश कथन - उपदेश कथन में नीति, शिक्षा, एवं व्यावहारिक ज्ञान की बातें आती है । जैसे "अपनी जांघ उघारिये, आपहुँ मरिये लाज ।" यह निश्चित है कि कोई भी कार्य जितना स्वयं करने पर अच्छा होता है उतना दूसरों के द्वारा नहीं । इसीलिये यह उपदेशात्मक कहावत कही गई है कि -

"खेती पाती बीनती, औ घोड़े का तंग ।
अपने हाथ संभारियें, लाख लोग हों संग ।।"

उदाहरणार्थ कुछ अन्य कहावतें इस प्रकार है -

{अ} टोटो बाढ़ो जी सें, खाऊ मलीदा घी सें"

{आ} "जमीन जोऊ जर । लड़ाई को घर"

{इ} "पहिरिये रवदा, निभैये सदा"

{ई} "गरज में गधाऊ बाप बनाउनें परत"

{उ} "सुनिये सबकी, करिये मन की"

{ऊ} "जैसो खाय अन्न, वैसो होय मन "

{ए} "गरीब की लुगाई, सबकी भौजाई"

॥ऐ॥ "भीख से भीख मिलत"

॥ओ॥ "पानी पीजे छान कें,गुरू कीजे जानकें"

॥अं॥ "ब्याज,घूस,दच्छना,पाछें परें कुदच्छना"

॥अः॥ "बैरी कौ मत मानबो औ तिरिया की सीख ।

क्वांर करें हर जोतनी,तीनो मांगें भीख ।।"

॥3॥ <u>व्यंग्य वचन</u> - जब कोई स्वयं अपना काम बिगाड़ लेता है,तब व्यंग्यात्मक रूप से कहते है "अपने हांतन अपने पांव पै पथरा पटक लयौ ।" जिनका कोई दृढ़ निश्चय नहीं होता उनके लिये "बैपेंदी का लोटा" कहा जाता है । आग लगें । पानी कों दौरत" तथा "चोर से कय चोरी करौं,साहू से कयं जागत रओं ।" ऐसी ही कहावतें हैं जिनमें व्यंग्य का भाव व्याप्त है । इस प्रकार की कुछ अन्य कहावतें निम्नलिखित है :-

॥अ॥ "कटेक कटेट पर निहल्ले"

॥आ॥ " अपना हाथ जगन्नाथ"

॥इ॥ "अपने नैना मोड़ दे तू खोयला भटकाऊ "

॥ई॥ "कछू बौरी कछू भूतनलपेटी"

॥उ॥ "नांव रामप्यारी,मौं कुतिया कौ"

॥ऊ॥ "पूछें न ताछें,जिजी कथूला कां धरों"

॥ए॥ "मानो न मानो मै दूल्हा की मौसी"

॥ऐ॥ "अपनों पेट हाउ,मै न देऊँ काऊँ"

॥ओ॥ "छोटे घर की बिटिया फरफराई ।

सूखे मूंड़ को जुआ फरफराई ।।"

॥4॥ <u>भविष्य कथन</u> - कुछ ऐसी सगुन असगुन सम्बन्धी कहावतें हैं जो भावी घटनाओं की सूचना देती हैं । इन कहावतों में कृषि सम्बन्धी कार्य विवरण,वर्षा,वायु,फसल, व्यापार,धन्धा एवं व्यवहार आदि की बातें रहती हैं । यथा- "ठाड़ी खेती गाभिन गाय । तब जानों जब मों मै जाय । ऐसी ही कुछ अन्य कथावतें यहां द्रष्टव्य है :-

(अ) "खेत न जोते राड़ी, न मेहरी मरद की हांड़ी"

(आ) "बटिया खेती सांट सगाई । जामें नफा कौन ने पाई।"

(इ) "मरका बैल औ टिमकुल जनी, इनके मारे रोबै धनी"

(ई) "सांझे धनुष सकारे मोरा । ये दोनों पानी के बोरा ।।"

(उ) "मंगलवारी होय दिवारी । हंसे किसान रोय व्यापारी ।"

(ऊ) "एक पाख दो गहना । राजा मरे कि सेना"

(ए) "छिनरा चोर जुआरी । इनसे गंगा हारी"

(ऐ) "अधकुचला सबसें बुरो, दोऊ दीन से जाय"

(ओ) "गांव का जोगी जोगना, आन गांव को सिद्ध"

(औ) "नींदं न जाने टूटी खाट । प्यास न जाने धोबी घाट ।"

(अं) "दुधार की दो लातें सहनैं परत"

(अः) "जैसे जी के बाप मताई, तैसे ताके लरका ।

जैसे जी के नदी नवारे, तैसे तीके भरका ।।"

कृषि सम्बन्धी कुछ उल्लेख्य कहावतें :-

(1) "असाढ़ सावन करी गमतरी कातिक खायें पुआ ।

भाय बहनिया पूछन लागी, कातिक किता हुआ ।।

(2) "जोहर जोते खेती बाकी, और नहीं तो जाकी ताकीं"

(3) " नित खेती दूसरे गाय, जो ना देखे ताकी जाय"

(4) "खेती करै रात घर सोवें, काटे चोर मूंड धर रोवें ।"

(5) "गैंवड़े रे जुनरिया नाक्इयो को जो रखावन जाय ।

हम तुर जैहें मायके, मुटला ढोर बरेदी खाय ।।"

(6) "खेती करें बंज कों धावें, दो में से एकहु न पावें"

खाद सम्बन्धी उल्लेख कहावतें :-

§1§ " खेती करैं खाद मे भरे, सौ मन कुठिला में ले धरे"

§2§ " वह किसान है पूरा, जो डाले हड्डी को चूरा"

§3§ " गोबर मैला पाती सड़ै । तब खेती में दाना पड़ै।

§4§ " लम्बे दतुआं खुटारी पास । का करे कूका, का करें कांस ।"

§5§ हर गया पाताल । टूट गया काल"

§6§ " धान पान औ खीरा । तीनौं पानी के कीरा ।"

वर्षा सम्बन्धी एवं फसल सम्बन्धी कहावतें :-

§1§ " वाकस कम गरमी करें, तब बरसन की आस ।

§2§ " दिन में बदरई रात तरैया, जाने ईसुर कौन करैया ।

§3§ "जब बरखा चित्रा में होय, सगरी खेती जावें खोय"

§4§ "जब ... "लगे अगस्त फूले बनकांसा, अब छोड़ो बरसा की आंसा ।

§5§ "मघा के बरसे, माता के परसे" ही तृप्ति और संतोष होता है ।

§6§ " उलटी गिरगिट ऊपर चढ़े, वर्षा लौं थल बूड़ौ परै"

भोजन एवं स्वास्थ्य विषयक कहावतें :-

§1§ " जिन्नें पानी जे पियें, हर्र भूंज के खाय ।

दूदन ब्यारू जे करें, तिन घर वैद न जांय ।।"

§2§ "ब्यारी कबउँ न छोड़िये जासें तागत जाय ।

जो ब्यारी अबगुन करैं, दुफरै थोरो खाय।।"

§3§ "हर्र बहेरौ आवरौ, घी शक्कर से खाय ।

हाथी दाबें कांख मे, सात कोस लौं जाय" ।।

§4§ "नीम गुन बत्तीस हर्र गुन छत्तीस"

§5§ " चैत मीठी चीमरी, बैसाखै मीठो मठा।

जेठ मीठी कूमरी, आसाढ़ मीठो लटा ।।"

§6§ "गुन घटिगये गाजर खाये तें, बल बढ़ गये बाल चबायेतें ।"

भाग्यवाद से सम्बन्धित कहावतें :-

§1§ "रूप की रोवैं, करम की हँसे ।

§2§ "लरका के भाग्गन लरकौरी जियत"

§3§ "बहे बहे भरे बैलना । बाँधे खाय तुरंग"

§4§ "चलनी में दुहे औ" करमैं दोस देई"

§5§ " हर हाके भूखन मरे, बाबा लाडू खांय"

§6§ "कंवारी के भाग्गन ब्याहता मर जात"

लोक विश्वास सम्बन्धी कुछ कहावतें :-

§1§ "जूड़ौ न खोलो मंगलवार । चूड़ी न पहिरौ बांह पसार"

§2§ "कपड़ा पैरे तीन बार, बुध, बिरसपत शुक्रवार ।

§3§ "एंता जते सोया, बरे, मंगलवार पीरा करै"

§4§ "संवना न बांटियों जेबरी, भदवां न बुनियौ खाट"

§5§ "हमने कौन तुमाये हांत के करिया तिल खायें"

§6§ " शुक्रवार की रात, करै नई बात"

घाघ एवं भड्डरी का लोक साहित्य भी हमें कहावतों के रूप में उपलब्ध है । ये अकबर बादशाह के राजकीय कृपाश्रित रहे ।

उनकी कुछ उल्लेखनीय कहावतें दृष्टव्य हैं :-

§1§ "ओछो मंत्री राजा नासैं, ताल बिनासे काई ।
सान साहिबी फूट बिनासैं, घग्घा पैर निवाई ।।"

§2§ "कांटौ बुरौ करील कौ, घाघ बदरिया घाम ।
सौत बुरी है चून की, और साझे कौ काम ।।"

§3§ "चोर जुआरी गंठकटा दूसर नार छिनार ।
सौ सौगन्धैं खाय जो, घाघ न कर इतवार ।।"

(4) "उधार काढ़ि त्योहार चलावैं, छप्पर डारैं तारो ।

सारे के संग बैन पठावैं, तीनों को मुंह कारो ।।"

(5) "प्रातकाल खटिया से उठकैं पिये तुरन्तै पानी"

ता घर बैद कभी न आवै, बात घाघ है जानी ।।"

(6) "सावन घोड़ी, भादों गाय" माघ मास जो भैंस बियाय।

कहैं घाघ यह सांची बात । आप मरे या मालिकै खाय ।।

(7) "ऊँच अटारी मधुर बतास । घाघ कहैं घर ही कैलास"

(8) "गेंवड़े खेती गाँव सगाई तिलगुर भोजन तुरूक मिताई"

(9) "तीतर पंखी बादरी, विधवा काजिर रेख ।

वा बरसे या घर करे या में मीन न मेख ।।"

(10) "आधे उतरा मूंग गुराईं, आधे चित्रा सरसों राई ।"

लघु कलेवरी होने पर भी कहावतें बड़ी ही सारगर्भित होती है । इनमें हमारे पुरखों के जीवनानुभवों का निचोड़ सन्निहित है । सामासिक शैली के कारण वास्तव में ये "गागर में सागर" भर देती है । लोक जीवन की गहरी अनुभूतियों के साथ साथ इनके द्वारा जीवन की अनेक जटिल समस्यायें सहज ही सुलझाई जा सकती है । प्रसाद-गुण सम्पन्न ये कहावतें हृदय को संस्पर्श करती हैं ।

डा0 सुनीति कुमार चटर्जी के मतानुसार "ऋग्वेद से शुरू करके अब तक के भारतीय साहित्य में प्रवाद और कहावतों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है । ऋग्वेद तथा अथर्वेद में कितने ही पूरे, अर्धक, पाद या अर्धपाद को अर्थात, लोकोक्ति या कहावत कहा जा सकता है ।[127]

लोकोक्तियाँ अथवा मुहावरे सामाजिक जीवन के लिये कितने महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं निम्नांकित अवतरणों से स्पष्ट है :-

---

127. राजस्थानी कहावतें, भूमिका से साभार

" लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुये सूत्र है । अनन्तकाल तक धातुओं को तपकर सूर्य रश्मि नाना प्रकार के रत्नों- उपरत्नों का निर्माण करती है । जिसका आलोक सदा छिटकता रहता है । इसी प्रकार लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के धनीभूत रत्न है, जिन्हे बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है । ..इन लोकोक्तियों से जीवन की गुत्थियां या उलझनों को सुलझाने में बहुत बड़ी सहायता मिलती है । लोकोक्ति का आशय पाकर मनुष्य की तर्क-बुद्धि शताब्दियों के संचित ज्ञान से आश्वस्त-सी बन जाती है और उस अंधेरे में उजाला दिखलाई देने लगता है । वह अपना कर्तव्य सुनिश्चित करने में तुरन्त समर्थ बन जाती है[128]। संसार में मनुष्य ने अपने लोक व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा है, समझा है तथा बार बार उनका अनुभव किया है, उनको अपने शब्दों में बांध लिया है, वे ही मुहावरे कहलाते हैं[129]। वास्तव में लोकोक्तियां अनुभूत ज्ञान की निधि है । शताब्दियों से किसी जाति की विचार धारा किस ओर प्रवाहित हुई है यदि इसका दिग्दर्शन करना हो तो उस जाति की लोकोक्तियों का अध्ययन आवश्यक है[130]। वस्तुत: "पहेली लोकोक्ति है । लोक मानस इसके द्वारा अर्थ गौरव की रक्षा करता है और मनोरंजन प्राप्त करता है । यह बुद्धि परीक्षा का साधन है । भाव से इसका सम्बन्ध नहीं होता, प्रकृत को गोप्य करने की चेष्टा रहती है, बुद्धि कौशल पर निर्भर रहती है[131]।

इस प्रकार अनेकानेक रूप में लोकोक्ति अथवा मुहावरे हमारे जीवनाकाश में नक्षत्रों की भांति ही नहीं अपितु सूर्य-चन्द्रमा के समान ऊष्मा और शान्ति प्रदान कर अभिनव आलोक विकीर्ण करते है । इस संदर्भ में "यह कथन अधिक सत्यप्रतीत होगा, कि लोकोक्ति एक संक्षिप्त, चुभता हुआ जीवन का सुन्दर सूत्र है, जो जनता की जिव्हा पर निवास करता है तथा जो व्यावहारिक जीवन के निरीक्षण, शाश्वतिक अनुभूति या जीवन के सच्चे नियम

---

128. राजस्थानी लोकोक्ति संग्रह की भूमिका, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल,
129. त्रिपथगा अंक, मार्च 1965, पं० रामनरेश त्रिपाठी, पृष्ठ 30,
130. हिन्दुस्तानी, अप्रैल 1939 डा० उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ 159, 216,
131. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, डा० सत्येन्द्र, पृष्ठ 520,

को प्रकाशित करता है ।[132]

{4} लोक-पहेलियाँ :- संस्कृत साहित्य में पहेलिकों को "अन्तर्लापिका" अथवा "बहिर्लापिका" कहते हैं । वैदिक युग में अश्वमेघ यज्ञ में अश्व का बलिदान करने के पूर्व "होता" और "ब्राह्मण" में प्रहेलिका पूछना अनिवार्य होता था । फ्रेजर महोदय ने "गोल्डनबाऊ" में लिखा है कि पहेलियों की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ती होगी।[133]

पहेलियाँ सारे संसार में प्रचलित हैं । भारत, अरब, फारस, मिस्र, और यूनान सर्वत्र पहेलियों का प्रचलन था । वैदिक ऋषियों ने विराट प्रकृति के अज्ञात रहस्योंके प्रति विस्मय और कौतूहल को प्रकट किया था । बाद में वैज्ञानिकों ने उस रहस्य की व्याख्या कर बौद्धिक जिज्ञासा का एक तरह से समाधान प्रस्तुत किया । इस तरह वैदिक काल से ही भारत में पहेलियों की परम्परा का स्रोत उमड़ता चला आ रहा है ।[134] कभी-कभी गोपन विषयों को भी व्यक्त करने के लिये क्लिष्ट भाषा और शब्दावली का प्रयोग किया जाता रहा होगा, जिससे सर्व साधारण वह भावना समझ सके, जानकार ही उसे सही अर्थ में जान सकें । जैसे - "हर आये हर लेन को हर बैठे हर पास ।

हर देखत हर में गिरे हर हो चले उदास ।।"

अर्थात सर्प मेंढक को पकड़ने के लिये आया । मेंढक कुएं के पास बैठा था । सर्प को देखते ही {भय के कारण} मेंढक कुएं में गिर पड़ा । उसे पानी में डूबा देखकर सर्पउदास होकर चला गया । तथा सूर के पद में - "जबहि सरोज धरयौ श्रीफल पै, तब जसुमति तंह आई ।" यहाँ सरोज हाथ का पर्याय और श्रीफल स्तन{उरोज} के लिये प्रयुक्त किया गया है ।

---

132. रेशियल प्रोवर्ब्स, भूमिका- डा० चैंपियन,

133. दि गोल्डन बाउ, फ्रेजर, नवाँ भाग, पृष्ठ 121,

134. लोकायन, डा० चिन्तामणि उपाध्याय, पृष्ठ 96,

इस प्रकार किसी बात को सीधे ढंग से न कहकर अप्रत्यक्ष ढंग से प्रस्तुत कर लोगों की परीक्षा लेने और तुरन्त उत्तर न पाकर उसकी हीन बुद्धि का परिचय पाकर लोगों को सन्तोष का विषय होता है, और अपने ज्ञान का गर्व होने लगता है । यहां मनोवैज्ञानिक तथ्य पहेलियों के उदय में कार्य करता जान पड़ता है । आपने बुद्धि-वैभव की छाप दूसरों पर डालकर अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादन तथा दूसरों की अज्ञानता की हंसी उड़ाने का सुअवसर पाता है । वह अपेक्षा करता है कि जन साधारण सामान्य की बुद्धि का उत्तर उस स्वयं जैसा हो, अभाव पाने पर उसे मनोरंजन की सामग्री मिल जाती है । कभी-कभी वह उत्तर बताने की चुनौती भी दे डालता है, और न बताने पर दण्ड का भय दिखलाता है । यथा-

"पीरी गोबर पीरे अण्डा । बेगि बता नहिं देत हो डण्डा ।"

यहां पीरी गोबर से "कढ़ी" और पीरे अण्डा से "पकौड़ी" अर्थ लिया गया है । इस प्रकार सही उत्तर न देने पर व्यक्ति को डण्डा से पिटाई होगी ।

डा० सत्येन्द्र लोक पहेलियों को सात विभागों में बांटा है :-

1. खेती सम्बन्धी, 2- भोजन सम्बन्धी, 3- घरेलू वस्तु सम्बन्धी, 4- प्राणी सम्बन्धी, 5. प्रकृति सम्बन्धी, 6. अंग प्रत्यंग सम्बन्धी, 7- अन्य[135] ।

इस प्रकार पहेलियों के विषय अनन्त है । अतः विषयवार विभाजन करना अत्यन्त कठिन सा है, फिर भी बुन्देली पहेलियां निम्नांकित विषयों पर कहीं जाती है यथा-

(1) खाद्य सामग्री सम्बन्धी (2) वस्त्राभूषण व श्रृंगार प्रसाधन सम्बन्धी,

(3) शरीरावयव सम्बन्धी (4) गृहोपयोगी वस्तु सम्बन्धी,

(5) अस्त्र, शस्त्र सम्बन्धी, (6) पशु-पक्षी एवं जीव जन्तु सम्बन्धी,

(7) पेड़पौधे एवं फूल फल सम्बन्धी (8) कृषि सम्बन्धी

(9) प्रकृति सम्बन्धी (10) कथा सम्बन्धी, (11) लेखन- सामग्री सम्बन्धी

---

135. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, डा० सत्येन्द्र, पृष्ठ 495-96

§12§ व्यवसाय सम्बन्धी, §13§ इनके अतिरिक्त अन्य अथवा स्फुट पहेलियाँ।[136]

ऐसी भी, पहेलियाँ होती हैं जिनके अर्थ उसी में स्पष्ट होते हैं।

§1§ खाद्य सामग्री में निम्नांकित वस्तुयें आती है। यथा - मठा, मालपुआ, मगौरा, रोटी, जलेबी, कढ़ी-पकौड़ी, बरा, दाल, चावल, चना, पूड़ी, उरद, नौन, नैनू, मसूर की दाल, घी, दन्नो§दलिया§, ज्वार, बाजरा, नारियल का गोला, लाल मिर्च, मूली, पान सुपाड़ी, सिंघाड़ा, इलायची, लहसुन।

§2§ वस्त्रा भूषण :- पाजामा, जूता, धोती, साफा, कमीज, जम्फर, पोलका, घांघरा, फरिया, गुदड़ी, नथ, बिछुआ, बेंदी, टिकुली, बूंदा, ऐना§दर्पण§, पैजना, कन्नफूल, हंसी, हमेल, तिदानों, बखौरिया, चूरा, चुरिया, हाथपोश, मुंदरी, शीशफूल, करदौनी, घुंगरिया, नथ, मंगलसूत्र, पुतरिया, लरलरी।

§3§ शरीरावयव- नाखून, आंख, पसीना, सिर, उंगलियाँ, कान, नाक, दांत, थन, सींग, मुंह, जीभ।

§4§ गृहोपयोगी- सुई, डोरा, रुई, डोरी, आग, ताला, अरगनी, टोरां की सार, बेंड़ा, दिया, बत्ती, तेल, गागर, चरखा, चक्की, हुक्का, चारपाई आटा, पत्तल, किवार, नरदा, शंख, चखरी, सकरी की लेंड़ी, तराजू, दातुन, कढ़ाई, तवा, चलनी, चरखे की माल, खपरैल, रुपया, पसेरी, मथानी, पंखा, धुआं, कपूर।

§5§ अस्त्र-शस्त्र- बन्दूक की गोली, तोप, छुरा, बन्दूक, तलवार, लाठी।

§6§ पशु पक्षी एवं जीव जन्तु- मुर्गा, मोर, बिच्छू, सांप की केंचुल, हाथी, शहद की मक्खी, कोल्हू का बैल, जूं, शेर, मक्खी, सारस, झुंगरिया, कुतियां, मछली, तोता, मगर, बानर।

§7§ पेड़-पौधे एवं फल-फूल- ज्वार का पौधा, अमरबेल, कैथ, चमेली, तेंदू का फल, मुरार, बेल, लौग, तुलसी दल, घुंघची, इमली, आम, जामुन, अनार, मिर्च का फूल, पटसन अरहर का पौधा, मोगरे की कली, पान, केला का पेड़, बबूल का पेड़, ताड़, कमल, टेंटी, कसेरू, ककोरा, महुआ का पेड़, महुआ, गुली, गुठली।

---

136. सावन भादों मौत चलत है, माव पूस में थोरी।
    सुनियों री ये चतुर सहेली, अजब पहेली मोरी।।"
  2. देखी है अरू खाई। परचीखी हो तो राम दुहाई।"

(8) कृषि - सिवाय, कुल्हाड़ी, जूआ, पचा, चरस, हँसिया, खुरपी, दराँती, रहँट, खपरा, हल, बौना, उनाई, चलेवा, पतर ।

(9) प्रकृति:- ओला, चन्दा, आकाश, बाँस, तरैयाँ, ओस, सूर्य, नदी, वर्षा, धरती, पहाड़, टौरिया, झुटपुटी, दुफर, डांग (वन) पाला, तुषार ।

(10) कथात्मक :- पनिहारिन और वर्षा, शेर और ठाकुर, पदनजू अहीर, रीछ और साधु, बेटना और सियार, भैंस और मेंढकी, तथा पति-पत्नी की कथायें ।

(11) लेखन सामग्री- कागज, स्याही, कलम,

(12) व्यवसाय - लेखक, पनिहारी, हल और हलवाहा, घुड़सवार और मानव ।

(13) अन्य - कुआं, कुम्हार का चका, मकड़ी का जाल, मुर्दा, कुम्हार का डोरा, मुशक, शंख, चौपड़, मृदंग, पतंग, गुड्डा, गुड़ियाँ, सोना ।

पहेलियों के विषय वे ही है जो जीवन से सम्बन्ध रखते हैं । सबसे अधिक विषय घरेलू जीवनोपयोगी वस्तुओं के हैं । व्यवसाय सम्बन्धी एवं लेखन सामग्री सम्बंधी अधिक नहीं है । खेती की वस्तुयें भी गिनी-चुनी आई है । लाल मिर्च, दीपक, मूली, महुआ, आग, रुपया-पैसा, आटा, चन्द्रमा, तलवार पर अधिक पहेलियां मिलती हैं ।

पहेलियां किसी वस्तु का वर्णन होती हैं । इसमें अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत वस्तु का वर्णन किया जाता है । अप्रस्तुत में वस्तु उपमान रहता है । प्रस्तुत विषय की उपमान वस्तुयें निम्नांकित है, जिनका वर्णन बुन्देली पहेलियों में किया गया है -

(1) खाद्य व पेय पदार्थ - दूध, कोदो, कौर, लुचई, चन्दन, ककरी, दही, दूध-भात, अन्न, सुपारी, रोटी, लचका ।

(2) पात्र - कटोरा, बेला ।

(3) वस्त्राभूषण- घघरिया, गोई, सूत, दुसाला, पाट, पाटम्बर, चोली, जोरा, धोती, तोई, लांगा, टोपी, अंगा ।

(4) पशु- बिल्ली, गैया, कुत्ता, कुतिया, हिन्ना, घुरबा, हाथी, बैल, बकरी, ऊंट, बिलरा, बोका (बकरा) नांटा, भैंसिया ।

§5§ पक्षी :- सुआ §तोता§, परेवा §कबूतर§, किलकिला, बगुला, चील, कौआ, चिरैया § चिड़िया §
गिलहरी, पपीहा, ।

§6§ कीट-पतंग :- केंचुआ, नाग, नागिन, गोह, साँप ।

§7§ पेड़-पौधे :- फल-फूल पत्ता :- खजूर, बर §बरगद§ रूख, §वृक्ष§ चन्दन, नीम, पीपर,
डाल, नीबू, रादूल, चम्पा ।

§8§ प्रकृति :- पानी, पर्वत, घाम, छाँह, पवन, गगन, तारा, मेघ, दिन, रात, भूमि, मोती,
नदी, मोर, चाँद, समुन्दर, पृथ्वी, तारंगा §हवा§ पोखर, ताल सूर्य ।

§9§ शरीर के अंग :- पूँछ, मुँह, पंख, सींग, पेट, सीस, नेत्र, खुर, हड्डी, करया § कमर § माथे,
माँस, सिर, दुम, गोड़े § पैर §, केश, शीश, हाथ, पाँव, मुखड़ा, जिव्हा,
चोंच, छाती, गाल, पौंद, § नितम्ब § सूँड, मूँछ ।

§10§ रंग :- गोरा, सूहा § लाल § अमउवा § पीला-हरा § काला, लाल, हरा, श्वेत, कल्लू,
काजर, श्याम, सफेद, पीरी § पीली §, धौरा, नीला ।

§11§ सम्बन्धी - अम्मा, कक्का, खसम, सास, बहू, काकी, लाली, छोरी, मौड़ी, देवर, जेठ, नानी,
लुगाई, बारे § लड़का § बारी § लड़की § मामा, माई, सखी, गुइयां, पत्नी,
नाती, बैने, बिटिया, बच्चा मौड़ा ।

§12§ मनुष्यों के नाम :- अकबर शाह, दोपती § द्रौपदी § चन्दनसिंह, भोले, रामबाई, टुन्नू, मिंया
रामदास, मुरारीलाल, लालबाई, रमचन्ना, मनीराम ।

§13§ गुणवाचक विशेषण :- कच्ची, पक्की, सीसौ, सूखौ, गोल, कटीले, धन्धा, हरौ, लम्बदन्ता,
बड़पुच्छा, मोटा ।

§14§ देवी-देवता- शंकर, शिव, महादेव, शम्भु, हरि, ईश, हनुमान, सीता, दुर्गा, शेषनाग, राम
लक्ष्मण, ब्रह्मा, इन्द्र ।

§15§ जाति एवं व्यवसाय - बामन, पंडित, जोगी, बाबा, पाण्डे, भाट, माली, राजा, पठान
प्यादे, भिश्ती, किसान, ठाकुर, सन्त, बानियां, ठकुराइन, महते, पटेल, गूजर, कोरी, धानुक
बसोर, चमार, भंगी, मेहतर, बैरागी, बुन्देले, धोबी, पमार, परदान § प्रधान, कायस्थ § दीवान,

जुलाहा, सुनार, लुहार, कुम्हार, धोबी, नाऊ, ढीमर ।

§16§ गिनती या तोल- नौ, तीन पाव, सेरभर, बीसों, छः चार, चौदा, सोरह, तीन ,दो ,पांच, सात, पन्द्रा, आधौ, आधौ, एक, चौसठ, बत्तीस, दस, चालीस, बारा, अस्सी, ग्यारा, आठ, पसेरी, चौरासी, नव सौ ।

§17§ राशि- मीन, वृषभ, तुला, कुम्भ, ।

§18§ कृषिः- कपास, पनैया, हंसिया, खेत, बीज ।

§19§ ऋतु दिन- सावन, भादौं, क्वांर, कातिक, अगन, पूस, माव, फागुन, चैत, बैसाख, जेठ, असाढ़, जड़कारो, सुम्मवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पत, शुक्र, शनीचर, ऐतवार

§20§ खनिज पदार्थ - हीरा, मोती, सोना, चांदी, पन्ना लाल, केवला, मनियां, पथरा।

§21§ शहर के नाम- चांदपुर, कानपुर, हाथरस, नौंहपुर, रतनपुर, लन्दन, भोपाल, हाथरस, कलकत्ता।

§22§ अन्य - कुआं, फसूकर, टका, घाट, कमान, सूज, ढउवन §पिरिया§ मेंड, डिबिया, कमरौटी, ढबुआ,

उदाहरणार्थ कुछ पहेलियां दृष्टव्य है :-

§अ§ तूस की घंघरिया, अमउवा की गोई ।
बरै तोरी घांघरिया, मै सब रात रोई ।।

§आ§ छोटी-सी छोकरी लालबाई नाम ।
पैरे वा घांघरों एक पैसा दाम ।।

§इ§ सफेद बिलैया हरीरी पूंछ ।
चता सो चता गई मताई से पूंछ ।।

§ई§ एक रुख ऐसौ हरयानों ।
तरें, सेत ऊपर हरयानों ।।

§उ§ हार गई, खेत बई, लाल मनियां गाड़ गई ।

§ऊ§ नांय गई मांय गई, चौखरो सौ टांग गई ।

(ए) आठ पैर चौसठ घरी, ठाकुर सै ठकुरान बढ़ी ।

(ऐ) हरी डंडी लाल कमान, तोबा तोबा करै पठान ।

(ओ) घाम लगे सूखे नहीं, छांह लगे मुरझाय ।

कहो कौन सी वस्तु है, पवन लगे मर जाय ।

(औ) एक लरका बम्मन कौ । टीका लगाय चन्दन कौ ।

(अ:) तनक सौ सोनों, सब घर लौनो ।

(क) चिकनी कुइया चिकनों घाट, कूद परो रमचन्ना भाट ।

(ख) इत्ते से मर्नाराम । छत्तीसी पूंछ ।

(ग) चाची के दो कान कक्का के कानहुं नैयां ।

काकी चतुर सुजान, कका कुछ जानत नैया ।।

(घ) तनिक सौ रामदास । कपड़ा पैरे सौ पचास ।

(ङ) एक नार दक्खिन से आई, पांच पूत दस नाती लाई ।

पंती होगें बीस, तुम पाड़ तू पन्ना देखौं कन्या हैं चालीस ।।

(च) बिना सूत चोली सिली, फूलरी लगीं हजार ।

छै: महिना तक पैर कैं कोरी धरी उतार ।।

(छ) पेड़ न पत्ता, ऊपर चढ़ो सत्ता ।

(ज) अटक चली मटक चली, पैर चली छइयां ।

ऐसे खसम की लाड़ली, चढ चली कइयां ।।

(झ) एक लुगाई आततायी आधी रातै बिटिया जाई ।

मोर कौ पारो होन न पाव, बिटिया ने इक लरका जाव ।

(ण) कारौ मौं बंदरा नहिं होय,

दो जिव्हा, नागिन ना होय ।

पंचपती द्रोपदी ना होय,

जो जानें, तो पंडित होय ।।

(ट) लमदन्ता औं बड़ुपुच्छा, लंक विदारन होय ।

रामायण जिन बूझियौ हनुमाननहिं होय ।।

(ठ) चार भाई चौरासी, फूल पड़े एक रासी ।

(ड) चार पाहुने चार सुपई । एक एक के मौ मे दो-दो दई ।।

(ढ) चार मिले चौंसठ उठे बीस रहे कर जोर ।

(ण) रूपरंग से रस भरी, किरपा करियौ मोय ।

ऐसी नारी भेज दो, मोर भये नर होय ।।

(त) . हात ना पांव, गोरी सऊ पेट लौं ।

(थ) एक जनावर ऐसा जाके हाड़ न मांस ।

काम करै तरवार कौ फिर पानी में नास ।।

उपर्युक्त विवेचन से सुस्पष्ट है कि बुन्देली पहेलियों में जहां बुद्धि वैभव का प्राधान्य है, वहां भाव प्रधानता भी है, और साथ-साथ है अनूठी लोकानुरंजिनी मेधा। इनमें साहित्यिक दृष्टि से शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है । इनमें बुन्देली कालोक सांस्कृतिक पक्ष स्पष्टतः मुखरित है ।

तृतीय अध्याय

3.0 मिथक की उत्पत्ति: विशेषतायें एवं व्याख्या .

पुराण या मिथक में मानव सत्य निहित रहते है । उनसे व्यक्तिगत और सार्वजनीन समकालीन शाश्वत मानव-अर्थ निर्मित होते हैं । इसी कारण अपने समय के जटिल संकट तथा समस्याओं, मूल्य द्वन्द्व एवं अस्तित्व ग्रन्थि विमोचन आदि के लिये रचनाकार और पाठक, श्रोता और विचारक पुराण साहित्य की ओर उन्मुख होते हैं ।

इसी लिये भारतीय साहित्य आधुनिक युग में भी रामायण और महाभारत से, अन्य प्राचीन वैदिक-उपनिषद्- साहित्य के वर्ण्य विषय लेतारहा है और महाभारत सहित पुराणों में तो इतिहास भी है, परम्परा भी । अतएव बार-बार मन पुराणों की ओर जाता है और अपने समय का समाधान वहाँ ढूंढता है और ढूंढता रहेगा । विकास की दृष्टि से देखें तो मनुष्य का मानस अपने में भूत को छिपाते हुये है । विगत की यह वर्तमान कालीनता है, क्योंकि जिसे मानव-चेतना या आत्मा कहते हैं, उसमें समूचा अवचेतन ﴾कलैक्टिव अन्कांशस﴿ सम्पूर्ण इतिहास, आदिमकाल के सभी भय, संघर्ष, अनुभव, स्वप्न और घटना चक्र के अवशेष सुरक्षित है । पौराणिक वर्ण्य विषय और पात्रों में इसी कारण यह शक्ति होती है कि वे विगत को अवधान में लाकर मानव चेतना के आदि से अथ तक के पूर्ण सन्दर्भ और सिलसिले जाग्रत कर देते हैं । इसके पाठक श्रोता को समस्या बोध के सिवा एक सांस्कृतिक नैरन्तर्य भी अनुभव होता चलता है, पूर्वजों से जुड़ाव की अनुभूति भी और यह कि आज जो हम अपने समय का सामना कर रहे है, उसके साक्षात्कार और समाधान में पूर्वजों के संघर्ष, सुख-दुःख हमें जीवन और समाज के साथ भिड़न्त में साहस प्रदान करते है, और इस तरह परम्परा, आधुनिकता को,

आधुनिक मनुष्य को जीवन का पाथेय देती है, एक अविच्छिन्नक्रम में मनुष्य विकास करता चला जाता है[1]।

"मिथ" सत्य होता है। "मिथ" उसमें विश्वास करने वाली जातियों का सत्य होता है। "मिथ" का सत्य आधिभौतिक होता है[2]। इसमें अति प्राकृत पात्रों और घटनाओं या अति प्राकृत शक्तियों द्वारा अनुशासित प्राकृत पात्रों और घटनाओंका वर्णन मिलता है। ये पात्र और घटनायें विश्व की सृष्टि और इसकी विभिन्न विचित्रताओं तथा रहस्योंकी व्याख्या करते हैं[3]। भिन्न-भिन्न समयों में संसार की सभी जातियां प्रकृति, पुरुष और आत्मा के विषय में सोचती रही हैं। इन तीनों के विषय में सोचने का कोई निश्चित मार्ग या तरीका नहीं है। लेकिन सारी दुनियां के सोचने के तरीकों को मिलाकर निश्चित सिद्धान्त प्रतिपादित करने का प्रयास किया जाता रहा है। संभव है कुछ निश्चित सिद्धान्त खोजे भी जा सकते हैं। "मिथ" पराशक्तियों के विषय में आदिम जातियोंके सोचने का तरीका है। यानी "मिथ" आदिम जातियों का दर्शन है[4]। इसे उनका नीतिशास्त्र भी कहा जायेगा क्योंकि पराशक्तियों के प्रति श्रद्धा, भक्ति और विश्वास उनके माध्यम से प्रकट किया गया है। "भय" इसका दूसरा कारण है। आचरण संहिता या नीति निर्धारण इसी भय से बचे रहने और किसी तरह की हानि केलिये अवरोधक प्रमाणित हुआ है।

1- वीणा मासिक, (सम्पा॰ श्यामसुन्दर) में डा॰ विश्वंभरनाथ उपाध्याय के लेख "मिथक नहीं, अभिशाप" से साभार, जून 1995 अंक 6, पृष्ठ 17

2- भार्गवास डिक्शनरी, (अंग्लो॰ हिन्दी) ग्यारहवां संस्करण, पृष्ठ 535,

3- लोक साहित्य और संस्कृति, डा॰ दिनेश्वर प्रसाद, पृष्ठ 2,

4- उपर्युक्त, डा॰ दिनेश्वर प्रसाद, पृष्ठ 113,

प्रकृति, मनुष्य और आत्मा के सम्बन्ध में सोचने की प्रक्रिया के विभिन्न जातियों द्वारा तीन आधार माने गये हैं। इनके द्वारा समय-समय पर विभिन्न जातियाँ कैसा सोचती रही हैं, यह विश्लेषण होता रहा है। वे आधार हैः-

(1) ग्रन्थ।

(2) अनुष्ठान।

(3) अनुष्ठानकर्ता[5]।

ग्रन्थः- विश्व के प्रत्येक भाग के मनुष्यों में प्रकृति, मनुष्य और आत्मा के विषय में तरह-तरह के विचार प्रकट किये हैं। वे सभी विचार समय-समय पर एक जगह संकलित होते रहे हैं। उन संकलित विशाल चिन्तन-भण्डारों को ग्रन्थ कहा गया है। उन सभी एकत्रित विचारों को विश्लेषित करने पर दो तरह की बातें सामने आईं -

(क) बहुत सारे भागों के कुछ विचारों और धारणाओं में समानता है।

(ख) अनेक धारणायें और विचार एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं।

इन विचारों को देखते हुये कुछ विद्वान "मिथ" को आदिम जातियों की प्राकृतार्किक अवधारणा मानते हैं[6]। ई.बी. टायलर, फ्रेजर आदि तो मिथ सर्जक युग की कल्पना तक कर बैठे हैं। अपने विचारों की पुष्टि वे यह कहकर करते हैं कि आदिम जातियाँ रहस्यात्मक, अतिप्राकृत शक्तियों से हमेशा भयभीत रहती हैं। यह अतिप्राकृत शक्ति की रहस्यात्मक कल्पना जब अभिव्यक्त होती है तो "मिथ" बन जाती है। लेकिन आदिम जातियों की ही

5- खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन, डा० रोज केरकेट्टा, पृष्ठ 65,

6- उपर्युक्त, पृष्ठ 66,

नहीं वरन् अतिविकसित जातियों में भी अभी भी ऐसी धारणायें बनी हुई हैं, कि कुछ अदृश्य शक्तियां संसार में हमेशा कार्यरत रहती हैं । अतः व्यष्टि और समष्टि में बहती यह अन्तर्धारा आदिकाल से समाज को परम्परागत रूप में मिलती आ रही है । इसीलिये प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थ सदा से "मिथ" के द्वारा समृद्ध हुये हैं[7] ।

जनजातीय अवस्था में सभी जातियों ने सृष्टि की विचित्र-विचित्र कल्पनायें की हैं । बहुत सी जातियों में सृष्टि की काल्पनिक कथायें लिखित रूप से पाई जाती हैं । लेकिन जितना अंश लिखित मिलता है, उससे कई गुना अधिक मौखिक रूप में प्राप्य है । ये कथायें अनादि काल से मौखिक ही हस्तान्तरित होती आ रही हैं । इतना ही नहीं, इन मौखिक सामग्रियों में प्रतिपल कितना जोड़-घटाव होता है, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती । सृष्टि कथाओं का ही अकेले इतना विशाल भण्डार है कि सहज ही कहा जा सकता है कि उसका दशमांश ही अब तक ढूंढा जा सका है । "पृथ्वी कैसे बनी, मात्र इसी कथा को देखने पर ज्ञात होता है कि एक ही जाति के बीच कई सृष्टि-कथायें प्रचलित हैं। इसी हिसाब से यदि सारे संसार की कथाओं का आंकलन करें, तो असलियत मालूम होगी । बाइबिल में ही पृथ्वी की उत्पत्ति की दो कथायें उपलब्ध हैं । यह एक कि सात दिनों में पृथ्वी, आकाश, वनस्पति और प्राणियों की सृष्टि हुई[8], ऐसा कहा गया है । दूसरे यह कि आरम्भ में शब्द ही था, और शब्द से ही शेष सृष्टि हुई[9] । इसी प्रकार मनु और श्रद्धा[10] तथा आदम और ईव[11] से मानव जाति की उत्पत्ति, स्वर्ग और नरक का विश्वास तथा प्रलय द्वारा संसार का विनाश, कई-कई रूपों में एक ही जाति के अन्तर्गत प्राप्त होता है। इन सभी को समझने के लिये एक सिद्धान्त प्रतिपादित करने की ओर निरन्तर प्रयास जारी है ।

---

7. खड़िया लोक कथाओं का साहित्य सांस्कृतिक अध्य. डा. रोजकेरकट्टा, पृष्ठ 65-66,
8. ओल्ड टेस्टामेण्ट,
9. न्यू टेस्टामेण्ट,
10. शतपथ ब्राह्मण । अध्याय 8 तथा श्री मद्भागवत पुराण ९/1/11
11. खड़िया लोककथाओं का साहि. संस्कृ. अध्य. डा० रोजकेरकट्टा, पृष्ठ 66
12. उपर्युक्त

ईसाइयों के सर्व प्रचलित विश्वास को ही लिया जाय कि "शब्द" था अर्थात "कुछ" था । इसी "कुछ" के होने की धारणा ने "आत्मा" की कल्पना की । ये ही कल्पनायें, धारणायें और विश्वास "मिथ" को जन्म देने वाले हुये । ये सारी पौराणिक कथायें पुराणों में संकलित हुईं ।

<u>अनुष्ठान</u> :- जब सृष्टिकर्ता की धारणा बनी तो उसकी असीम शक्ति की बातें भी सामने आईं । सृष्टिकर्ता अपार शक्ति पुंज माना गया । जन्म, मृत्यु, समृद्धि, कंगाली, हर किस्म का जीवन, सब उसकी कृपा से है- यह धारणा पुष्ट हुई । इस विश्वास ने मनुष्य में कृतज्ञता के भाव भरें । उसने सोचा कि मनुष्य को सृष्टिकर्ता के प्रति कृतज्ञ होना चाहियें । कृतज्ञता प्रकट करने के लिये मनुष्य ने नाना किस्म के विधान, मंत्र, पूजा और अर्चना की सामग्रियों को आविष्कृत किया । वास्तव में विधान, मंत्र और पूजा-अर्चना कृतज्ञता-ज्ञापन के प्रतीक ही हैं । ये सब कुछ मिलाकर "धर्म" कहा गया है । धर्म के नाम पर जो भी संस्कार या अनुष्ठान के कर्मकाण्ड किये जाते हैं, वे सारे प्रतीक मात्र हैं ।

<u>अनुष्ठानकर्ता</u> - अनुष्ठान में विधान, मंत्र और सामग्री के अतिरिक्त अनुष्ठानकर्ता की आवश्यकता पड़ी । अनुष्ठानकर्ता के भी दो भाग हुये । प्रथम पुजारी अर्थात विधान का ज्ञाता जो अनुष्ठान का कृत्य करने वाला हुआ । दूसरा : यजमान, जो कृतज्ञता ज्ञापन के लिये व भावी सुरक्षा और सुख, समृद्धि के लिये अनुष्ठान का आयोजन करने वाला हुआ । यजमान और शक्ति-सम्पन्न सृष्टिकर्ता के बीच पुजारी मध्यस्थ का कार्यकरने वाला हुआ । परन्तु अनुष्ठान के भागीदार दोनों हुये । ये अनुष्ठान व्यष्टि से समष्टि को और समष्टि से व्यष्टि को प्राप्त हुये । "ये प्रतीक समस्त मानव जाति की स्मृतियों और इसके सदस्यों (व्यक्ति मनुष्यों) के मानस के निम्न स्तरों की अवचेतन शक्तियों के प्रतिनिधि है[13] । क्योंकि अनुष्ठानों

13. लोक साहित्य और संस्कृति, डा० दिनेश्वर प्रसाद, पृष्ठ 14

का आयोजनकर्ता अपने ज्ञात अनुभवों के आधार पर यह सब कुछ करता है । ये अनुष्ठान आनुवांशिक भी होते हैं, जिन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी पालन किया जाता है । कालसंक्रमण के साथ इनमें विविधतायें और अनेक कथायें जुड़ती चली जाती है । संसार के सभी धर्मों में इन्हीं सृष्टि, संस्कार और संस्कार आयोजकों की बातें कही गई हैं, और धर्म कथाओं में इन्हें ही पकड़ने की कोशिश की गई है । इस तरह व्यष्टि और समष्टि के स्तर पर सृष्टि के बारे में चिन्तन हुआ है । चिन्तन की इन तीनों प्रक्रियाओं को निश्चित होने में हजारों वर्षों की दूरी तय करनी पड़ी । भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में, भिन्न-भिन्न कालों में सृष्टि और उससे सम्बन्धित कृतज्ञता के भावों के आविर्भाव में काल और उससे सम्बन्धित देश महत्वपूर्ण घटक हुये । विचारों में तथा सृष्टि-क्रम में देवता या देवता की धारणा बनी । साथ ही मंत्रों या पूजा-अभिचारों के विधान बनें और मंत्रों का निश्चित स्वरूप बना ।

भारतीय धर्म-दर्शन में जिस सृष्टि देवता की कल्पना की गई वह ब्रह्म है । ब्रह्म ने सृष्टि की । सृष्टि कर देने के बाद पालन-पोषण का प्रश्न उठा । प्रकृति में नित्यता बनी रहने के कारण पालन-पोषण करने वाली शक्ति का अनुभव कर लिया गया था, जो अन्न, जल, फल का क्रम से उत्पादन करता है, ताकि मानव और मानवेत्तर दोनों प्राणमय रहें । फलत: विष्णु की कल्पना पालनहार के रूप में की गई । बीच-बीच में महामारी, दुर्भिक्ष, और प्रलय का अनुभव चराचर जगत को होता रहा । इन विनाशकारी शक्तियों के सामने वह अपने को असहाय पाता था । जब-जब ऐसी विपत्तियां आईं, अपने असहायावस्था के कारण मनुष्य निरीह और कष्टों को समर्पित, मूक-दर्शक बना रहा था । लेकिन इससे बचने और निदान पाने के लिये सोचता भी रहा । इसके लिये उसने "शिव" की कल्पना की । अनुभवों के आधार पर

उसने सारी बढ़कर जो कल्पना की वह यह कि किसी दिन सारी सृष्टि का अन्त होगा अर्थात् प्रलय को आना ही है । सभी जातियों और सभी धर्मों में सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता औरसंहारकर्ता की धारणा बनी । इसमें कई जातियों और धर्मों में एक ही ईश्वर के अधीन ये सारी व्यवस्थायेंहुई और किन्हीं में अलग-अलग देवताओं के अधीन हुई । ये देवता लोक-नायक भी हुये जो आत्मा में निवास करने के साथ-साथ सचेतन भी हुये[14] ।

यह सृष्टि कब हुई ? इसका निश्चित अनुमान आज तक वैज्ञानिक नहीं लगा सके हैं । खुदाइयों से नितनये आश्चर्य प्रकट हो रहे हैं । इसलिये सृष्टि की आदिम अवस्था की कोई सही तस्वीर नहीं बन पाती । लेकिन विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि ब्रह्म का सम्बन्ध भूतकाल से है । विष्णु का सम्बन्ध वर्तमान से है जहाँ मनुष्य और मनुष्येतर का पालन-पोषण होता है । इसलिये विष्णु वर्तमान काल के देवता हैं । इसी तरह शिव का सम्बन्ध भविष्यत काल से हैं । पूर्ण रूप से अन्त अभी तक नहीं आया, लेकिन सभी धर्मों में प्रलय का विनाश होने की धारणा बनी हुई है ।

सृष्टि की धारणा या विश्वास में कई स्तर आते है । सबसे पहले ब्रह्माण्ड में आकाश के सूर्य, चांद, तारे, ग्रह औरनक्षत्रों की उत्पत्ति मानी जाती है। इसके बाद पृथ्वी यानी निर्जीव धरती और तब उसमें वनस्पति तथा विचरण करने

14- लोक साहित्य और संस्कृति, डा0 दिनेश्वर सागर पृष्ठ 15,

प्राणियों की उत्पत्ति मानी जाती है । कुल मिलाकर धारणा यह है कि पहले कुछ भी न था फिर उसमें से कुछ आया । जैसे -शब्द था और शब्द परमेश्वर के साथ था और शब्द परमेश्वर था । यानी जब कुछ असत् था या शून्य था । लेकिन दूसरी धारणा के अनुसार कुछ था अर्थात सत् था । भारतीय दर्शन के अनुसार क्षिति जल, पावक, गगन और समीर- ये पांच तत्व थे । इन्हीं से शेष सृष्टि हुई । तत्व का एक रूप ईश्वर भी है, जिसकी कल्पना पुरुष के रूप में हुई । दोनों ही धारणाओं में सृष्टि का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है । मनुष्य की सृष्टि के बाद जाति, समाज और गोत्र इत्यादि की धारणायें बनीं ।

विष्णु की अवधारणा के साथ ही पालनकर्ता को प्रत्येक धर्म में एक या अनेक बार अवतार लेना पड़ा । सृष्टिक्रम चल ही रहा है, इसलिये उसके पालन की आवश्यकता भी बनी हुई है । इस प्रकार मानव-कल्याण के लिये सिद्ध पुरुषों या भगवान के अवतार लेने की धारणा बराबर बनी हुई है । भविष्य में प्रलय होगा, यह विश्वास लोक-मानस में है, तथा वे प्रलय की प्रतीक्षा भी कर रहे है किन्तु यह धारणा विकसित धर्मों में ही है । यद्यपि आदिम जाति की लोक-कथाओं में प्रलयों की चर्चा हुई है किन्तु उनमें सृष्टि का अन्त प्रलय से होगा, ऐसी धारणा नहीं मिलती है । उन प्रलय-कथाओं के बाद भी सृष्टि की निरन्तरता बनी रही है । शायद इसीलिये मनुष्य के अन्त के रूप में सिर्फ मृत्यु को ही देखा गया है । व्यक्ति का ही जीवन-चक्र भी है और व्यक्ति की ही मृत्यु भी है । सारा ब्रह्माण्ड एक ही बार में नष्ट होगा, ऐसी धारणा या विश्वास नहीं मिलता है ।[15]

15- लोक साहित्य और संस्कृति, डा0 दिनेश्वर प्रसाद,

यदि वैज्ञानिक ढंग से कहा जाये तो सारे तत्वों के असन्तुलित होने पर अन्त की संभावना हो सकती है । अतः मान सकते है कि मनुष्य का जीवन चक्र ही सर्वश्रेष्ठ है । उसे ही सदा सुन्दर से सुन्दरता बनाने की चेष्टा की जाती रही है । विकास की यह सीढ़ी सुन्दरतम कीउच्चतम चोटी तक पहुंचने के लिये संस्कारों का सहारा लेती है । जीवन के सभी संस्कार सुन्दरतम को पाने की विराट चेष्टा हैं और ये जीवन को सुन्दर बनाते भी हैं । अस्तु, आइयें इन संस्कारों परभी एक विहंगम दृष्टि डालते चलें । यह दो प्रकार के माने जा सकते हैं । ‖1‖ सामूहिक संस्कार और ‖2‖ व्यक्तिगत संस्कार ।

‖1‖ सामूहिक संस्कार :- ये प्रकृति के चक्र पर आधारित हुये । ये संस्कार सामाजिक पृष्ठभूमि पर सम्पन्न किये गये, जिनके तीन प्रमुख आधार बनाये जा सकते हैं :-

‖अ‖ बीजारोपण :- इस संस्कार के द्वारा समाज ने अपनी इच्छा से व्यक्त कीं । अनुष्ठानों के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने से अधिक अन्न, फल, फूल, प्राप्त होने और सुखी जीवन की प्राप्ति ही इस अनुष्ठान के पीछे का मन्तव्य है । इस संस्कार में सूर्य, चन्द्रमा और बादल की प्रतीक पूजा होती है ।

‖आ‖ बीज बोने के पश्चात फल प्राप्ति तक उनकी सेवा और देखभाल अनिवार्य है । इसके लिये समाज के स्तर पर लोगों ने मनौतियां मानी कि यदि उनकी फसलों की रक्षा हुई और इच्छित मात्रा में लाभ हुआ तो अन्न का सबसे श्रेष्ठ हिस्सा या पहला भाग उसे अर्पित करेगें, अथवा किसी प्राणी की बलि देगें या उनके नाम पर दान देगें ।

‖इ‖ फसल की कटनी के बाद धन्यवाद ज्ञापन- स्वरूप अनुष्ठान आयोजित किये गये । इस ऋतु में काम की समाप्ति, भूख पर विजय, अन्न के कोठे का भरा होना और सुखमय जीवन की कल्पनायें मनुष्य को पुलकित किया । हर्षोल्लास की

विज्ञप्ति कहनी के बाद सबसे अधिक संस्कार उभर कर हुई ।

(2) व्यक्तिगत संस्कार - ये संस्कार जीवन-चक्र से जुड़े हुये हैं । मनुष्य के जीवन अनेक संस्कार हैं । किन्तु उनमें तीन संस्कार सबसे प्रमुख है - (1) जन्म, (2) विवाह एवं (3) मृत्यु । इन तीनों संस्कारों के साथ भी क्रमशः इच्छा, सुरक्षा और धन्यवाद का विश्वास जुड़ा है[16] ।

पारस्परिक सहयोग की भावना भी एक सुदृढ़ संस्कार है । सामूहिक संस्कारों में सारे लोग मिल जुलकर अनुष्ठान का आयोजन करते है । इसमें पेशेवर पुजारी की आवश्यकता नहीं होती । सारे लोग मिलजुलकर सामग्री तक जुटाते हैं । कुछ ही क्रियाओं को बड़ान या पुजारी सम्पन्न करता है ।

व्यक्तिगत संस्कारों में ब्राह्मण और पुजारी की आवश्यकता होती है । जन्म, विवाह और मृत्यु में पुजारी प्रमुख भूमिका अदा करता है । जन जातियों में यह सारी स्थितियां और सारे कार्य सामूहिक संस्कारों की तरह सम्पन्न किये जाते हैं । इन सामूहिक तथा व्यक्तिगत संस्कारों के पीछे दो मूल इच्छायें होती है :-

(1) कुलवंश-स्थापन के साथ सफलता की प्राप्ति और (2) देवताओं की वक्र दृष्टि से सुरक्षा । इन धारणाओं में देवताओं की दो कोटियां सृजित की- प्रथम अच्छे देवता और दूसरे बुरे देवता ।

अच्छे देवता वरदान देने वाले हुये जिनमें सूर्य, चन्द्र, वरुण इत्यादि तथा बुरे देवताओं में भूत, प्रेत, चुड़ैल इत्यादि । इन पवित्र और अपवित्र देवताओं

16- लोक साहित्य और संस्कृति, डा० दिनेश्वर प्रसाद,

के अलग-अलग कारक है, ऐसा विश्वास सर्व साधारण के बीच देखने को मिलता है। ये कारक एक दूसरे को नियंत्रण में ले सकते हैं। पवित्र देवताओं से मंत्र जुड़ा है और अपवित्र देवताओं से तंत्र-मंत्र। कारकों को इन्हीं भली-बुरी शक्तियों में जादू-टोना निहित होता है, अर्थात् अदृश्य शक्ति या पराविज्ञान से जुड़ा विश्वास ही "मिथक"-रचना के लिये उत्तरदायी है[17]। यानी सम्पूर्ण भाषिक विधान सामान्यतः और काव्यात्मक भाषा विधान विशेषतः एक प्रकार से "मिथक रचना" ही है। यहाँ नाम और वस्तु, वाचक और वाच्य, प्रतीक और अभिप्राय का भेद नहीं है।[18] दूसरे शब्दों में कह सकते हैं- "मिथक परम्परागत कथा है जिसका सम्बन्ध अतिप्राकृत घटनाओं और भावों से होता है। मिथक मूलतः आदिम मानव के समष्टि मन की सृष्टि है, जिसमें चेतन की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य रहता है[19]।

मिथक और साहित्य का घनिष्ट सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से चलता आ रहा है। "मिथ" शब्द का आदि स्रोत यूनानी भाषा का "म्युथास"[20] शब्द है जिससे अंग्रेजी में "मिथ" और हिन्दी में "मिथक" की अवधारणा हुई। हिन्दी में "मिथक" शब्द आधुनिक युग की देन है। हिन्दी साहित्य कोश" एवं

17- लोक साहित्य और संस्कृति, डा० दिनेश्वर प्रसाद

18. मिथक और साहित्य, डा० नगेन्द्र, पृष्ठ 5,

19. मिथक और साहित्य, डा० नगेन्द्र, पृष्ठ 6,

20. यूनिवर्सल डिक्शनरी आन दि इंग्लिश लैंग्वेज, प्रोफेस, पृष्ठ 2-7,

"मानक हिन्दी कोश" आदि शब्द कोषों में "मिथक" शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। अतः स्पष्ट है कि इन शब्द कोषों के प्रकाशन के समय तक "मिथक" की अवधारणा नहीं हुई थी। अंग्रेजी "मिथ" के समानार्थी पुराख्यान, "देवकथा", "पुराणकथा" आदि का प्रयोग ही चलता था। लेकिन ये शब्द संकुचित अर्थ रखने वाले थे तथा इनमें "मिथ" का पूरा अर्थ समाहित नहीं था। हिन्दी के कुछ अन्य विद्वानों ने अन्य नये शब्दों का प्रयोग "मिथ" के लिये किया। "मिथ" को आधुनिक अर्थ देने के लिये डा0 रामअवध द्विवेदी ने "पुरावृत"[21] और डा0 ब्रजविलास श्रीवास्तव ने "अवदान"[22] शब्द को "मिथ" के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयोग किया।

हिन्दी साहित्य में "मिथक" का सर्वप्रथम प्रयोग डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी ने चण्डीगढ़ की एक गोष्टी में लालित्य तत्व पर विचार करते हुये किया था। यह शब्द उन्हीं की देन है। उनके अनुसार "मिथुनी भूत मनुष्य के भावों का विम्ब ही "मिथक" है[23]।

आंग्लभाषीय साहित्य के समस्त शब्द कोषों में "मिथक" की परिभाषा देते हुये लिखा गया है कि मिथक वह कहानी है जो अधिकांश धर्म से सम्बन्धित होती है तथा जो किसी अद्भुद बात या तत्व को स्पष्ट करती है-जैसे किसी नगर की, अग्नि की तथा संसार की उत्पत्ति एवं जीवों के विकास के सम्बन्ध में जानना[24]। अन्य शब्द कोषों में मिथक के अर्थ हैं - कोई पुरातन कहानी अथवा लोक विश्वास, किसी जाति का आख्यान, धार्मिक विश्वासों एवं प्रकृति के रहस्यों

21- साहित्य सिद्धान्त, डा0 रामअवध द्विवेदी पृष्ठ 142,

22- मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्धकाव्यों में कथानक रूपियों, डा0 ब्र. वि. श्री, पृष्ठ 31,

23- लालित्य तत्व, डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 4,5

24- एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वोल्यूम 16, पृष्ठ 55,

के विश्लेषण से युक्त वृत[25]। देवों तथा वीर पुरुषों की परम्परा गाथा[26]। कथन वृत, किम्बदन्ती, असत्य, परम्परागत कथा आदि विश्वास संकुल अलौकिक देवों से सम्बद्ध[27] परम्परागत किम्बदन्तियों से भरी कहानी,[28] सुरों तथा नायकों के जीवन और कार्यों से युक्त कल्पनामूलक रोचकतापूर्ण कथा[29] आदि। अन्य एक सुप्रसिद्ध कोश में मिथिक एवं मिथिकल आदि शब्दों को मिथ से सम्बन्धित बताते हुये मिथक को प्रकृति से सम्बन्धित बताया गया है[30]।

संस्कृत साहित्य में "मिथ" का अर्थ पुरावृत कथा, पुरावृतों पाख्यानम्, पुराणकथा, पुराणोक्तोपाख्यानम्, पुराणोक्तेतिहास, प्राचीन कथा, कल्पित कथा, कूटार्थकथा आदि किया गया है। हिन्दी में भी इन्हीं से सम्बद्ध शब्दों का प्रयोग अब तक चलता रहा है। अरस्तू ने अपनी पुस्तक "पोइटिक्स" में "मिथ" शब्द का प्रयोग किया है और "मिथ" का अर्थ उसने "व्याख्यात्मक रचना-गाथा" बताया है।

मिथक का जन्म आदिकाल में ही हुआ था। इसी कारण उसे विद्वानों ने आदिम मनुष्यों की भाषा माना है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में कालरिज, नीत्से, अर्नेस्ट आदि पाश्चात्य विचारकों द्वारा मिथ शब्द के अर्थबोध में परिवर्तन लाया गया और उसे काव्य के अधिक निकट लाने का कार्य हुआ।

25- दि एटवांस डिक्शनरी आफ करेण्ट इंग्लिश,
26- चैम्बर्स ट्वन्टीथ सेंचुरी डिक्शनरी, पृष्ठ 708,
27- यूनिवर्सल डिक्शनरी एण्ड इंग्लिश लैंग्वेज,
28- दि अमेरिकन कॉलेज डिक्शनरी,
29.-दि स्टैण्डर्ड कालेज डिक्शनरी,
30.-ग्रालम कम्प्रेसिन डिक्शनरी, पृष्ठ 571,

पुनश्च नृतत्व शास्त्र के मनीषी टाइलर, फ्रेजर, मेलिनोव्स्की, पालरेडिन ने मिथक की चिरन्तनता की छानबीन की । इनके अनुसार प्रत्यक्षीकरण और अवधारणा- इन दो धरातलों पर स्थित होने के कारण मिथक के विलुप्त होने पर भी उसकी विचार वस्तु (थीम) का उत्तरजीवन बना रहता है[3]।

ऐतिहासिक युग के पूर्व गुफावासी आदिम मानव ने प्राकृतिक प्रभावों के वशीभूत होकर अपने मनोभावों को मिथक के रूप में प्रकट किया । प्रकृति के उन्मुक्त सौन्दर्य को देखकर जब आदि मानव मन विभोर हो उठा और प्रकृति के सृजन से श्रद्धा एवं विकासशीलता को देखकर जब उसके मन में भय का संचार हुआ, तब उसने अपने भावों और प्रतिक्रियाओं को मिथक माध्यम से वाणी दी । सूर्य का उगना, अस्त होना, बादलों की उमड़-घुमड़, बिजली का चमकना, फसलों का अंकुरित होना आदि उसकी दृष्टि में अत्यन्त आश्चर्यजनक, रोमांचकारी और रहस्यपूर्ण व्यापार थे । उन व्यापारों को वह देवी-देवताओं, देव-दानवों, जंगली पशु-पक्षियों, असाधारण शौर्य सम्पन्न वीर पुरुषों से सम्बद्ध कथात्मक फैन्टेसी गढ़ लेता था । इस प्रकार असीम शक्ति सम्पन्न और विनाश अथवा कल्याण में पूर्ण समर्थ देवताओं की उन्होंने कल्पना की और अपनी श्रद्धा, उपासना उन्हीं को अर्पित की, तथा उनकी प्रशंसा रूप में मिथकों की सृष्टि की । अतः धर्म, यज्ञ, आराधना, सभी मिथक से किसी न किसी रूप में जुड़े हुये हैं । उनके अनुसार यज्ञ में उन विचारों और भावनाओं का प्रकाशन कर्म-काण्ड द्वारा होता है, जो मिथक में कथा-रूप में निबद्ध होते है । इस प्रकार मिथकों की सृष्टि में प्राकृतिक उपादानों

31- कामायनी की मनस्सौन्दर्य सामाजिक भूमिका, डा० रमेश कुन्तल "मेघ" पृष्ठ 206,

का मुख्य हाथ रहा है[32]। इस सन्दर्भ में डा० सिंह की मिथक-परिभाषा यहां अत्यन्त माननीय है- "वस्तुतः अचेतन मन द्वारा प्रकृति का चमत्कारिक प्रभावों की अनुभूति का कल्पनात्मक सृजन ही मिथ है। यह सृजन यथार्थ के प्रति सहज स्फूर्ति (स्पण्ट्यूनियस) बिम्बात्मक प्रतिक्रिया है[33]।

आज मानव का यथार्थ पूर्णतः परिवर्तित हो गया है। फलतः नयी कविता में मिथकीय प्रयोग की दृष्टि में भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। नयी कविता का मिथक स्वच्छन्दतावादी कविता की भांति मात्र काल्पनिक स्तर का न होकर यथार्थ भूमि को स्पर्श करता है। नयी कविता का कवि अपनी हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये मिथक का प्रयोग करता है, क्योंकि मिथक मानव-मस्तिष्क के विचारों की अपेक्षा मानव हृदय की भावनाओं को प्रगट करने का एक सहज, सीधा और सशक्त माध्यम है[34]।

मेहता ने सच ही लिखा है - जिस प्रकार कुछ प्रश्न सनातन होते हैं, उसी प्रकार कुछ प्रज्ञा पुरुष भी सनातन होते हैं। राम ऐसे ही एक प्रज्ञा प्रतीक हैं जिनके माध्यम से प्रत्येक युग अपनी समस्याओं को सुलझाता रहा[35]।

मिथक की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें कथा का अंश स्वयमेव रहता है। कथा के बिना मिथक की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। बिना कथा के वह मात्र प्रतीक या वर्णन बनकर रह जायेगा। पुरादेशिक के मिथसाहित्य से पता चलता है कि सभी मिथकों में कथातत्व की विद्यमानता है। मानो मिथ और कथा परस्पर पर्याय बन गये हों। मिथक की दूसरी विशेषता उसे इतिहास से

32- नई कविता की लम्बी कविताएँ, डा० रामसुंधार सिंह, पृष्ठ 159-160,
33- समकालीन हिन्दी साहित्य, आलोचना को चुनौती, डा० बच्चन सिंह, पृष्ठ 35,
34- एसे आंफ मैन, लोकर, पृष्ठ 81,
35- संशय की एक रात (कवि की ओर से) नरेश मेहता, पृष्ठ 4,

पृथक करती है । मिथक का स्रोत अज्ञात होता है और उसके कर्ता का पता नहीं होता, इसके विपरीत इतिहास ज्ञात नाम होता है । मिथक की तीसरी विशेषता यह है कि कथा प्रधान होते हुये भी इसमें घटनाक्रम पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है । इसके विपरीत इसमें भावात्मक एवं कल्पनात्मक क्षमता की प्रधानता रहती है । मिथक की यह विशेषता उसेकथा से अलग करती है । इसकी चौथी विशेषता यह है कि मिथक के नायक देवता या अन्य अलौकिक पात्र होते हैं । मानव भी नायक हो सकते हैं, लेकिन मिथक में देवनायकों की ही प्रधानता रही है, इसी कारण अनेक देवनायकों की ही प्रधानता रही है, इसी कारण अनेक विद्वान मिथक को मात्र देवताओंकी कथा से ही सम्बन्धित मानते हैं ।

आदिम युग से परम्परागत रूप में प्राप्त मान्यताओं, संस्कारों एवं धार्मिक अनुष्ठानों की व्याख्या करना मिथकाकार्य है ।

प्राचीन विश्वासों और संस्कारों आदि को मान्यता प्रदान करना मिथ का प्रयोजन है ।

धार्मिक अनुष्ठान आस्तिक जन को रोग-शोक के भय से त्राण दिलाते हैं, वहीं लाभ की आशा भी दिलाते हैं ।

मिथ प्रकृति और मनुष्य की मूलभूत एकता प्रदर्शित करते हैं[36]।

यह अभेद कल्पना मानव-संस्कृति का आधार तत्व है और अनेक भेदों में बंटने को दूर करता है आधिभौतिकता ने जीवन को नश्वर दिखाकर व्यर्थ की वस्तु बना दिया है । जहाँ विज्ञान प्रदत्त आणविक युद्ध के खतरों ने लोगो में अनास्था और भय उत्पन्न किया है, वहाँ मिथ ही लोक जीवन के सतत प्रवाह

36- खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक और सांस्कृ0 अध्य0, डा0 रोजकेरकट्टा पृष्ठ 72,

में विश्वास पैदा कर रहा है । वस्तुतः मिथकीय धारणा जातीय विश्वास की तथा सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्ति है । मिथमें विडरूप भी है । जीवन-चक्र के अन्तर्गत वीभत्स, भयानक और रौद्र का भी अन्तर्भाव है ।

आदि मानव की कल्पना एवं रागात्मक प्रवृति के फलस्वरूप मिथक का जन्म हुआ और उसका विस्तार पूरे विश्व में जहाँ भी मानव जाति का निवास हुआ । यद्यपि इन मिथकों में देश या स्थान विशेष की अपनी अलग निजी परम्परा है, फिरभी कई मिथक ऐसे भीहैं जो दूरस्थ देशों में भी समान रूप से पाये जाते हैं । वर्गीकरणकी दृष्टि से मिथकोंको मोटे तौर पर दो भागों में बांटा जा सकता है :-

§1§ विदेशी मिथक - विदेशी मिथकों को कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । विदेशी साहित्य में अरब और फारस देशों के प्रचलित बहुत से मिथकों का प्रयोग किया गया है । इसी प्रकार एशिया महाद्वीप के सभी प्रमुख देशों की आदिम कथायें भी यहाँ प्राप्त होती हैं । योरोपीय साहित्य में तीसरे प्रकारका मिथक ईसाई धर्मसे सम्बद्ध है । केनतथा यहूदी जाति की कथाओं को इसी के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है । इस प्रकार इनमिथकों का प्रयत्न सम्बन्ध बाइबिल से है । योरोप के मध्य युग में भी अनेक मिथकों का सृजन हुआ, जिसके अन्तर्गत होली गेल तथा उसकी खोज से सम्बन्धित कथाओं को भी सम्मिलित किया जा सकता है। ट्रिस्टन और आइजोल्ट अथवा डीयरडे के प्रसिद्ध प्रेम कथाओं में साहस, प्रेम और विषाद का जो वर्णन प्राप्त होता है, वह मध्ययुगीन मिथक के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है । इसके अतिरिक्त फिनलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, आइसलैण्ड इत्यादि उत्तरीय प्रदेशों में प्रकृति की जो कठोर और आतंक प्रकट करनेवाली कथायें उपलब्ध हैं वे चौथे वर्ग के अन्तर्गत समाहित की जा सकती है । डा० द्विवेदी

ने विदेशी मिथक को उपर्युक्त चारभागों में विभाजित करते हुये निम्नकर्ष बनाये है -﴾1﴿ अन्य महाद्वीपों के मिथक ﴾2﴿ कर्टाइल मिथक﴾3﴿ कैल्टिक मिथक एवं ﴾4﴿ नार्स मिथक । लेकिन आधुनिक हिन्दी साहित्य में, जिन विदेशी मिथकों का प्रयोग हुआ है, उनमें सिसिफस और प्रमथ्यु के मिथक महत्वपूर्ण हैं।[37]

﴾2﴿ भारतीय मिथक - भारतीय साहित्य में मिथकों का समृद्ध भण्डार है । वेदों में विभिन्न प्राकृतिक उपादानों, सृजन एवं विनाश में समर्थ अनेक आदि शक्तियों की कल्पना की गई है । इसके अतिरिक्त रात्रि, संध्या एवं उषा का भी सुन्दर वर्णन किया गया है । पुराणों में भी अनेक मिथकों की सर्जना हुई है । भारतीय पुराणों में वर्णित देव-दानव युद्ध, समुद्र-मंथन, उर्वशी, -मेनका आदि से सम्बन्धित जो उपाख्यान मिलते है उन्हें मिथक के अन्तर्गत ही समाहित किया जा सकता है । उपनिषदों एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में भी कुछ मिथक प्राप्त होते हैं जिन्हें आध्यात्मिक मिथक की संज्ञा दी जा सकती है । इसके अतिरिक्त बहुत से मिथक लोकाख्यान पर भी आधारित हैं । इस प्रकार भारतीय मिथक को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है -﴾1﴿ वैदिक एवं आध्यात्मिक मिथक । ﴾2﴿ पौराणिक मिथक ﴾3﴿ लोक मिथक एवं ﴾4﴿ ऐतिहासिक मिथक।[38]

37- नयी कविता की लम्बी कवितायें, डा0 रामसुधार सिंह, पृष्ठ 165,

38- नई कविता की लम्बी कवितायें, डा0 रामसुधार सिंह, पृष्ठ 165-66,

3.1 मानवीकरण :-

प्रकृति पर मानव चेतना का आरोप प्रकृति का मानवीकरण कहलाता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य की धारा छायावाद की प्रमुख विशेषताओं में से एक विशेषता यह भी रही है कि उसने प्रकृति का चित्रण मानव-रूप में किया है। इस रूप में पर्वत, सरिता, वन, रात्रि, उषा, संध्या, आदि प्राकृतिक उपादान मानव के समान सप्राण एवं स्पन्दनशील जान पड़ते हैं। वृक्ष प्रेमी और लता प्रेयसी के रूप में एक दूसरे के बाहु-पाश में आबद्ध प्रतीत होते हैं। सरिता नायिका रूप में अपने प्रियतम समुद्र से मिलने के लिये उत्सुक दिखाई पड़ती है, निशा-सुन्दरी चन्द्रमा के रूप में अवस्थित अपने प्रिय से मिलने के लिये मनोरम वेश-भूषा से स्वयं को सुसज्जित जान पड़ती है[39]। कुछ मनोरम एवं अत्याकर्षक मानवीकरण के उदाहरण अवलोकनीय हैं :-

संध्या की उस मलिन तेज पर

सोई थी विषाद के संग।

सिसक-सिसक कर सुला रही हूँ

अपने मन की मृदुल उमंग[40]॥

इसी प्रकार दिनकर ने कुमारी उषा का मनभावना जयमालयुक्त शृंगारिक चित्र उतारा है[41]।

39- दिनकर काव्य कला और दर्शन, डा0 प्रतिभा जैन, पृष्ठ 161,

40- रेणुका, रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ 32,

41- नत नयन कर में कुसुम जयमाल ले,
भाल में कौमार्य की बिन्दी दिये।
क्षितिज पर आकर खड़ी होती उषा
नित्य किस सौभाग्यशाली के लिये॥
- रेणुका- दिनकर, पृष्ठ 37,

निराला[42] प्रसाद,[43] पंत[44] और महादेवी वर्मा[45] द्वारा चित्रित मानवीयकरण की अनेक अभिनव एवं प्रेरक छवियाँ इस सन्दर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

---

42. "विजन वन वल्लरी पर । सोती थी सुहागभरी । स्नेह स्वप्न मग्न । अमल कोमलतनु तरुणी । जुही की कली । दृगबन्द किये । शिथिल पत्रांक में। वासन्ती निशा थी । विरह-विधुर प्रिया संग छोड़ । किसी दूर देश में था पवन । जिसे कहते हैं मलयानिल ।

आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात । आई याद चाँदनी की धुली हुईआधी रात । आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात । फिर क्या पवन । उपवन सरद ऋतु गहन गिरि कानन । कुंजलता-पुंजों को पार कर । पहुँचा जहाँ उसने की केलि । कली खिली साथ ।

सोती थी, जाने कहो कैसे प्रिय आगमन वह ? नायक ने चूमें कपोल । डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल । इस पर भी जागी नहीं । चूक क्षमा मांगी नहीं । निद्रालस बंकिम-विशाल नेत्र मूँदे रही । किम्वा मतवाली थी । यौवन की मदिरा पिये, कौन कहे ?

निर्दय उस नायक ने । निपट निठुराई की

कि झोंकों की झड़ियों से । सुन्दर सुकुमार देहसारी झकझोर डाली ।

मसल दिये गोरे कपोल गोल

चौंक पड़ी युवती,

चकित चितवन निज चारों ओर फेर, हेर प्यारे को सेज पास,
नम्र मुख हँसी, खिली खेल रंग प्यारे संग ।"

कविश्री "जुही की कली" स्व0 निराला सम्पा0 सियारामशरण गुप्त, सा0स0 चिरगांव पृष्ठ 8, 9

43-"उषा सुनहले तीर बरसती। जय लक्ष्मी-सी उदित हुई ।
उधर पराजित काल रात्रि भी । जल में अन्तर्निहित हुई ।
वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का । आज लगा हँसने फिर से ।
वर्षा बीती हुआ सृष्टि में । शरद विकास नये सिर से ।
नव कोमल आलोक बिखरता । हिम-संसृति पर भर अनुराग ।
सित सरोज पर क्रीड़ा करता । जैसे मधुमय पिंग पराग ।
धीरे-धीरे हिम आच्छादन । हटने लगा धरातल से ।
जगीं वनस्पतियाँ अलसाई । मुखधोती शीतल जल से ।
नेत्र निमीलन करतीमानो । प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने ।
जलधि लहरियों की अंगड़ाई । बार-बार जाती सोने।
सिन्धु सेज पर धरा वधू अब । तनिक संकुचित बैठी-सी ।
प्रलय-निशा की हलचल-स्मृति में । मान किये-सी ऐंठी-सी ।"

-कामायनी, आशा सर्ग, जयशंकर प्रसाद,

44- शान्त स्निग्ध ज्योत्सना उज्जवल, अपलकअनन्त नीरव भूतल ।

सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल

लेटी है शान्त क्लान्त निश्चल ।

तापस बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल

लहरे उर पर कोमल कुन्तल ।

गोरेअंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर

चंचल अंचल-सा नीलाम्बर ।

साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर

सिमटा है वर्तुल मृदुल लहर ।

विजन-वीथि में मिलतीं परियाँ, इन्द्र धनुष अंचल फहराये

धूप-छाँह रंग सारी पहने स्वर्ण गंध कुन्तल लहराये ।।

छिपा रहता गिरि पंजर से मांसल कलि-कुसुमों का मार्दव ।

फूल नाल-सी उड़ तितलावलि, रंग पंख बरसाती कलरव ।।

देवदारु के हरित शिखर उठ, झुकी शिलाता से ऊपर ।

तारों से हँस बातें करते, नभ का नील रहस्य निरखकर ।।

भू की परिक्रमा कर ऋतुयें, वहाँ वास करतीं प्रति वत्सर ।

वह कुसुमित शृंगार कक्ष था, गंध वर्ण ध्वनि ग्रथित मनोहर ।।

- रश्मिबन्ध, सुमित्रानन्दन पन्त, प्रथम सं० 1964, पृष्ठ 67,

45- धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी । तारकमय नव वेणी बन्धन ।

शीशफूल कर शशि का नूतन, रश्मि-वलय सित घन अवगुण्ठन । मुक्ताहल अभिराम

बिछा दे चितवन से अपनी पुलकित आ वसन्त-रजनी ।

मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि। अलिगुंजित पद्मों की किंकिणि । भरपद गति में अलस

तरंगिणि । तरल रजत की धार बहा दे । मृदु स्मित से सजनी । विहँसती आ

वसंत रजनी।

मलयानिल का चल दुकूल अलि। घिर छाया-सी श्यामल, विश्व को ।

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि । कर में हो स्मृतियों की अंजलि ।

आ अभिसार बनी । सकुचती आ वसन्त रजनी ।

सिहर-सिहर उठता सरिता उर । खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा भर ।

मचल-मचल आते पल फिर-फिर । सुन प्रिय की पदचाप हो गई ।

पुलिकित यह अवनी । सिहरती आ वसन्त रजनी ।

-परिक्रमा, महादेवी वर्मा, सा०म०प्रा०लि०, इलाहाबाद प्रथम संस्करण पृष्ठ 83

यही नहीं वैदिक साहित्य में इस प्रवृत्ति को सम्मान देखा गया [46]। लौकिक साहित्य में इसके अनेक चित्र उपलब्ध हैं [47]। आधुनिक युगीन साहित्य में भी इसकी किसी प्रकार कमी नहीं रही [48]। लोक साहित्य के अन्तर्गत अनेक लोकगीतों में मानवीकरण की सहज प्रवृत्ति को अपनाया गया है [49]।

प्रारंभिक काल में मनुष्य विश्व की प्रत्येक वस्तु को अपने जैसा ही सचेतन मानता था। उस काल में उसकी भाषा में जो शब्द निर्मित हुये वे हर वस्तु को जीवित वास्तविकता के रूप में प्रस्तुत करते थे। काक्स के अनुसार उस समय प्रत्येक शब्द सवाक् चित्र था। मनुष्य के रूप में सृष्टि के विविध नाम रूपों की इस अवगति ने प्रथम मिथों को जन्म दिया। कभी "एण्डीमियन सो रहा है" में एण्डीमियन डूबते हुये सूर्य का वाचक था, और इस उक्ति का अर्थ केवल यही था कि सूर्य डूब गया है। किन्तु एण्डीमियन शब्द के अभिप्राय के अस्पष्ट होते ही इस नाम के व्यक्ति की कल्पना अनिवार्य हो गई होगी। यदि प्राचीन भाषा के शब्दों का सावधानी से विश्लेषण किया जाये तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि शब्द पहले अपने मूल या व्यौत्पत्तिक अर्थ में प्रयुक्त होते थे। पहले जब यह कहा जाता था कि "सूर्य ऊषा को प्यार करता है तो वह आदिम मानस, मानस द्वारा सूर्य के उगने के साक्षात्कार को अभिव्यक्ति मात्र था। प्राचीन भारोपीय भाषा और भाषा मात्र में एक वस्तु के लिये अनेक शब्द प्रचलित थे, वे शब्द उस वस्तु के विविध गुणों के द्योतक थे। पृथ्वी, उर्वी, (विस्तृत) भी थी। मही (बड़ी) थी और धरा (धारण करने वाली) भी। सूर्य ही सविता था, मित्र भी और पूषा भी।

46- ऋग्वेद,

47- कुमार संभव,

48- अज्ञेय

49- बुन्देली काव्य

इसी प्रकार एक वस्तु को द्योतित करने वाला शब्द दूसरी वस्तु को भी द्योतित करता था क्योंकि एक वस्तु में पाया जाने वाला गुण दूसरी वस्तु में भी मिल सकता है । यही कारण है कि वैदिक भाषा में उर्वी का नदी भी हो जाता है और मही का प्रयोग गौ और वाणी के लिये भी होता है । शब्दों द्वारा व्यक्त ये द्विविधि सम्बन्ध उनके धात्वर्थ के विस्मृत हो जाने पर भी दैनन्दिन व्यवहार में बने रह गये और इनका युक्तीकरणआवश्यक हो गया । एकार्थक शब्दों के अर्थ-विच्छेद के बाद उनके पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या रूप में यह कहा जाने लगा कि वे वस्तुतः उनके द्वारा मानवीकृत वस्तुयें-एक दूसरे के पिता-पुत्र, भाई, बहन ~~इत्यादि~~ इत्यादि हैं । अनेकार्थक शब्दों की भी नई व्याख्या की जाने लगी । सूर्य के करों (किरणों) से यह कथा विकसित हुई कि सूर्य के हाथ हैं और ऋग्वेद में यह कहा गया "जब सूर्य का एक हाथ खो गया तो सोने का दूसरा हाथ जोड़ दिया गया ।"[50]

इस प्रकार विश्लेषण करने पर इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि धात्वर्थ से विभिन्न शब्दों द्वारा अर्जित नये अर्थों की संगति की व्याख्या एक अनिवार्यता बन जाती है । यही वह प्रक्रिया है जो पुरूरवा.. को ~~सूर्य~~ ~~अप्सरा~~ राजा बना देती है और उर्वशी को अप्सरा[51] ।

50- ऋग्वेद, 1-22-5,

51- "धात्वर्थकी दृष्टि से पुरूरवा (बहुत शोर करने वाला) अर्थात सूर्य है । "रू" धातु का प्रयोग रंजित करने के अर्थ में भी होता है और यह अर्थ "रवि, रूधिर आदि शब्दों में विद्यमान है । उर्वशी उषा देती है । पुरूरवा-उर्वशी सम्बाद में उर्वशी का यह रूप व्यक्त या इंगित हो जाता है मै पहली उषा की तरह चली गई हूं, मै वायु की तरह दुर्ग्राह्य हूँ ।"
-लोक साहित्य और संस्कृति, डा० दिनेश्वर प्रसाद, पृष्ठ 13 से उद्धृत ।

मिथ का यह भाषिक-वस्तुतः व्युत्पत्तिवादी-संप्रदाय बहुत लोकप्रिय हुआ । तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिकों ने इसकी अध्ययन विधि का उपयोग कर प्राचीन कथाओं के मूल स्वरूप को पहचान का दावा किया । उस युग के लोक साहित्य के विशेषज्ञों के एक समुदाय में भी इसका समर्थन किया । सरजार्ज काक्स नेमैक्समूलर के व्युत्पत्तिवाद को स्वीकार करने के बावजूद यह नहीं माना कि मिथ भाषा की विकृति है । उसमें इसको स्मृतिभ्रंश (फेल्योर ऑफ मेमरी) या विस्मरण कहना अधिक उपयुक्त माना । इस विस्मरण के लिये किसी प्रकार का पछतावा बेकार है, क्योंकि इसने असंख्य नये आख्यानों और महान महाकाव्यों को जन्म दिया है (1882:23) । जैसे कभी सप्तऋषि के नाम से ज्ञात सात तारे सप्तऋक्ष कहे जाते थे । ऋक्ष का धात्वर्थ दीप्तिवन्त रहा होगा- ऐसा ग्रीक "अफकतोरा" और "उर्सा" से इस शब्द की तुलना करने पर कहा जा सकता है । इस धातु का सम्बन्ध भालू से भी है । इसलिये ये सात दीप्तिवन्त तारे योरोपीय परम्पराओं में सात भालुओं अर्थात (सेविन बीयर्स) के नाम से प्रसिद्ध हो गये और भारतीय कथाओं में सात ऋक्ष सात "ऋषि" बन गये । बाद में एक शब्द के परिवर्तन से न जाने सप्तऋषि सम्बन्धी कितनी कथाओं को जन्म दिया ।

इस प्रकार यह सिद्ध किया जा सकता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में जब मनुष्य प्रकृति के सम्पर्क में आया तब उसने प्रकृति के समग्र उपादानों को अपने समान ही चेतन समझकर उसके चलने, फिरने और बोलने की कल्पना कर ली । साथ ही साथ उसमें कायिक चेष्टाओं की भी कल्पना भी कर डाली । प्रकृति केअचेतन उपकरणअब उसे सचेतन प्रतीत लगने लगें । इस प्रकार मानवीकरणकी अवधारणा का प्रस्फुरण हुआ ।

3.2 स्पष्टीकरण :-

बिम्ब, प्रतीक, उपमेय, उपमान, स्वप्न और मिथक क्लिष्ट शब्दावली में नहीं समझने में दु:साध्य हैं । कबीर की उलटबासियों के अर्थ साधारणतया तुरन्त समझ में नहीं आ सकतें, जब तक कि प्रयोक्ता के मूल शब्दार्थ को ग्रहण न कर लिया जायें । इसी प्रकार सूरदास के दृष्ट कूटात्मक पद भी सर्वसाधारण की समझ से परे हैं । उनका एक विशिष्ट शब्द एवं अर्थ-भण्डार का एक निश्चित संकेत है । यदि वह पकड़ में आ जाय तो दृष्टकूट अत्यन्त सहज, सरल और बुद्धिगम्य होने के साथ साथ अर्थ की प्रतीति होने पर आनन्दानुभूति का एक सरल और सशक्त साधन बन जाता है । इसी व्याख्यात्मक भाव को स्पष्टीकरण की संज्ञा से अभिहित किया जाता है ।

लोक साहित्य के अन्तर्गत आने वाली समूची सामग्री चाहे वह लोक गीत हो, चाहे लोककथा हो, चाहे लोक कहावतें अथवा मुहावरे हों और चाहे लोक पहेलियां हों, इन सबमें प्राचीन कथाओं के अवशेष, आदिम विश्वास, धारणायें, सामाजिक रीतियां और ऐतिहासिक गाथाओं के साथ-साथ भौगोलिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक आस्थाओं और विश्वासों का बाहुल्य रहता है। कभी-कभी ऐसे ऐसे शब्द इन सबमें प्रयुक्त हो उठते हैं कि उनका अर्थ सर्व साधारण के परे होता है, किन्तु सूक्ष्म विवेचन के उपरान्त उनमें कहीं न कहीं से वे सूत्र उपलब्ध हो जाते हैं जिनसे उनकी प्रहेलिका जैसी दुरूहता सहज रूप में ही सरल हो जाती है । इसके लिये स्पष्टीकरण का होना परमावश्यक है ।

यदि मिथ की व्याख्या करने वाले सम्प्रदायों पर सम्मिलित रूप से विचार किया जाय तो उन्हें दो व्यापक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम है समाज वैज्ञानिक और द्वितीय है मनोवैज्ञानिक । समाज-वैज्ञानिक इसे

सामाजिक आवश्यकताओं से उत्पन्न मानते हैं और मनोवैज्ञानिक मानव-मन की आन्तरिक आवश्यकताओं से । उदाहरण के लिये लैंगर यह तो मानती हैं कि इसका विकास मानवीय आवश्यकताओं के अनुसार होता है लेकिन उनकी दृष्टि में यह आवश्यकता मनोवैज्ञानिक है । वे अनुष्ठान और कर्मकाण्ड का, मानव वैज्ञानिकों की तरह सामाजिक एकता या किसी अन्य व्यावहारिक उद्देश्य से प्रेरित नहीं मानती । "यह सामाजिक एकता इसके परिणामों में से एक हो सकती है ... लेकिन न तो मिथ और न अनुष्ठान का ही मूलतः इस उद्देश्य से विकास हुआ है[52]।

इसी तरह अर्नेस्ट जोंस यह कहता है कि लोक साहित्य (जिसमें मिथ सम्मिलित है) कल्पना की कृति है और "बाहरी प्रभाव कल्पना के कार्य द्वारा गृहीत रूप को प्रभावित करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकते[53]। सामाजिक प्रेरणायें मनोवेगों की तुलना में गौण महत्व रखती हैं और मिथ का जन्म अवचेतन अभिरुचियों और मनोवेगों से होता है । लेकिन समाज वैज्ञानिकों की मूल प्रस्तावना ठीक इसके विपरीत है - मिथ की प्रेरणा सामाजिक है और सामाजिक जीवन में इसका उपयोग ही इसकी परीक्षा की वास्तविक कसौटी है । .... निःसन्देह मिथ दो प्रकार की सहवर्ती इकाइयों की निर्मित है । पहले प्रकार की इकाइयां ऐतिहासिक या कालक्रमिक है, और दूसरे प्रकार की संकालिक । पहली अप्रतिवर्ती है तो दूसरी प्रतिवर्ती । ओडीपस कथामाला में लेवी स्ट्रास इसे रक्त सम्बन्धों का अवमूल्यन मानता है । इन घटनाओं को ऐतिहासिकक्रम या क्षैतिज रूप में न देखकर, एक सम्बन्ध के रूप में देखा जा सकता है । इस रूप में देखने पर इन्हें एक "स्थूल संघटक इकाई" कहा जायेगा जो समान अभिप्राय वाले सम्बन्धों

52- फिलासफी इन ए न्यू की, एस0के0लैंगर, 27.29

53- एसेज इन एप्लाइड साइको- एनालिसिस, अर्नेस्ट जोन्स, पृष्ठ 9,

का एक गुच्छ है । प्रत्येक मिथ में इस प्रकार के अनेक गुच्छ होते हैं जिनकी पहचान विश्लेषण और अर्थान्विति के आधार पर इसके द्वारा प्रेषित सन्देश को समझा जा सकता है । यह भी उल्लेख्य है कि किसी गुच्छ का आधार सम्बन्ध कई आकार में व्यक्त हो सकता है अर्थात् उसमें रूपान्तरण की क्षमता विद्यमान है । इसका अर्थ यह है कि एक विशिष्ट अभिप्राय रखने वाली घटनाओं या गुणों की आवृत्ति द्वारा एक सम्बन्ध या गुच्छ की रचना होती है । आवृत्तियाँ मिथ के गठन की विशेषता है, क्योंकि इनका कार्य मिथ के गठन को प्रत्यभिज्ञेय बनाना है[54] । वस्तुतः "मिथ का सम्बन्ध

द्वन्द्वात्मक प्रकृति का है । उदाहरणार्थ आसदीवाल की कहानी के चार स्तर हैं - भौगोलिक, प्राविधिक, आर्थिक, सामाजिक और ब्राह्माण्डिक । पहले दो स्तर यथार्थ के सही अंकन हैं । लेकिन चौथे का यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है और तीसरे में यथार्थ और कल्पना का मिश्रण है । प्रत्येक स्तर की प्रकृति स्वतन्त्र है । इसके अपने संकेत हैं और उसे दूसरे स्तर के सन्दर्भ के अभाव में भी समझा जा सकता है । लेकिन ये स्तर असम्बद्ध नहीं हैं । और ये अपनी सीमा में उसी सन्देश का संप्रेषण करते हैं जो पूरी कहानी का लक्ष्य है । इस आधार पर मिथ की संरचना मात्र को दो पक्षों में विभाजित किया जा सकता है - अनुक्रम और योजना । अनुक्रम मिथ का व्यक्त पक्ष-कालक्रम में घटनाओं के परस्परानुगमन का पक्ष है । यह अनुक्रम उसके हर स्तर पर विद्यमान है और इसके सभी स्तर एक-दूसरे पर अध्यारोपित है । किन्तु तर्पों की अवस्थिति समक्रमिक है, और तर्पों के अनुक्रम योजना के अनुरूप सज्जित । ये स्तर "अनेक कण्ठों के लिये रचित गीत" के समान हैं जो गीत दो

54- लोक साहित्य और संस्कृति, डा0 दिनेश्वर प्रसाद की पुस्तक से लेवीस्त्रास का उद्धरण अवतरित, पृष्ठ 36,

आयामों के प्रतिमन्धों द्वारा नियन्त्रित हैं- पहले स्वयं अपनी लय रेखा द्वारा जो कि क्षैतिज है और दूसरे, सुर संगतिज विन्यास द्वारा जो कि लम्बाकार है[55]।

वस्तुतः मनुष्य के अस्तित्व से सम्बन्धित अनेक ऐसे प्रश्न और जिज्ञासायें हैं जिनका उत्तर देना विज्ञान के लिये भी संभव हो सका है। सृष्टि का स्वरूप जीवन और मृत्यु आदि विषय पहले जितने रहस्यमय थे, अब भी उतने ही या उससे कहीं अधिक रहस्यमय हैं। ज्ञान के विस्तार के अनुपात में ही अज्ञात और गूढ़ विषयों की तालिका बढ़ती जा रही है। सापेक्ष रूप में यह स्थिति पूर्वकाल से अब तक अपरिवर्तित है। मानवीय बोध का यही क्षेत्र-हम उसे चाहे जो संज्ञा दें, धर्म और मिथ को जन्म देता है। इसका अर्थ केवल यह नहीं कि मिथ विज्ञान की सीमान्त है, वरन् इससे कहीं अधिक यह कि यह वास्तविकता के बोध का वह प्रकार है जिसका कोई तुलनीय वैज्ञानिक विवरण सम्भव नहीं। यह प्रकार आवेगात्मक और सहानुभूतिक है जो वस्तु को स्वयं उसकी अपेक्षा में न देखकर द्रष्टा के अहं की अपेक्षा में देखता है। इसके मूल में परिवेश से जुड़ने और उसे आत्मसात् कर अपनी चेतना का अंग बनाने की प्रेरणा काम करती है।

मानवीकरण और प्रकृतिकरण इसी प्रेरणा के दो रूप हैं। अन्यथा कोई कारण नहीं कि मनुष्य क्यों अपने को प्रकृति पर और प्रकृति को अपने पर आरोपित करता या एक को दूसरे में रूपान्तरित करता है। यह प्रवृत्ति सुदूर अतीत से ही इतनी प्रबल रही है कि उसकी अनेक कहानियां, इतिहास और रूपक दोनों हो गयी हैं, और व्याख्या भेद से उन्हें इस या उस वर्ग में रख दिया जाता रहा है। उदाहरणार्थ यदि राम-रावण युद्ध को प्राकृतिक संकेतों के समावेश (प्रकृतिकरण)

55- स्ट्रक्चरल स्टडी ऑव मिथ एण्ड टोटमिज्म, सम्पादक एडमण्ड लीच 1967: लन्दन

के बावजूद इतिहास माना जायें तो यह आख्यान है और यदि इन्द्र-वृत्र युद्ध का मानवीकरण तो मिथ । अर्थात् वृत्र(मेघ) उषा का हरण करता है और इन्द्र(विद्युत) अग्नि की सहायता से वृत्र का वध करता है । इसी तरह रावण सीता का हरण करता है और रामलक्ष्मण की सहायतासे उसका वध कर सीता को मुक्त करते है । इस दृष्टि से विचार करने पर राम-रावण युद्ध, इन्द्र-वृत्र युद्ध या मेघ-विद्युत युद्ध का मानवीकरण हो जाता है[56]।

मिथ की मनोविज्ञानिक प्रक्रिया के विश्लेषण को एक सीमा तक ही सामाजिक भूमिका से अलग रक्खा जा सकता है । यह सही है कि यह प्रतीकीकरण की प्रक्रिया का व्यक्त रूप है और यह प्रतीकीकरण, इसके संदर्भ में मुख्यत: अचेतन है, किन्तु यह सामाजिक वास्तविकता द्वारा प्रेरित और निर्धारित है । मिथ सामाजिक अभिप्रायों के सम्प्रेषण का एक महत्त्वपूर्ण साधन है । उत्सव, अनुष्ठान, विश्वास आदि के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है औरयह मुख्यत: अनुष्ठान के साथ एक सम्मिलित इकाई की रचना करता है । इस बात के प्रमाण प्राचीन और आदिम जातियों के जीवन-सन्दर्भ में सुलभ हैं । कभी अनुष्ठानिक कृत्य मिथ के नाट्य रूप में आयोजित होते हैं और कभी अनुष्ठान में मिथ का पाठ केन्द्रीय कृत्य हो जाता है । सच तो यह है कि जिन अभिप्रायों को अनुष्ठान कृत्यों के माध्यम से प्रेषित करते है, उन्हें ही मिथ शब्दों के माध्यम से व्यक्त करते है[57]।

56- लोक साहित्य और संस्कृति, डा0 दिनेश्वर प्रसाद, पृष्ठ 41.42 ।

57- लोक साहित्य और संस्कृति, डा0 दिनेश्वर प्रसाद, पृष्ठ 42,43.

सृष्टि में सर्वत्र अनोखी-अनोखी विचित्रतायें हैं । जब व्यक्ति सामान्य रूप से इन्हें भलीभाँति नहीं समझ पाता तब वह उन्हें दैवी अथवा अलौकिक मानने लगता है। यही कालान्तर में विशिष्टत्व प्राप्त कर लेती है, और वातावरण एवं परिस्थिति के अनुसार मानवी रूप धारण करके समाज के समक्ष प्रत्यक्ष अथवा जीवन्त हो उठती हैं । किन्तु जब इनका सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है तब ये मिथक के रूप में अपने विशिष्ट भावों का प्रतिपादन करने लगती हैं । इस प्रकार यों कहा जा सकता है कि मिथक एक बीज के समान है, जो पूर्व में अस्पष्ट और अव्यक्त रहता है, किन्तु ज्यों ही भाषा का प्रकाश उसे मिलता है, तो वह अलौकित होकर प्रत्यक्ष किंवा प्रकट हो जाता है । और पुनः फल के रूप में अदृश्य हो जाता है । जब फल फूटता है तब बीज फिर प्रत्यक्ष हो उठता है । जैसे बीज में पूर्व से ही एक विशाल वट अदृश्य रहता है और समय परिस्थिति एवं उपयुक्त वातावरण मिलने पर वह सहसा प्रत्यक्ष हो उठता है, उसी प्रकार मिथक भी अत्यन्त सूक्ष्म होते हुये एक युग घटना अथवा व्यक्ति विशेष के विशिष्ट व्यापारों की ओर इंगित करते हैं ।

3.3 प्रतिनिधिकरण :-

किन्हीं विशिष्ट वृतियों के गुणों के समुच्चय रूप को उसका प्रतिनिधि मान लिया जाता है । जैसे सतयुग में महाराज हरिश्चन्द्र सत्य के प्रतिनिधि माने जाते थे । कालान्तर में वह सत्य के मिथक के रूप में बदल गये । इसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर धर्म के प्रतिनिधि सिद्ध होकर धर्म के मिथक बन गये । इसी प्रकार "राम" कृष्ण, बुद्ध, महावीर अपने-अपने युग के ऐसे महापुरुष रहे हैं जिनके एक नाम मात्र में पूरा इतिहास-काल समाविष्ट हो जाता है । ये सब विशिष्ट वृति के प्रतिनिधि रहे और यही कारण है कि कुछ ही समय पश्चात वे "मिथक" में परिवर्तित हो गयें । वीर हृदय सुभाष, पं० नेहरू, महात्मा गांधी, जयप्रकाश नरायण, राममनोहर लोहिया भी इसी प्रकार पहले प्रतिनिधि बने पुनश्च प्रसिद्ध एवं अनुकरणीय नेता । ये ही भविष्य में जाकर अपने नाम मात्र से "मिथक" का अर्थ देने में सक्षम हो जायेंगे । भक्त नारद, जयचन्द्र एवं माहिल ने भी अपनी-अपनी विशिष्ट वृतियों के कारण "प्रतिनिधित्व किया । प्रतिनिधिकरण का यही क्रमिक विकास है ।

कतचिनों में प्रधान हैं कोय्मशी जो एक ओर अलौकिक, भयास्पद और पूज्य हैं तो दूसरी ओर सार्वजनिक मनोरंजन करने वाले अश्लील विदूषक । पूज्य पात्रों में अश्लीलता और पवित्रता का यह द्वैध अन्य धर्मों में भी प्राप्य है । कोय्मशी की संख्या दस है । वे विचित्र आकृति वाले हैं क्योंकि वे भाई और बहन के अवैध संयोग से उत्पन्न हुये हैं । कहा जाता है कि पाउतिया के वर्षायाजक कवि मोसा ने अपने छोटे पुत्र सीवूतुत्सीबा को विश्व के केन्द्र का पता लगाने के लिये भेजा । सीवा को अपने अभियान में अपनी बहन का सहयोग और साहचर्य प्राप्त हुआ । उसने अपनी बहन के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित किया, जिससे विचित्रआकृति वाले दस पुत्र पैदा हुये । अविहित रीति से उत्पन्न होने के कारण कोय्मशी नपुंसक

माने गये हैं ।जैसा कि कविंग §जूनी क्रियेशन मिथ्स: 400§ ने कहा है,वे बीज-रहित हैं । क्योंकि "विशुद्ध कामुकता का फल व्यर्थ हो जाता है,जैसे बिना ऋतु के स्वयं वपित मक्का परिपक्व नहीं होती"। लेकिन यह कहा जा चुका है कि उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी उभय प्रवणता । येनपुंसक होते हुये भी प्रेम और उर्वरता के देवता हैं । उनकी घुण्डी में बीज भरे रहते हैं और वे अपने अभिनय में प्राय: मौन व्यापारों का अनुकरण करते रहते हैं । उनके नगाड़े में लाहाकोमा नामक तितलियां लगी रहती हैं, जो किसी को भी वश में कर सकती हैं ।

उत्सव कोयेमशी द्वारा आरम्भ होता है। वे यह सूचना देते हैं कि ग्रीष्मकाल में अनुपस्थिति के बाद कदाचित §या कोक-को§ चार दिन में गांव लौटेंगे और आठ दिन में शालाको आरम्भ होगा। इस सूचना के बाद प्रधान कोयेमशी को छोड़कर शेष नौ हर प्रकार का अश्लील गीत[58] गाते हैं और भाषण देते हैं ।

आठवें दिन गांव में देवताओं का प्रवेश होता है । वे गांव की सड़क पर खोदे गये छ: स्थानों में प्रार्थना-यष्टि गाड़ कर उस घर में प्रवेश करते हैं जहां रात में उनका सत्कार किया जाता है । आतिथेय उनसे आने का प्रयोजन पूछता है । जिसके उत्तर में वे अपनेआने तक की सभी पूर्ववर्ती घटनाओं का गायन करते हैं और अपने आने का प्रयोजन बताते हैं । अतिथेय उनसे अपने परिवार के सभी सदस्यों के लिये सन्तान की आशीषा मांगता है। रात मेंअतिथेय के घर में नृत्य और अभिनय होते हैं ।

58- हमारे दिवाप्रकाश पिताओं,
हमारी दिवा प्रकाश माताओं,
इतने अधिक दिनों के बाद
आठ दिनों के बाद
नवें दिन तुम लोग
भेड़ों से सम्भोग करोगे ।
– बंजेल,जूनी रिचुअल पोयट्री: 952

नवें दिन कोयेमशी को छोड़कर अन्य सभी देवता विदा हो जाते हैं और उनके याजक या अभिनेता वर्ष भर के दायित्व से मुक्त होकर पुनः सामान्य मनुष्य बन जाते है । कोयेमशी शालाको के अन्तिम दिन निराहार और मौन रहते हैं । रात में कीवा में उनके अभिनय का रूप एकदम बदल जाता है, और उसमें अश्लीलता का लेश भी नहीं दिखाई देता । दैवी विदूषकों ने नृत्यऔर अभिनय कर वातावरण इतना संयत, करुण और मर्म स्पर्शी होता है कि दर्शक भाव-विह्वल हुये बिना नहीं रहते । लोग प्रातःकाल बहुत उपहार देकर, उन्हें पूरे वर्ष के लिये विदा करते हैं ।

विस्तार में जाकर परीक्षा करने पर शालाको में शिथिलता और आवृत्ति पकड़ी जा सकती है । लेकिन इसमें नृत्य और श्रव्य दोनों प्रकार की आह्लादिक और पर्याप्त कलात्मक सामग्री मिलती है । यह एक ओर क्रमसंतान, धनधान्य की समृद्धि का अनुष्ठान है तो दूसरी ओर जीवन और मृत्यु के अन्तर विरोधों का निराकरण भी । यह निकटाभिगमन का निषेध है । और अवदमित भावनाओं के वाह्यकरण द्वारा मानस का विरेचन भी, जो स्वस्थ्य और सन्तुलित सामाजिक जीवन कीअनिवार्यता है। यह विश्लेषण इसके कुछ अभिप्रायों का संकेत भर है। वस्तुतः यह जूनी संस्कृति की आवर्तक चिन्ताओं और जीवन-मूल्यों की वैसी संश्लिष्टअभिव्यक्ति है, जो इसको पूरी जाति का प्रतिनिधित्व प्रदान करती है[59]।

उक्त उदाहरणों से मिथकोंत्पत्ति में प्रतिनिधिकरण की प्रक्रिया अत्यन्त ग्राह्य और सुगम हो जाती है ।

59- लोक साहित्य और संस्कृति, दिनेश्वर प्रसाद, पृष्ठ 52, 53, 54, से उद्धृत ।

रामलीला द्वारा लोग कहीं एक बार अपने पूज्य देव राम जो क्षात्र धर्म एवं मानवता के सच्चे प्रतिनिधि हैं, की मानव-लीला का माधुर्य देखते हैं। जिस समय दूर-दूर के गावों के लोग एक मैदान में आकर इकटठे होते हैं तथा एक ओर जटा-मुकुटधारी विजयी राम-लक्ष्मण की मधुर मूर्ति देखते हैं और दूसरी ओर तीरों से बिंधा रावण का विशाल शरीर (जो राक्षसत्व का प्रतिनिधि था) जलता देखते हैं, उस समय वे धर्म के सौन्दर्य पर लुब्ध हो और धर्म की घोरता पर क्षुब्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार जब कृष्ण-लीला में जीवन की प्रफुल्लता के साथ धर्म-रक्षा के अलौकिक बल का विकास देखते हैं तब हमारी जीवनधारणा की अभिलाषा दूनी-चौगुनी हो जाती है। हिन्दू जाति इन्हीं की शक्ति केवल से इनकी प्रतिकूल अवस्थाओं के बीच अपना स्वतंत्र अस्तित्व बचाती चलती चली आई है, इन्हीं की अद्भुत आकर्षण शक्ति से वह इधर-उधर टलने नहीं पाई है। राम और कृष्णको बिना आंसू बहाये छोड़ना हिन्दू जाति के लिये सहज नहीं था, क्योंकि ये अवतार अलग टीले पर खड़े होकर उपदेश देने वाले नहीं थे, बल्कि मानव जीवन में पूर्णरूप से सम्मिलित होकर उनके एक-एक अंग की मनोहरता दिखाने वाले थे। मंगल के अवसरों पर उनके गीत गाये जाते हैं। विमाताओं की कुटिलता की, बड़ों के आदर की, दुष्टों के दमन की, जीवन के कष्ट की, घर की, वन की सम्पद की, विपद की जहां चर्चा होती है, वहां इसका स्मरण किया जाता है।

संसार से तटस्थ रहकर शान्ति-सुख-पूर्वक लोक-व्यवहार सम्बन्धी उपदेश देने वालों का उतना अधिक महत्त्व हिन्दू धर्म में नहीं है जितना संसार

के भीतर घुसकर उसके व्यवहारों के बीच सात्त्विक विभूति की ज्योति जगाने वालों का है। हमारे यहां उपदेशक ईश्वर के अवतार नहीं माने गये हैं। अपने जीवन द्वारा कर्म-सौन्दर्य संघटित करने वाले ही अवतार कहे गये हैं। कर्म-सौन्दर्य योग से उनके स्वरूप में इतना माधुर्य आ पाया है कि हमारा हृदय आपसे आप उनकी ओर खिंचा पड़ता है। जो कुछ हम करते है- खेलना, कूदना, हंसना, बोलना, क्रोध करना, शोक करना, प्रेम करना, विनोद करना, उन सबमें सौन्दर्य लाते हुये हम जिन्हे देखें, उन्हीं की ओर ढल सकते है। वे हमें दूर से रास्ता दिखाने वाले नहीं है आप रास्ते में चलकर हमें अपने पीछे लगाने क्या खींचने वाले हैं।[60] ऐसे ही नरोत्तम अपने युग के प्रतिनिधि बनकर समूचे लोक में आलोक विकीर्ण करते हैं। यह सर्वोत्तम गुणों का श्रेष्ठ प्रतिनिधिकरण है।

60- चिन्तामणि, प्रथम भाग, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, संस्क0 1977, पृष्ठ 33,

3.4 प्राचीन जन कथायें :-

बुन्देलखण्डी लोक साहित्य अर्थात यहाँ के लोक गीतों, कहावतों, पहेलियों और लोक कथाओं में जहाँ पौराणिक, दार्शनिक, एवं ऐतिहासिक कथाओं की अधिकता है वहाँ साथ ही साथ जन कथाओं का भी अत्यधिक बाहुल्य है । इन जन कथाओं में तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण है, लोक विश्वास एवं आंचलिकता के दर्शन होते हैं । प्रायः इन सभी लोक कथाओं में ऐतिहासिक एवं पौराणिक मिथक दूध में पानी की भाँति ऐसे घुल मिल गये है कि उनको पृथक करना असंभव-सा प्रतीत होता है । विक्रमादित्य की जनकथा यहाँ उदाहरण स्वरूप उल्लेखनीय है-"राजावीर विक्रमादित्य पर-पीड़ा दूर करते है । वे एक ब्राह्मण का साढ़े साती शनि अपने ऊपर ले लेते हैं । हार चोरी चले जाने का अपराध अपने ऊपर लेते हैं । हाथ-पैर कट जाने पर भी तेली का उपकार करते है । उसमें राजा विक्रमाजीत का कुंठित अवस्था में विवाह, अच्छे दिन आने पर पुनः सर्वांगीण सुन्दर बनने का चमत्कार प्रदर्शन का अभिप्राय समाविष्ट है । ऐसी निरीहावस्था में भी राजकुमारी उसे देखने आती है । इस प्रकार के प्रसंग अन्य स्थानों पर भी मिलते है । कथा सरित्सागर में शशिम की स्त्री को कोढ़ी से प्रेम हुआ । इन कहानियों में प्रेम अयोग्य एवं घृणित व्यक्तियों में भी दिखाया गया है । इसी प्रकार एक अन्य कहानी में वीर विक्रमाजीत पतिव्रता मृत ब्राह्मणी को जीवित करने अमृत की खोज में चल देता है । मार्ग में उसे एक डुकरिया (बूढ़ा) और उसकी पुत्रवधू मिलती है । वह बूढ़ा अपने बेटे के वियोग में दुखी है । बेटा वीरसेन राजा के पलंग पर नौकरी करता है । विक्रमाजीत बूढ़ा के बेटे दुरजन की खोज में चल देता है, क्योंकि वह पर-दुख-भंजन का व्रत लिये हुये है । राजा के पास पहुँचकर दुरजन की एवज में नौकरी देता है। राजा

प्रतिदिन आधी रात को एक देवी-मन्दिर में जाकर तेल के औटते कड़ाव में गिरकर भुन जाता था । देवी उसे निकाल कर खाती और फिर हड्डियों को इकट्ठा कर अमृत छिड़क देती, तब राजा पुनः जीवित हो जाता और देवी अपने अक्षय खंजर को हिलाकर सवा मन सोना राजा को दे देती जिसे वह प्रातः काल प्रतिदिन ब्राह्मणों को दान देता था । विक्रमाजीत बड़ा साहसी और दयावान था । उसने राजा वीरसेन के कष्ट को मिटाना चाहा । उसे अपने शरीर के मांस में मसालेदार पदार्थ भरे और राजा के स्थान पर स्वयं कड़ाव में गिरकर भुन गया । देवी ने स्वादिष्ट मांस खाया । उसे जीवित कर बहुत प्रसन्न हुई और वरदान मांगने को कहा । विक्रमाजीत ने अमृत का पात्र और अक्षय झम-झर दोनों ही मांग लिये और राजा को कष्ट से मुक्ति दिलाई । बिछुड़ी हुई वृद्धा का बेटा मिल गया । मृत ब्राह्मणी पर अमृत छिड़क कर जीवित किया[61]।

"बढ़ई का कुंअर" कहानी में बढ़ई का लड़का कुशल कारीगर है । हड्डियों से चावल बनाने की चतुराई दिखाकर एक बढ़ई की बेटी से विवाह कर लिया । उसने चारों पायों पर बनी चार पुतलियों वाला पलंग राजा के हाथ बेचा । पुतलियां नगर के समाचार राजा को देती थीं । तीसरी पुतली ने रात को भ्रमण के समय तोता-मैना की बातचीत द्वारा राजा की प्राण-रक्षा में सहयोग दिया । बढ़ई के कुंअर ने एक काठ का घोड़ा तैयार किया, जिस पर चढ़कर राजकुमार समुन्दर पार एक बगीचे में जा पहुंचा और मालिन के द्वारा राजकुमारी से भेंट करने में सफल हुआ, पर पकड़ा गया । चालाकी से काठ के घोड़े पर राजकुमारी को बैठाकर चला। टापू पर रुका । चोरों ने घोड़ा चुरा लिया । घास के पूलों पर बैठकर समुद्र पार करने लगे, चूहे ने पूले के बन्ध काट डाले । दोनों अलग अलग बह गये । राजकुमारी एक दूसरे राजकुमार के हाथ लगी जिसने उनके साथ विवाह का प्रस्ताव किया ।

61- ऐसी ही कहानी सिंहासन बत्तीसी की बारहवीं कथा में उपलब्ध है । बैताल पच्चीसी की तीसरी कहानी में भी बीरवर की हजार तोला सोना रोज लेने की कथा आई है, जिसमें आत्मबलिदान दिखलाया गया है। जनकथाओं में थोड़ा-बहुत हेर-फेर होना स्वाभाविक है।

राजकुमारी ने बारह वर्ष पक्षियों को चुगाने का व्रत लेने की बात कही और उसके बाद विवाह कर लेने का वचन दिया ।

गंगाराम तोता ने राजकुमार को भड़भूंजा के घर ढूंढ़ लिया । राजकुमार कारीगर बनकर जुलाहे के यहां से काठ का घोड़ा उड़ाकर चला और राजकुमारी को साथ लेकर अपने पिता की राजधानी में आ पहुंचा । बढ़ई की चतुराई पर राजा ने प्रसन्न होकर अपनी बेटी का विवाह उसके साथ कर दिया और खूब दहेज दिया उसने अपना महल तैयार कर अपने माता-पिता को बुला लिया जो उसके राजसी ठाट-बाट को देखकर स्तम्भित रह गये।[62]

पराक्रम और साहस की एक अन्य कहानी (जनकथा) और देखिये । "एक राजकुमार एक सुनार और एक बनिये की लड़की से विवाह करता है । बनिये की लड़की के एक लड़की और दो लड़के पैदा होते हैं । पर, सहेलियां ईर्ष्या वश कंकड़-पत्थर होना बताकर बच्चों को सन्दूक में बन्द करके नदी में बहा देती है । साथ ही मां को काग-बिडारिन बना दिया जाता है । बच्चों को एक बाबा पालता-पोसता है । बड़े होने पर बाबा उनको एक डिबिया, एक रस्सी और एक

62- रूसी कहानी राजकुमार इवान और भूरा भेड़िया की जन-कथा में जार के सबसे छोटे राजकुमार ने सुनहरा सेब की रक्षा करते समय अग्नि-पक्षी को घायल करने का वृत्तान्त है । राजकुमार ने भूरे भेड़िया के सहयोग से असंभव कार्य कर दिखाये । दूसरी कहानी में इवान ने सुनहरी अयाल की घोड़ी को चोरी से घास चरते हुये पकड़ा, जो उसे बहुत दूर भगा ले गई । उसी घोड़ी ने उसके साहसिक कार्यों में सहायता दी । इसी प्रकार सुनहरी सेब की बलोरियन कथा भी मिलती है ।
— बुन्देली लोक कथायें, शिवसहाय चतुर्वेदी, कहानी संख्या 16,

सौंटा देता है । सौतों को लड़कों के जीवित होने का पता लगता है तो वे दूती भेजकर उनको मरवाने के उपाय सोचती हैं । महलों में गुलदस्ता के फूल लाने के लिये दोनो लड़के सौंटे से मारकर और रस्सी से बांधकर दोनो को ले आते हैं और उनसे फूल लगवाते हैं । दूती ने लड़कों के विवाह की बात कराई । वे फूलनदे रानी को लेने चल दिये । एक बाबा ने उन्हे तीन चीजें अगिनि बाड, आंधीबाड़, मेहबाड दिये। अखैवर के पेड़ के नीचे ताल में एरावत हाथी नहाने आया तब उसके कान में से फूलन दे रानी निकली और राजकुमाररानी को लेकर चल दिये । हाथी के पीछा करने पर उन्होने आंधीबाड छोडा, फिर मेहवाड छोडा, फिर अग्निबाण । हाथी गिरता-पड़ता मर गया । राजकुमारो ने यज्ञ रचा, जिसमेंउनकी मां काग-विडारिनी भी बुलाई गई । उसके स्तनों से दूध की धारें निकलकर दोनों लड़कों और लड़की के मुंह पर पड़ी । राजा को सारा रहस्य ज्ञात होने पर उसने उन ईर्ष्यालु रानियों को कोल्हू में डालकर पिरवा दिया । इस कहानी में राजकुमारों को रानियोंकेकुकर्मों का कुफल मिलना बताया है । यही कहानी दूसरे ढंग की "बनखण्डी रानी" के रूप में मिलती है । "शिकार खेलता हुआ राजा डायन को साथ लिवा लाता है और वह वह बनखण्डी रानी कहलाती है । प्रतिदिन राजा की घुड़साल में चुपचाप बछेड़े खा जाती है । एक सेठ के नवजात बालक को वह बिल्ली बनकर उठा लाई और उसके सात टुकड़े करके सातों रानियों के पलंग पर रख दिये । राजा को यह सब दिखाकर सातों रानियों की आंखे निकलवाकर उन्हें अन्धकूप में डलवा दिया । सबकी आखें डायन ने अपनी मां के पास भेज दी । सबसे छोटी रानी के कुंए में ही लड़का हुआ। वह बड़ा हुआ । बनखण्डी रानी को शक हुआ । उसने बच्चे को तीन-धनिदा लेने को उकसाया । महादेव पार्वती ने धनुष-बाण दिया । बनखण्डी रानी सौत के बच्चे को मरवा डालना चाहती थी । अब डायन ने अपनी मां के पास सातों माताओं की आखें लाने को भेजा और साथ में पत्रवाहक को मार डालने के लिये पत्रलिख दिया । दानें ने

ये देख पत्र की इबारत बदल दी, और लिख दिया कि तेरा नाती तेरे पास आ रहा है। डायनबुढ़िया के घर उड़न खटोला से लटकी हुई आग और पानी की तुमरियां कहीरों मेंरखी टंगी हुई सातों माताओं की आंखों की जानकारी प्राप्त कर ली। लडका खटोले पर सवार होकर भाग गया और बाघिन का दूध लाकर सातों मातओं की आंखे चिपका दीं। श्यामकर्ण घोड़े के रक्षक चार दानें भी उसके सेवक बन गये। राजकुमार अपने विवाह में दानों को ले गये जिन्होंने दो पहाड़ियों को बारहकोस दूर सरकाकर बारात की रक्षा की तथा पाताल से केतकी के फूल लाकर दिये। बन-खण्डी रानी ने राजकुमार को मार डालने के लिये राजा को भेजा। दोनों ओर से घोर युद्ध हुआ। राजा हारा। अन्त में राजकुमार ने सारा किस्सा सुनाया। तबसे सब आनन्द से रहने लगें और बनखण्डी रानी धरती में गाड़ दी गई।"

ढोला मारू की कहानी बुन्देलखण्ड में अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसकी पहली कहानी राजा नल के जन्म की है। नरवर के राजा पिरथम की एक सौ एक रानियां थी। परन्तु सन्तान किसी के नहीं थी। एक दिन राजा घोड़े पर सवार हो आखेट को जा रहा था। भंगिन ने राजा को देखकर तीन बार थूका और पीठ फेरकर खड़ी हो गई। राजा के सन्तान का कोई योग नहीं था। एक महात्मा स्वर्ग से चावल लाये और राजा को रानियों के भोजनार्थ दे दिया। फलतः रानी मंझा गर्भवती हो गई। अन्य रानियों ने ईर्ष्यावश एक पण्डित को प्रलोभन देकर उससे यह घोषणा करवाई कि मंझा के जो पुत्र पैदा होगा, वह राक्षस होगा और कुल विनाश होगा। रानी मंझा को निर्वासित कर दिया गया। वधिकों ने हिरण की आंखे निकाल कर रानी फूलनदे को भेंट कर दीं। और रानी मंझा को जंगल में छोड़ दिया। वहीं हीसविरे में राजा नल का जन्म हुआ। देवी-देवताओं ने सब संस्कार किये। लच्छीदेश का वणिक उसे बहन बनाकर अपने घर ले गया।

नल बड़ा होता है । उसके धर्म मामा व्यापार करने निकले । भौमासुर राक्षस की लड़की मोतिनी इन्द्र के साथ सारफासि खेल रही थी । जहाज देखकर वह भागी और एक गोट वहीं छोड़ गई । सेठ के लड़के गोट को लाये और वह राजा को भेंट की । राजा पिरथम ने साथ की गोट लाने को कहा । नल ने बीड़ा उठाया । समुद्र के किनारे बेमाता मिलीं, जिसने नल की जोड़ी मोतिनी से बताई । नल की दुर्गा ने सहायता की और राजा नल मोतिनी से जाकर मिलें । इतने में मोतिनी का पिता भौमासुर आ गया । तब मोतिनी ने नल को मोम की मक्खी बनाकर भींत से चिपका दिया । मोतिनी के पिता से पूछ लिया कि उसके प्राण कहाँ है ? पिता ने बताया कि सात समुद्र पार पात बीछी, डार-डार सांप हैं, उस पर बगुली का पिंजड़ा है, उसी बगुली में मेरे प्राण हैं । नल ने वासुकि नाग का फन्द छुड़ाया । एक घोड़ा लिया । हंसिनी ने नल को पंखों पर बैठाकर पेड़ के पास पहुंचाया । पेड़ को झरपट देने से सांप बिच्छू गिर पड़े । नल ने बगुलिया की गरदन मरोड़ दी और दाना मर गया । नल का मोतिनी से विवाह हो गया ।

लच्छी सेठ के लड़कों ने मोतिनी को देखा तो उनकी नियत बिगड़ी । उन्होंने नल को समुद्र में ढकेल दिया, और मोतिनी को लेकर घर पहुंचे, राजा पिरथम को गोटें और मोतिनी भेंट की । मोतिनी ने छः महीने तक किसी से बात न करने का प्रण किया । नल पानी में डूबकर पाताल पहुंचा । वहाँ वासुकि ने उसका सत्कार किया । उसे वासुकि ने एक गुटका दिया । इसके द्वारा नल अस्सी वर्ष का बुढ़ा बन सकता था । और सोलह वर्ष का सुन्दर राजकुमार भी । मोतिनी की प्रतिज्ञा थी कि वह नल पुराण सुनने पर राजा पिरथम की स्त्री

बन सकती है । राजा नल ने वृद्ध का रूप बनाकर नल पुराण सुनाया । सब रानियोंकी एक-एक करके यज्ञ में आहुति दी गई । राजा पिरथक को अब पूरा किस्सा ज्ञात हो गया । नल ने मोतिनी प्राप्त की । मंझा को जाकर पिरथक राजा ले आया । फिर भूलसिंह पंजाबी ने राजा पिरथक और रानी मंझा को जादू के बल से पाषाण बना दिया । मोतिनी ने अपने जादू से मुक्त कराया । इसके पश्चात् राजा नल ने दमयन्ती सेस्वयंवर में विवाह किया । मोतिनी दुख के मारे पछाड़ खाकर गिर पड़ी और मर गई । शनिश्चर देवकी कोप दृष्टि से राजा नल अपने भाई पुष्कर से जुए में अपना सारा राजपाट हार गया । पिंगल के राजा बुध ने फांसे खेले और स्त्रियों के गर्भ दाव पर लगें । नलजीता । नल के ढोला हुआ और बुध के मारू । मारू का सम्बन्ध ढोला के साथ किया गया । बुध के बन्धु-बान्धवों को यह सम्बन्ध पसन्द नहीं आया । विवाह हेतु शर्तें रक्खी गई । दाने वाला कटटर घोड़ा पर चढ़ने को कहा गया । घोड़ा नल को पहिचानता था । नल घोड़े पर चढ़ने गया फिर कोर गाड़ि लाने को कहा गया । ये गाड़ि दानें के राज्य में थे । नल दाने को पकड़ लाया और उसे भीत में चिनवा दिया। दाने ने कहा कि मारू के विवाह में ढोला के ऊपर मै गिर पडूंगा, और ढोला मर जायेगा।

नल को दमयन्ती के साथ बड़े कष्ट सहने पड़े । दमयन्ती बिछुड़ गई थी । दमयन्ती के दूसरे स्वयंवर की तैयारी हुई । नल वहां पहुंचा, दमयन्ती से फिर भेंट हो गई । नल ने फिर पुष्कर से जुआ खेला और अपना सारा राजपाट जीत लिया । ढोला अब गौने की विदा कराने पहुंचा । मारू ने दरवाजे के गिरने का समाचार पहले ही पहुंचा दिया था । करिहा(ऊँट) ने कहा सब देखा जायेगा । ढोला जैसे ही द्वार के पास पहुंचा तो वह डगमगाने लगा । करिहा इतनी तीव्रता से निकला कि ढोला तो निकल गया, पर द्वार करिहाकी पिछली टांगो पर गिरा । ढोला गौना करा लाया[63] ।

63- बुन्देली लोक साहित्य, डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेही", पृष्ठ 224-225,

ढोला मारू की जनकथा को साहित्यिक रूप भी मिल चुका है । राजस्थानी में "ढोला मारूरा दोहा" एकसुप्रसिद्ध लोक-गाथा है । बृज और उत्तर प्रदेश में इसके अनेक रूपान्तर प्रचलित है । बुन्देलखण्डी ढोला लोक ज्ञान से परिपूर्ण है ।

राजा दशरथ के पुत्रेष्टि-यज्ञ में रानियों को यज्ञ की खीर खाने से सन्तान प्राप्ति का योग मिला । पर यहां साधु द्वारा स्वर्गिक चावल खिलाने का उल्लेख है। साधु महात्माओं के आशीर्वाद एवं भभूत आदि से पुत्रजन्म का वृतान्त पौराणिक साहित्य में उपलब्ध है । कथा सरित्सागर में उदयन और वासवदत्ता के कथानक में वासवदत्ता को फल देकर पुत्र "नरवाहनदत्तः" की उत्पत्ति बतलाई गई है ।

भाँगिनी कानिपुत्री राजा को देखकर थूकना और फिर मुंह फेरकर खड़े हो जाना लोक विश्वास की सुदृढ़ कड़ी है । जिसे कहानीकार ने सत्यप्रमाणित दिखाया है । क्योंकि अपशकुन होने से मेहतरानी को उस दिन भोजन तो मिला ही नहीं, ऊपर से गांठ की मार खानी पड़ी । यथा-"अन्न पानी चली कहां है, अरे जापै मार गांठि की परि गई ।"

सन्तान की लालसा बड़ी प्रबल होती है । ज्योतिषशास्त्र में लोक मानस की गहरी आस्था रही है । राजा पिरथम ने काशी से गजाधर पण्डित को बुलाकर सन्तान-योग की बात पूछी । यज्ञ कराया गया । कर्म-रेखा अटल होती है और भवितव्यता होकर रहती है । यह बात पण्डित के मुख से कहलाई गई है, जबकि ईर्ष्यालु सौत रानियों ने मंझा की भावी सन्तान राक्षस बालक रूप में जन्म लेने की पण्डित से असत्य भविष्य कथन कराकर मंझा के निष्कासन की योजना बनाई गई । यथा- "अरे सलूका जाने फारो है बदन को । जाइके राजा सें कहोंगी । मेरी इज्जत लीनी । सो पण्डित होय जगत में हांसी । दिन ऊंगत लगवाइ देउंगी फांसी।" यहां त्रिया चरित्र देखने को मिलता है । जबकि रानियां पण्डित पर चरित्रहीनता का मिथ्या रोप लगाकर फांसीलगवाने की धमकी देती हैं । उधर पतिव्रता मंझारानी

अपने सत की परीक्षा देने को तत्पर है । सौतों की अभिसन्धि जानकर वह स्वयं की और सौतों की किरिया देन ठीक समझती है । यथा- "परछा लेनन के रहुवाइ लें । कडुआ तेल ईको धमाइ लें । पहले मेरी सौतन की नभाइलें । चाहे मोई एलिमाइलें । मेरो सरता आजु अजमाइ लें ।" साहचर्य जनित स्नेह की प्रबलता उस समय प्रकट होती है जब मंझा रानी देश निकाले के समय अचेतन पदार्थों से विदा की आज्ञा विलापपूर्ण शब्दों में माँगती है -"अरे-नैनन से नदियाँ बहिरईं । ओ रनियाँ आगे बढ़ि के द्वारे से रई बतराइ । ओ मेरी निकरन हारी सती सो मंझा बन को जाईं ।" सतीनारियों को संकट में देवी-देवता अवश्यमेव सहायता करते हैं । मंझा के प्रसूत -काल में नारद पहरा देते हैं,पवनदेव झाडू लगा रहे है । प्रेमपात्र को पाने में बड़े साहस और धैर्य की आवश्यकता होती है । राजा नल का मोतिनी के प्रति प्रेम की परीक्षा देवी ने ली है और उसे सच्चा प्रेमी पाया । तभी देवी ने हर संम्भव सहायता दी है । स्त्रियाँ वृत,उपवास सुन्दरवर पाने की अभिलाषा से करती हैं । मोतिनी ने राजा नल से यही कामना प्रकट की है -"आठ मास की कातिक नहाई,दसउ नहाइ वैसाख । भरे जेठ की दोपहरी नहाई । सगरी अखई ग्यारस । अरे मेरे मन में लग रह करना । राजा नल से मिलेगें मोरा परना ।" रानी के प्राण किसी पक्षी में होने की बात अनेक जन-कथाओं में उपलब्ध एवं बहु प्रचलित है । साधुओं के चमत्कार-प्रदर्शन प्रत्येक देश की जन-कथाओं में वर्णित है । साधु बिना आग के रोटी बना लेता है,और बिना रस्सी के पानी खींचलेता है । मोतिनी एक जादूगारिनी है । वह अपने प्रेमी को मोम की मक्खी बनाकर कभी दीवाल में,कभी सिर के बेना में चिपका लेती है । वह भौंरी और चील भी बन सकती है । प्रेमी की प्राण-रक्षा में वह सब कुछ करने को तैयार है । मोतिनी सच्चरित्रा प्रेमिका है। वह प्रेम करना और उसे भली भाँति निभाना जानती है । पतिवृत्य धर्म का श्रेष्ठ उदाहरण है । इस जनकथा में अनेक लोक विश्वासों का निरूपण किया गया है।

पतिव्रत्य रक्षा का उपाय, स्वयंवर एवं गान्धर्व विवाह, नर-बलि, शक्ति पूजा । नल के जन्म के समय भैमाता और दुर्गा जनेला करती है । देवताओं की प्रति आस्था एवं आगाध श्रद्धा व्यक्त की गई है ।

इसके अतिरिक्त वचन भंगता का दुष्परिणाम भी दिखाया गया है । मोतिनी ने नल से दूसरा विवाह न करने का वचन लिया है पर नल ने दमयन्ती से विवाह कर लिया तो मोतिनी मर जाती है और नल को विश्वासघात के कारण कोढ़ी होना पड़ता है । इसके विपरीत नल मनसुख गूजर को पग पलटा यार बनाकर उसका सहयोग लेता रहा । हंस-हंसिनी ने परों पर बिठलाकर समुद्र पार पहुँचाया तो वासुकि ने ऐसा गुटका दिया कि रूप परिवर्तन हो सकें, और मणियों की माला देकर पानी फाड़कर पाताल पहुंचने की विधि बतलाई । वासुकि नाग, घोड़ा, हंस-हंसिनी का सहायताकार्य नल के किये गये उपकारों का बदला है । कथा में तत्कालीन प्रजातंत्र की सच्ची झलक दिखाई देती है । भंगिन तक को अपने स्वतन्त्र विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता है और राजा उसकी बात की सत्यता सिद्ध करके देखना चाहता है । राजा नल का चरित्र राजसी व्यक्ति का नहीं है । वह जन-साधारण की भांति बन-बन में भटकने वाला, दुर्दैव का मारा हुआ व्यक्ति है । कभी सेठ के यहाँ पलता है, तो कभी तेली के घर रहता है । उसका विवाह अकेले में होता है । अकेले ही राक्षसों का बध करता है । नल का चरित्र दैवीगुणों से सम्पन्न है । उसका विश्वास देवी-देवताओं के प्रति महत है । फलस्वरूप विश्वास सफलीभूत होता है । अति मानवीय कार्य-सम्पादन में लोकानुभूति की सहज अभिव्यक्ति हुई है ।

निःसन्देह ढोला एक लोक-काव्य है। यह किसी छन्द के अन्तर्गत नहीं रक्खा जा सकता । क्योंकि इसमें कहीं सोलह, कहीं बारह तो कहीं अठारह मात्रायें रक्खी गई हैं । दूसरे और चौथे चरण की तुक मिलती हैं । ढोलाकार अपने व्यक्तित्व से ढोला को प्रभावित करता है । वह बीच-बीच में अनेक नये प्रसंगों को जोड़ लेता है। प्रथम मन्दगति से चलता है बाद में चिकाड़े के स्वर में स्वर मिलाकर विलम्बित गति

पकड़ता है । इसके मध्य कभी-कभी "मल्हार" ज्योनार" आदि तर्जों की पुट भी आ जाती है जो ढोला की एक रसता में राग का परिवर्तन कर सरसता लाती है ।

बुन्देली लोक साहित्य में इसके अन्तर्गत स्त्रियाँ खेल के गीतों में ढोला गाती हैं । यह ढोला मारू" की कथा से भिन्न होता है । ढोला की तर्ज पर गाने से ही इसे "ढोला" नाम दिया गया । ढोला का अर्थ पति होता है जो दूल्हा से बना प्रतीत होता है । एक ढोला का नमूना देखिये -

"रानी नल सों रही बतराय, अए करियँातो न छूटी तेलकी रे ।
कहयो ससुर समुझाय मेरे, बेटा तो जोगी है गये ।
मेरे नहीं छूटे हरदी के दाग, फरिया तो न छूटी तेल की रे ।
मेरी बनीठनी के देवर जेठ, बिगड़ी को साथी कोउ नइयां रे ।
मेरे वन को डिगर गये भरतार, नगरिया सूनी हो गइ रें ।"

उक्त ढोला में कोई स्त्री अपने पति के योगी हो जाने पर बिरह विदग्धता प्रकटकर रही है ।

3.5 दार्शनिक कथायें :-

जबसे मनुष्य ने आंख खोली । वह प्रकृति के सानिध्य में आया । उसने अनेक अलौकिक शक्तियां देखीं । कालान्तर में क्रमशः जिनका मानवीकरण होता चला गया । और सभी शक्तियों ने देवी-देवताओं का साकार रूप धारण किया और सामान्य मनुष्य जैसे कार्य-कलाप करने लगें । पर दुख कातर, सहिष्णु, धर्म और देश पर न्योछावर होने वाले शक्तिशाली पुरूषोत्तम ही देव कोटि में परिगणित किये जाने लगते हैं ।

बुन्देलखण्ड के लोक साहित्य में जिस महापुरूष ने सर्वाधिक यहां की जनता को प्रभावित किया । वे हैं ओरछा नरेश जुझार सिंह के लघुभ्राता लाला वीरहरदौल गौड़ देशीय राजा प्रेमनारायण को मारने के कारण अप्रसन्न होकर (क्योंकि उन्होंने अपने पिता वीरसिंह बुन्देला के अपमान का बदला लिया था) दिल्लीश्वर शाहजहां ने दस लाख रुपये जुर्माना किया किन्तु जुझार सिंह ने जुर्माना देने से साफ इन्कार कर दिया । हरदौल का जन्म स्थान दतिया माना जाता है । इस सम्बन्ध में इतिहासकार विन्सेण्ट स्मिथ ने लिखा है "हरदौल, प्रसिद्ध वीरसिंह बुन्देला का पुत्र दतिया में पैदा हुआ ।"

हरदौल का चरित्र जो लोक साहित्य में प्राप्त होता है, वह उनके आत्म बलिदान की वीरतापूर्ण घटना पर आधारित है । हरदौल की माता बचपन में ही उनको अनाथ करके परलोक सिधार गई थी । माता ने मृत्यु काल निकट जानकर बालक हरदौल को जुझार सिंह की रानी को सौंपते हुये कहा था- "सुअना -सो हरदौल को, सौंपत तोरे हाथ । तें माता भई आज से, पूत न होय अनाथ ।।"

जुझार सिंह अपना राज्य भार छोटे भाई हरदौल को सौंपकर दिल्ली के दरबार में पहुंच गये थे । यह बात हरदौल को बुरी लगती और वे झुंझलाउठतें हैं -

"गहरवार कुल जन्म लये हैं, पंचम के कुल की जा आन ।

सीस काट कर पर धर दोनों, मांगो दुरगा सों वरदान।

जे बूंदें खप्पर में गिर गईं, उतनें बरस भोग ले राज ।

धिक्‌धिक् बामन धरम करम बिनु, धिक्‌धिक् पति सेवा बिन नार ।

पगड़ी वाले सीस झुकावें, ऐसे क्षत्री को धिक्कार ।"

हरदौल ने शासन भलीभांति चलाया । जुझारसिंह के ओरछा आने पर चुगली की, कि हरदौल का अपनी भाभी से अनुचित प्रेम सम्बन्ध है । इससे ओरछा नगर और आपकी बड़ी बदनामी हो रही है । साथ ही हरदौल षडयंत्र करके आपके राज्य को भी हड़पना चाहता है । राजा क्रोधित हो महल पहुंचा । रानी ने यथोचित स्वागत किया । किन्तु जिसके मन में एक बार शक-सन्देह उत्पन्न हो जाये उसे अपने प्रिय से प्रिय पात्र में भी उसी के अनुसार दोष दृष्टिगोचर होने लगते हैं। परिणामस्वरूप क्रोधित हो राजा अपनी तलवार मांगने लगें । रानी ने उत्तर दिया- तलवार तो लाला हरदौल ले गये हैं । जुझारसिंह का सन्देह और पक्का हो गया । वे रानी की भर्त्सना करने लगें । रानी ने बहुत कुछ कहा सुना पर, सब व्यर्थ जबकि रानी हरदौल को पुत्र के समान मानती थी । राजाने कहा-"यदि यह बात सच नहीं है तो तुम अपने हाथों से भोजन में विष मिलाकर हरदौल को खिला दो, हमें तुम पर विश्वास हो जायेगा ।" रानी ने साहस बांधकर कहा- "महाराज क्यों आप अपने निष्कलंक प्रिय भाई को मरवाकर अपनी बांह कटाते हो ? पर राजा के शंकालु हृदय ने एक भी दलील न सुनी और विष देकर मारने की जिद पर अड़ा रहा ।

राजा-रानी की बातें पिंजरे में हो तोता-मैना सुन रहे थे । तोता मैना से कहने लगा कि बेचारा हरदौल निर्दोष मारा जा रहा है । राजा ने रानी की एक भी बात नहीं मानी । इस पर मैना बोली कि राजा का कथन असत्य है, इसमें

उसकी बदनामी होगी । सती-साध्वी रानी को झूँठा कलंक लगाया है । मैंने अब मनुष्य की जात पहचान ली । ये कोई सुधार का काम नहीं कर सकते । यदि हरदौल को विष दिया गया तो हम दोनों अपने प्राण छोड़ देंगे ।

रानी बड़े असमंजस में है । एक ओर पति की आज्ञा दूसरी ओर अपने प्रिय देवर की हत्या । इधर कुआँ उधर खाई" की कहावत चरितार्थ हो रही है । रानी विवश है । उसने विष भोजन तैयार कराकर हरदौल को भोजन के लिये बुलाया हरदौल के गमन करते समय कुत्ता ने कान फड़फड़ाया, उसी समय छींक हुई, और सर्प रास्ता काट गया, बुरे-बुरे असगुन होने लगें । भोजन की थाली परोसी गई । उस समय रानी के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली । हरदौल ने भाभी के दुःख का कारण पूछा, तब रानी विषयुक्त भोजन की बात कहकर अत्यन्त कातर हो उठी :-

"भौजी धरे तनिक ना धीरा, ढारत है नैनन में नीरा ।
न्यारे भये जात से हीरा, सइहै कौन कठिन जा पीरा ।
ई निरदई राजा ने दीने विष मिलाय पकवाना ।
बताय जइयो लाला तो विष बिन राखि हैं कैसे प्राना ।"

हरदौल ने अपना भाग्य सराहा कि बड़े भाई की आज्ञा पालन कर अवसर मिला । भोजन करते ही हरदौल की मृत्यु हो गई । घर-घर में शोक का सागर उमड़ पड़ा । शोक-विह्वल तोता-मैना, गाय-बछिया, हाथी-घोड़ा सब अपने अपने स्थान पर बंधे मर गयें ।

मृत्यु के उपरान्त हरदौल देव पद से विभूषित हुये । दिल्ली पहुंचकर बादशाह का आसन हिला दिया । जब बादशाह को पता लगा कि मृतात्मा जुझार सिंह का भाई हरदौल है, तो उसने हाथ जोडकर क्षमा मांगी, साथ ही गांव गांव में चबूतरा बनवाकर हरदौल देवता की स्थापना करा दी । साथ में मेहतर बाबा की चौंतरिया बनाई गई ।

बहन कुंजावती जुझार सिंह से भात मांगने पहुची पर जुझार सिंह ने कोरा जवाब दिया । कुंजावती ने फूलबाग में पहुचकर चिता पर पीले चावल चढ़ाये । भात नौतने की विधि पूर्ण की । वह रो-रोकर भात नौत रही है -

"अइयो बिरन हरदौल हमारे न्योते अइयो बिरन हरदौल ।
जेठे बन्धु जुझार सिंह हैं करत तुम्हारी चौल ।
× × × ×
जो तुम आहो नहीं जग में, मार मरौं पिस्तौल ।
झूंठ-सांच जो कहीं आप सों, ली जौ मन में तौल ।
दास कहे भइया तुम्हारे बिन, सूनी लगी किचरौल ।"

मरणोपरान्त हरदौल समय पर भात लेकर पहुचे । मण्डप के नीचे स्वर्ण, चांदी, जवाहरात के ढेर लग गये । बारात को भोजन कराया गया । इस समय हरदौल घी परोसने लगे पर वे अदृश्य रूप में होने से बाराती भयभीत हो गये । इस पर दूल्हा ने हठ ठान ली कि जब तक परसैया के दर्शन नही होगें, भोजन नहीं करूंगा। दूल्हा की दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर हरदौल ने प्रत्यक्ष रूप में सबको दर्शन दियें । इस प्रकार बहन को भात से सन्तुष्ट कर हरदौल अपने स्थान को वापस आ गयें ।

आषाढ़ मास में बुन्देली बालायें गीत गाती हुई हरदौल की पूजा करती है -

ओरछा से आई मोरी आदि भवानी, दतिया से लाला हरदौल ।"

निःसन्देह हरदौल का चरित्र एक उदात्त नायक के रूप में चित्रित हुआ है ।

इसी प्रकार श्रावण मास में झूले पर झूलती हुई श्रवण कुमार का चरित्र लोक गीत "सरमन" में आती हैं । कथा इस प्रकार है :-

श्रवण कुमार की कर्कशा स्त्री अपने अन्धे सास-ससुर से दुभांति (भेदभाव) करती थी। वह स्वयं को और अपने पति को खीर रांधती थी, और सास-ससुर को महेरी

खिलाती थी । वह दोनों प्रकार के भोजन एक ही हांडी में बना लेती थी । क्योंकि उसने एक हांडी में दो पेट बनवाकर रक्खे थे । एक दिन सरमन के अंधे माता पिता ने शिकायत की कि बेटा, तेरे राज में हमने कभी खीर नहीं खाई । सरमन ने इसकी परीक्षा लेनी चाही । भोजन जब परोसा गया, तब सरमन ने अपना थाल माता पिता को सरका दिया । और उनका थाल खुद ले लिया । तब सरमन को दुर्भांति का पता लगा, वे बढ़ई के घर जाकर कांवर बनवा लाये और माता पिता को उसमें बिठाल कर तीर्थाटन कराने चल दिये । वन-मार्ग में प्यासे माता पिता को जल लेने झरने पर पहुंचे, वहां आखेटक राजा दशरथ का शब्द भेदी बाण सरमन को लगा, और उनकी तत्काल मृत्यु हो गयी । अन्धा-अन्धी ने राजा दशरथ को शाप दिया कि वह भी तड़प तड़प कर पुत्र-शोक में प्राण त्यागेंगे ।

माता-पिता को ही देवी-देवता समझने वाले श्रवण सुयश अविलम्ब तीनों लोको में छा गया ।

इसी प्रकार कारसदेव जो सूरजपाल के भाई थे, आज समूचे बुन्देलखण्ड में आभीरों (अहीरों) के देवता माने जाते है । ये पशु पालक देवता है । गांव के निकट किसी चबूतरे पर त्रिभुज की आकृति वाली ईंटें रखकर इनका स्थान बना दिया जाता है । चबूतरे पर यत्रतत्र सफेद छोटी-छोटी ध्वजायें लगी रहती है । इनकी उपासना में जो लोक गीत गाये जाते है, उन्हें कारसदेव की गोटें कहते है ।

3.6 विधि विधानों का आधार :-

मिथ और आख्यान के तत्व में एक उल्लेखनीय भेद है । जहां आख्यान का तत्व भौतिक होता है, वहां मिथ का तत्व आधिभौतिक । मिथ की दुनियां प्रायः हमारे आनुभाविक यथार्थ के मेल में नहीं होती । इसमें अतिप्राकृत पात्रों और घटनाओं का अतिप्राकृत शक्तियों द्वारा अनुशासित प्राकृत पात्रों और घटनाओं का वर्णन मिलता है । ये पात्र और घटनायें विश्व की सृष्टि और उसकी विभिन्न विचित्रताओं तथा रहस्यों की व्याख्या करते हैं । इस प्रकार मिथ का प्रयोजन प्राक् सृष्टि और आदिम युग की उस वास्तविकता की व्याख्या प्रस्तुत करना है जो वर्तमान के संदर्भ में भी अपनी सार्थकता रखती है । वस्तुतः मिथ को मिथ बनाने वाली विशेषता है, इसका काल के दो स्तरों पर एक साथ संचरण । यह अतीत में घटित होकर भी कालातीत है । यह हरक्षण अनुभूत होने वाला वह वर्तमान है जो भविष्य में भी इसी रूप में जीवित रहेगा ।

मिथ और लोक कहानी दोनों में ही समान कथावस्तु मिल जाती है । दोनों की सामग्री एक दूसरे में प्रवाहित होती रहती है, यदि कहा जाये कि मिथ में प्राकृतिक पदार्थों का मानवीकरण होता है तो यह एक ऐसी विशेषता है जो कहानी में भी मिलती है । पशु-कथाओं में पशुओं का मानवीकरण किया जाता है किन्तु इसके बावजूद ये कहानियां हैं । इसी तरह यदि यह कहा जाये कि मिथ में प्राकृतिक विचित्रताओं की व्याख्या मिलती है और यही कहानी से उसे अलग पहिचान दे देती है तो यह कहना भी एक गलत कसौटी प्रस्तुत करना होगा, क्योंकि कई लोक कहानियां इस विशेषण का दावा कर सकती हैं । इसलिये मिथ की परिभाषा की अपेक्षा मिथिक धारणाओं की परिभाषा कहीं अधिक सरल है । मिथिक धारणायें विश्व के गठन और उत्पत्ति सम्बन्धी आधारभूत विचार हैं । ये मिथिक प्राणियों के जीवन की घटनाओं और हमारे समकालीन,

प्राय: परिचित व्यक्तियों के अद्भुद कृत्यों और कष्टों से सम्बन्धित लोक कहानियों में प्रविष्ट हो जाती है ।

प्रारंभिककाल में मनुष्य विश्व की प्रत्येक वस्तु को अपना जैसा ही सचेतन मानता था । उस काल में उसकी भाषा में जो शब्द निर्मित हुये, वह हर वस्तु को जीवित वास्तविकता के रूप में प्रस्तुत करते थे । कासे के अनुसार "उस समय प्रत्येक शब्द सवाक् चित्र था । मनुष्यके रूप में सृष्टि के विविध नामरूपों की इस अक्रान्ति ने प्रथम मिथोंको जन्म दिया । इसी प्रक्रिया के अनुसार पुरूरवा राजा बन गया, और उर्वशी[64] अप्सरा बन गईं ।

ऐसा नहीं कहा जा सकता कि मिथ में मानवीकरण नहीं होता किन्तु मानव के प्रकृतिकरण की यह धारणा वस्तु स्थिति के एक अनुल्लिखित पक्ष को सामने लाती है । अवतारों और लोक नायकों के चरित्रों में प्रकृति विषयक अभिप्रायों का समावेश होता रहा है ।

एक ओर उनकाचरित्र सामान्य मनुष्य के चरित्र से बहुत भिन्न नहीं है तो दूसरी ओर वह अपनी असाधारणता में "उससे बहुत भिन्न भी । अवतारों और लोक नायकों में धीरे-धीरे लोकोत्तरता का यह पक्ष इतनाप्रबल हो जाता हैं । सूर्य और चन्द्रमा की तरह उनके मुख-मण्डल के चारों ओर ज्योति का वलय मिलता है । उनके एक संकेत पर पहाड़ हिलने लगते हैं और आंधी थम जाती है । गीता के कृष्ण का विराट रूप इसी प्रक्रिया की एक परिणति है ।

64- क्योंकि निरूक्त या वैदिक भाषा के अनुसार पुरूरवा का अर्थ बहुत शोर करने वाला अर्थात सूर्य है । उर्वशी का अर्थ उषा (प्रात:कालीन लालिमा।

इस प्रकार प्रकृति के परिवर्तन के कारण सृष्टि में जो बदलाव आता है । यथा वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर बसन्त और ग्रीष्म । वातावरण और परिस्थिति -यों के अनुसार उन्हें जीवन्त मानकर विभिन्न विधानों और अनुष्ठानों से जोड़ दिया गया। सरस्वती पूजन, बसन्तोत्सव, कौमुदी महोत्सव, होलिका दहन, दशहरा दीपावली, श्रावण के झूलोत्सव एवं मकर संक्रान्ति के लोकोत्सवों के मूल इसीओर संकेत करते हैं ।

आदिम युग में जब मनुष्य ने कृषि-कर्म को अपनाया तो भूमि-पूजन, बीज-वपन, बीज-वपन इत्यादि अनुष्ठानों का जन्म हुआ और कालान्तर में उनके मनाये जाने का विधि-विधान अर्थात कर्मकाण्ड प्रचलित हुआ । वर्षा न होने पर लोक में अनेक प्रकार के अनुष्ठान और विधि विधान समूचे विश्व में प्रचलित हैं । आधि दैविक, आधिभौतिक, आपदाओं के समूल विनाश के लिये भी इसी प्रकार अनेक विधि-विधानों का श्रीगणेश हुआ । निःसन्तान व्यक्तियों ने भी पुत्र प्राप्ति हेतु अनेक प्रकार के अनुष्ठान किये, और सुयोग्य सन्तति प्राप्त की । पंच पाण्डवों का जन्म औरदशरथ द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है।

उपर्युक्त विधि-विधानों एवं अनुष्ठानों के मूल में प्रत्येक देश के लोक विश्वास कार्य करते है । "लोक विश्वासों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । ब्रह्मा की सृष्टि में यावत् पदार्थदृष्टि गोचर होते हैं, वे चन्द्र, राशियां, नक्षत्र तारे आकाशीय "फेनामिन, जैसे बादल, बिजली इन्द्रधनुष, वर्षा आदि सभी इसके भीतर हैं । पृथ्वी को अपनी हरित सम्पदा से सुशोभित करने वाली प्रकृति - वृक्ष, लता, गुल्म, पुष्प, पौधे तथा घास आदि के सम्बन्ध में सैकड़ो लोक विश्वास पाये जाते हैं ।

संसार की जितनी भी सभ्य, अर्ध सभ्य किवां असभ्य कही जाने वाली जातियां हैं, उन सभी में लोक-विश्वासों के प्रति आस्था किसी न किसी रूप

में विद्यमान है । गिरिजन, वन-जन तथा सुदूर टापुओं में निवास करने वाले लोगों- जहाँ आधुनिक सभ्यता का प्रकाश अभी तक नहीं पहुंचा है - में भी लोक विश्वास प्रचुर मात्रा में पाया जाता है । आदिम जातियों की आस्था इन विश्वासों के ऊपर इतनी अधिक है कि इनका जीवन ही इन्हीं के द्वारा परिचालित होता है । लोक-विश्वास आदि वासियों के जीवन की आधार-शिला है जिन पर इनका समाज आश्रित है । इस आदिम जाति का कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है । तो यह विश्वास किया जाता है कि इसका कारण किसी देवी या देवता का अप्रसन्न होना है । अतः बीमार व्यक्ति की किसी डाक्टर से दवा कराने की अपेक्षा उस देवता को पूजा-पाठ के द्वारा प्रसन्न करके रोगी को निरोग करने का प्रयास किया जाता है ।

लोक विश्वास सनातन काल से अमर है । इसकी अक्षुण्ण धारा आदिकाल से प्रारम्भ होकर अर्वाचीन सभ्य और वैज्ञानिक युग में भी प्रवाहित हो रही है। विधि विधान और अनुष्ठान इन्हीं की देन हैं ।

चतुर्थ अध्याय

4.0 मिथक के सम्बन्ध में विभिन्न मत :-

मिथक किसी भी जाति के सांस्कृतिक धरोहर होते हैं। उनकी रचना घटना पर आधारित होती है। क्योंकि जब कोई वस्तु घटित हो जाती है तो उसमें एक अर्थ खोजने का प्रयास होता है। यह अर्थ एवं सन्दर्भ किसी वस्तु के प्रति संवेध बनता है। रचनाकार अपनी जातीय प्रकृति से प्रतीकों का चयन करता है और ये प्रतीक, घटना व्यक्ति आदि पर ही आश्रित होते है। मिथक कविता में संस्कृति का ही आश्रय लेकर आते हैं, ये मिथकीय सन्दर्भ आदिम युग की सामाजिक मान्यताओं, राजनीतिक प्रवृत्तियों एवं धार्मिक सम्बन्धों की व्याख्या करते हैं। प्रत्येक जातीय संस्कृति में अनेक ऐसे तत्व होते है जो बुद्धिगम्य नहीं हैं और मिथकों की उदभावना इन्हीं कृत्यों को, संस्कारों को एक स्वरूप्य एवं मान्यता प्रदान करने के लिये होता है। ये मिथक ही कविता में प्रयुक्त होते हैं। मानव के सामाजिक, सांस्कृतिक उन्नयन के साथ मिथकों की अर्थ क्षमता में और अधिक विस्तार होता जाता है। अर्थ-सामर्थ्य का यह विस्तार आगे चलकर कविता-सृजन के क्षणों में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मिथकों के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ये संस्कृति के आधार पर ही निर्मित होते हैं और किसी भी तरह तर्क द्वारा पुष्ट नहीं होते हैं।

मिथक में धर्म एवं कविता का कुछ सम्मिश्रण-सा होता है। मिथक में धार्मिक जुड़ाव के कारण कुछ विशिष्ट मूल्य एवं संवेदनायें भी जुड़ी होती हैं जो उससे किसी भी परिस्थिति में अलग नहीं होती है। जहां भी वे मिथकीय पात्र या घटनाक्रम प्रयुक्त होगा वे सन्दर्भ और संवेदनायें स्वतः ही जुड़ जायेंगी।

मिथक के साथ प्रतीक भी जुड़े होते हैं क्योंकि मिथक प्रतीकों के माध्यम से ही चित्रणएवं विचार की मनोभूमियां सामने लाते हैं जो पाठक एवं श्रोता में एकदृष्टि उत्पन्न करते हैं । रचनाकार अपनी कृतियों में उन्हीं घटनाओं एवं पात्रों को ग्रहण करते हैं लेकिन युगानुरूप उसकी व्याख्या अलग होती है और वह सम सामयिक अर्थ का बोधक होगा । जहां तक भारतीय संस्कृति का प्रश्न है, वह अत्यन्त विस्तृत एवं समृद्ध है, इसमें विश्व का सबसे प्राचीन कथा-साहित्य एवं धार्मिक परम्परा उपलब्ध है, साथ ही यहां विभिन्न भाषाओं, धर्मों एवं जातियों के होने के कारण बहुत सारी परम्परायें एवं अलग-अलग रीति-रिवाज है, जिनकी पृथक-पृथक संवेदनायें और सन्दर्भ हैं । रचनाकार अपने भावों एवं सन्दर्भों को स्पष्ट करने के लिये इन्हीं कथा-सूत्रों को ग्रहण करता है जो मिथक कहलाते हैं । भारतीय मिथक साहित्य पर इस परिप्रेक्ष्य में सबसे अधिक प्रभाव रामायण एवं महाभारत का रहा है जहां विस्तृत कथा-सूत्र बिखरे हैं । साथ ही साथ सत्य असत्य दोनों पक्षों का समान रूप से प्रतिनिधित्व हुआ हैं और ये कथासूत्र आज भी व्यापक रूप से कविता में प्रयुक्त होते हैं[1] । डा० नगेन्द्र का विचार है कि प्रत्येक संस्कृति का मूलस्वर साहित्य में सुनाई पड़ता है और उसके मूल में मिथक होते हैं । उनका मानना है कि आदि युग के ही कवि नहीं वरन प्रत्येक युग के कवि ने अपने ढंग से मूलतः मिथक रचना ही की है । उदाहरण देते हुये वे कहते हैं कि "होमर ने "इलियड" या "ओडिसी" में, वर्जिल ने "इनीड" में दान्ते ने "डिवाइना कामेडिया, मिल्टन ने "पैराडाइजलास्ट" शैली ने "प्रोमिथियस" अनबाउण्ड और इलियट ने "वेस्टलैण्ड" में अपने-अपने देशकाल के रागात्मक उपकरणों और भाषिक साधनों

1- मिथक और संस्कृति सन्दर्भ, संजय कुमार सिंह शोध छात्र, इलाहाबाद विश्व विद्यालय की अप्रकाशित लेख । श्री असीम "मधुपुरी" के सौजन्य से । पृष्ठ 1, 2

के आधार पर एक प्रकार से मिथक रचना ही की है । भारतीय परिदृश्य में देखें तो वैदिक कवि के "सूक्तों" में, वाल्मीक, व्यास के "रामायण" "महाभारत" में, कालिदास के "कुमार संभव" तुलसीदास के "रामचरित मानस", प्रसाद की कामायिनी" में और पन्त के "लोकायतन" में विभिन्न युगों के सामूहिक संस्कारों और भाषिक उपकरणों के अनुरूप प्रकारान्तर से मिथक-सर्जना की एक निरन्तर परम्परा व्यक्त है[2] ।

संस्कृति के विकासक्रम के साथ-साथ मिथक की अर्थवन्ता, प्रयोजन एवं प्रभाव में भी परिवर्तन होता जाता है । सांस्कृतिक वैशिष्ट्य की रक्षा के साथ मिथक की महत्ता उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली जाती है । मिथक कभी पुराने नहीं पड़ते वे युगानुरूप अर्थ, संदर्भ को ग्रहण करते रहते हैं । वस्तुतः उनका महत्त्व सांस्कृतिक अस्मिता की पहिचान को बनाये रखने में है, वही काव्य का सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है । मिथक को निरन्तर परिष्कृत होने में सांस्कृतिक रीति-रिवाज सबसे महत्वपूर्ण होते है क्योंकि वे मिथक के साथ जाने-अनजाने जुड़ते रहते हैं । मिथकों का निर्माण वस्तुतः दो स्रोतों से होता है - प्रथम वैदिक पौराणिक साहित्य से, जहां इनमें वर्णित कथाओं को आधार बनाकर कवि अपने अनुभव एवं समसामयिक सन्दर्भों को स्पष्ट करता है जबकि दूसरा स्रोत लोक साहित्य से है जहां सारा कथ्य मौखिक रंजनात्मक होता है, जो मात्र साधारण कहानी होती है, मिथक मानवीय भावों को प्रकट करने वाली प्रथम एवं प्रमुख मानसिक अभिव्यक्ति-रूप है। लोक साहित्य के सुधी विद्वान श्री श्रीवास्तव ने आधुनिक कविता के विभिन्न मिथकों का अध्ययन करते हुये निम्नलिखित पांच वर्गों में बांटा है -

---

2- मिथक और साहित्य, डा० नगेन्द्र, पृष्ठ 34,

§1§ देव प्रतीक- इसमें प्रमुख प्रतीक के रूप में इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोम, रुद्र, यम, सूर्य, पृथ्वी, मरूत आदि को ग्रहण किया है ।

§2§ द्वितीय प्रतीक अवतार प्रतीक है जिसमें मुख्य रूप से विष्णु के अवतारों को प्रमुखता मिली है । इनमें प्रमुख है -राम, कृष्ण, लक्ष्मण, बलराम, मत्स्य, सीता, राधा रोहिणी, गोपियां, शिव, गणेश, नारद, आदि ।

§3§ कथा प्रतीक - इसमें प्रमुख रूप से त्रिपुर संहार, देवासुर, संग्राम, समुद्र-मंथन, काम-दहन, हनुमान का सूर्य निगलना, कालियमर्दन, प्रलय-प्रसंग, पुरूरवा-उर्वशी, शकुन्तला-दुष्यन्त ।

§4§ ऐतिहासिक प्रतीक - इन इतिहास धर्मी चरित्रमिथकों में नहुष, मनु, नचिकेता, विश्वामित्र, त्रिशंकु , भागीरथ, सत्यकाम, गांधी, नेहरू, तिलक आदि ।

§5§ धारणा प्रतीक - इनके अन्तर्गत स्थलिक, उपकरणात्मक, अमूर्त एवं यूतोपियन भेद प्रमुख है जैसे देवलोक, कैलाश, परमव्योम, कमल, गरूड़, कामधेनु, चक्र, शेषनाग, कल्पवृक्ष, नन्दनवन आदि ।

इस प्रकार मिथक किसी भी संस्कृति की समझ एवं पहचान के लिये उपादेय हो सकते हैं क्योंकि इनमें ज्ञानेन्द्रियों के जटिल एवं वैविध्यपूर्ण आद्य अनुभव पूर्ण निहित हैं । ये अनुभव-पुंज जिनसे सभ्यता, संस्कृति, विज्ञान, धर्म और दर्शन का उदय हुआ है। ये एक समय की आनुभाविक समग्रता को समाहित करने का प्रयास करते हैं । यदि इनमें सामान्यीकरण को महत्त्व दिया जाये तो मिथकों का महत्त्व सर्वोपरि हो जाता है, क्योंकि इनमें समग्रता प्रस्तुत हुई है, न कि उसका एक अंश[3] ।

3- मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, पृष्ठ 11,

मिथक के सन्दर्भ में अज्ञेय का विचार है कि मिथक की चर्चा हम साहित्य को बिल्कुल छोड़कर व्यापकतर सांस्कृतिक सन्दर्भों में भी कर सकते हैं। संस्कृति का संचित अनुभव ही मिथक के जन्म में सहायक होता है क्योंकि कोई भी संस्कृति अपने को पहचानने के लिये, जहां इस पूरे के पूरे अनुभव-संचय को अपने पूरे समाज के सामने रखना चाहती है, वहां उसे दूसरे हर किसी से बचाकर-पराये व्यक्ति की पहुंच से परे भी रखना चाहती है। मिथक की शक्ति का दूसरा ... कारण यह है कि एक तरफ वह किसी भी संस्कृति या जाति की अस्मिता का आधार होती है, दूसरी तरफ वह उसको किसी दूसरी संस्कृति से अलग और विशिष्ट रखने का भी एक साधन होती है[4]। इसीलिये पुराने पात्र एवं सन्दर्भ आज के वातावरण एवं मूल्यह्रास को ज्यादा सशक्त रूप में चित्रित करते हैं। उदाहरणार्थ-

"रात मैंने एक सपना देखा,

मैंने देखा कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गई है,

और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहे हैं,

गणेश टॉफी खा रहे हैं

और बृहस्पति अंग्रेजी से अनुवाद कर रहे हैं[5]।"

अतः यहां केवल व्यंग्य नहीं है अपितु वह कटु सत्य है कि आज प्राचीन स्थितियों बृहस्पति, ज्ञान, विश्वामित्र, कठिन साधना, गणेश विघ्नन्नाशक आदि की आज यही उपयोगिता रह गई है।

4- मिथक और भाषा, सम्पा0डॉ0 शम्भूनाथ, पृष्ठ 35

5- ओ अप्रस्तुत मन, भारत भूषण अग्रवाल, पृष्ठ 37,

हिन्दी साहित्य में मिथक का आधुनिक प्रयोग छायावाद से होता है जिसकी अभिव्यंजना-पद्धति में आचार्य शुक्ल ने चित्रमयी भाषा और मधुमयी को मूल माना । स्पष्ट है कि साहित्य में मिथक का चित्रण भी चित्रात्मक रूप में ही होता है । छायावाद के प्रथम पंक्ति के कवियों की प्रसिद्ध रचनायें मिथक पर ही आधारित है । यथा-प्रसाद की कामायनी, निराला की "राम की शक्ति पूजा", तुलसीदास" कुकुरमुत्ता" पन्त की "चिदम्बरा" आदि मुख्य है । ये मिथक पौराणिक घटना ही हैं जिनका प्रयोग आधुनातन समस्याओं, प्रवृत्तियों एवं सामाजिक सन्दर्भों को स्पष्ट करने के लिये हुआ है । "कामायनी" में प्रसाद ने काम, प्रलय, श्रद्धा, इड़ा, मानव, आकुलि, किलात आदि को मिथक के रूप में ग्रहण करके भारत की राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परतंत्रता एवं जन सामान्य की मनोदशा को स्पष्ट किया है । कामायनी की-सी स्थिति "राम की शक्ति पूजा" की भी है । इसमें कवि की संशयात्मकता भारतीय संस्कृति के प्रति है । भारतीय संस्कृति एवं समाज के स्खलित होते हुये सत्य के कारण लोगों के निरन्तर उठते विश्वास एवं राक्षसीय प्रवृत्तियों के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है- "धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध" राम एवं कवि के साथ-साथ समाज के प्रत्येक व्यक्ति की मनोदशा से भी जुड़ा है । "तुलसीदास" में मुगलों का शोषक चित्र, भोगवादी संस्कृति का प्रसार, संस्कारों का नष्ट होना, मानवीय, आर्थिक एवं अन्य सामाजिक समस्यायें शोषक एवं उपनिवेशवादी संस्कृति निराला के समय तक मौजूद है ।

आधुनिक नये मिथकों के सृजन में अज्ञेय, धर्मवीर, भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, नरेश मेहता, कुंअर नारायण तथा दुष्यन्त कुमार इत्यादि कवियों का

नाम विशेष उल्लेखनीय है । इनमें से कुछ की प्रमुख रचनायें इस प्रकार हैं[6] ।

मिथक वस्तुतः संस्कृति पर ही आधारित होते हैं क्योंकि संस्कृति के द्वारा ही उनका सृजन होता है । जहाँ तक मिथकों के नयेपन का प्रश्न है, मिथकों में वस्तुतः नया कुछ नहीं होता, उसके सारे पात्र, घटना एवं सन्दर्भ ग्रहण इतिहास एवं धर्म के ही होते हैं लेकिन रचनाकार अपनी संवेदना को स्पष्ट करने के लिये उन्हीं ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं को ग्रहण करता है । युगानुरूप बनाने के लिये रचना के स्तर पर उसे इतने प्रयोग से गुजारता है कि वे अपने मूल अर्थ को गौण करके तत्कालीन समय की विद्रूपता एवं सामाजिक विसंगति, संघर्ष एवं तनाव को संकेत देने लगता है, जो अपने अर्थ, संदर्भ एवं परिस्थिति के अनुकूल सर्वथा नवीन होता है । अतः स्पष्ट है कि मिथक के पात्र एवं कथ्य नहीं रहते है, लेकिन युगानुरूप उनका अर्थ बदलता चलता है[7] ।

6- (अ) संशय की एक रात, नरेश मेहता

(आ) अंधायुग, धर्मवीर भारती

(इ) असाध्यवीणा, अज्ञेय

(ई) अँधेरे में, मुक्तिबोध

(उ) शकुन्तला, विजयदेव नारायण साही,

(ऊ) आत्महत्या के विरुद्ध रघुवीर सहाय

(ए) फिर वही लोग, रामदरश मिश्र.

(ऐ) पटकथा, धूमिल

(ओ) कुआनो नदी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,

(औ) फूल नहीं रंग बोलते है, शिवमंगल सिंह सुमन

(अं) नाटक जारी है, लीलाधर जगूडी

(अः) शम्बुक, जगदीश गुप्त,

7- "मिथक और सांस्कृतिक सन्दर्भ" संजय कुमार सिंह का अप्रकाशित लेख पृष्ठ 6

4.1 मिथक के सम्बन्ध में लोक साहित्य के विभिन्न आचार्यों के मत:

हमारे देश के जन-मानस में मिथकीय चेतना कितनी गहरी और व्यापक है कि जीवन के हर मोड़ पर कदम-कदम पर सभी भारतवासी उसका सदा सर्वत्र सहारा लेते हैं । साहित्यकार की सर्जनात्मक प्रतिभा और उदभाविका भी इसी मिथकीय चेतना के सहारे पाठकों को उनकी दीर्घ जातीय परम्परा और सांस्कृतिक आस्थाओं के प्रति निरन्तर सचेत करती रहती है। विशेष रूप में भारतीयता और भारतीय साहित्य की वास्तविक पहचान तो भारत की मिट्टी की गंध की पहचान से ही जुड़ी है और भारत की मिट्टी की गंध में रची-पची है । यहां के असंख्य वैदिक, पौराणिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक मिथकों में ।

मिथक वास्तव में हमारे सांस्कृतिक प्रहरी हैं। वे शाश्वत हैं । काव्य सत्य भी शाश्वत हैं । इस दृष्टि से लोक साहित्य में मिथकीय चेतना का विकास मानव की अविराम सांस्कृतिक यात्रा की प्रगति का इतिहास है । विकास और प्रगति के चरम शिखर तक पहुंचकर भी मनुष्य अपने रागात्मक और जातीय, धार्मिक, सांस्कृतिक मूल्यों के विखंडन को सहसा स्वीकार एवंसहन नहीं कर पाता । उसका अतीत जीवी अवचेतन अपनी जीवनप्रेरक स्मृतियों के संरक्षण और उनके प्रतिद्वन्द्वी तत्वों के प्रतिरोध में सतत प्रयत्नशील रहता है। मिथक उसी प्रयत्नशीलता की साहित्यिक परिणति है । एक पाश्चात विद्वान आस्टिन के मतानुसार "मिथक चेतना साहित्यिक भाषा के अर्थ-संप्रेषण व्यापार में तर्क संगत तारतम्य और कालातीत प्रभाव बनाये रखने में सहायक होती है ।"

वेदों की गंगोत्री से निःसृत यह भारतीय चिन्तन धारा आजतक अजस्र रूप से प्रवाहित है । इस विकास यात्रा में इसने जो पड़ाव पार किये जो मनीषी विचारक इसे दिये, जो आख्यान और सन्दर्भ उद्भावित किये-वे सभी भारतीय जन-मानस में मिथक रूप में विद्यमान हैं ।

मिथकों की यह प्रवाह-माला जिन-जिन भी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, उपाख्यान रूपी मनकों से ग्रथित है, उन सबमें भारतीयता की एक ही गंध है- आस्था, धर्मनिष्ठा, सांस्कृतिक गरिमा और भारतीय भू-भाग परिवेश, मिट्टी के कण-कण के प्रति आत्मीयता की ।

निःसन्देह मिथक साहित्यिक भाषा-संरचना के उपकरण-रूप माध्यम होते हुये भी "सत्य-इतिहास" अथवा "इतिहास-सत्य" का उद्घाटन करते हैं । लोक साहित्य के प्रसिद्ध अध्येता और समीक्षक पेरियालीच ने लिखा है- "मिथक वे कथायें हैं जो किसी युग में घटित दिखाई गई हों, इन कथाओं में किसी देश के धार्मिक विचारों, प्राचीन वीरों, देवी-देवताओं, लोक-समुदाय की अलौकिक एवं अद्भुत परम्पराओं तथा सृष्टि-रचना का वर्णन रहता है" पर यह वर्णन शुद्ध रूप में न रहकर प्रतीकात्मक, चारित्र अथवा भौगोलिक-सांस्कृतिक सम्बन्धों के रूप में रहता है ।

भारतीय साहित्य में सृष्टि की प्रत्यूष वेला से लेकर अधुनातन विकास बिन्दु तक की लोक मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अवधारणायें विभिन्न मिथक-विचारों में सुरक्षित हैं । मिथक शब्द का कोषानुसार अभिप्राय है-जानना-समझना एवं प्रत्यक्ष अनुभव करना इत्यादि । जबकि व्याकरण सन्दर्भ में "मिथः" अव्यय का प्रयोग "परस्पर" के अर्थ में प्रचलित है । इस प्रकार यह अर्थ निकाला जा सकता है कि मानव-समुदाय के पारस्परिक साहचर्यजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा

अनुभव के द्योतक आख्यान, [illegible] किंवा प्राकृतिक, सांस्कृतिक, एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ "मिथक" कहलाते हैं। डा० नगेन्द्र की धारणा इस सम्बन्ध में अत्यन्त सुविचारित एवं मननीय है । वे अपनी सुप्रसिद्ध कृति "मिथक और साहित्य" में लिखते हैं- "मिथक कोई अमूर्त या अवास्तविक कल्पना नहीं हैं । यह सत्य का प्रज्ज्वलित रूप हैं ।" यहां उल्लेखनीय है कि इतिहास की गति सीधी और अग्रगामी होती है जबकि मिथकीय मानसिकता उसके चक्राकार प्रवर्तन में आस्था रखती है । इस प्रकार मिथक एक शब्द मात्र न होकर बहु आयामी अर्थ-सिद्धि का संवाहक चुम्बकीय संयंत्र-सा है। यह युगों से संचित लोक-कथाओं का ही एक रूपान्तरित नाम है । इसी लिये साहित्य में मिथकीय प्रयोगों से समन्वित भाषा संभ्रान्तता की केंचुल उतारकर लोकोन्मुख सहजता का वरण करती है । कारण यह है कि मिथकीय चेतना में उदात्त जीवन - मूल्यों के [illegible] अमूर्त सत्य [illegible] [illegible] नाम-रूप-आवरण का परिधान धारण कर बड़े आकर्षक और प्रभावी रूप में प्रत्यक्ष हो जाते हैं । यहां तक कि प्रकृति के सामान्य उपकरण भी मिथकीय आवरण में एक सजीवन अथवा दैवी आभा से मंडित हो जाते हैं ।

सूर्यदेवता पृथ्वी "माता; ब्रह्मा "पुष्कर; यमुना "सूर्यपुत्री; गंगा "विष्णुचरणामृत; शिव लोक मंगल, भीष्म "दृढ़ प्रतिज्ञ- "संयम-संकल्प; पवनपुत्र "हनुमान, "जनक" सागर "रामसेवक; हंस-गरुड़ आदि देववाहन- हिमालय "अविचल तपोमूर्ति" के साथ-साथ राष्ट्र प्रहरी तथा "भीतर कोमलता, तरलता और बाहर "[illegible]" के आलोक के रूप में लोक-व्यापार के अंग-से बन जाते हैं । राष्ट्र कवि दिनकर की राष्ट्रोद्बोधन की हुंकार "हिमालय" के मिथक का सबल संबल पाकर जन-जन को देश भक्ति के जोश से भर देती है । यथा-

"मेरे नगपति मेरे विशाल । साकार दिव्य गौरव विराट ।
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल । मेरी जननी के हिम किरीट । ओ मौन तपस्या
लीनयती । कितनी द्रौपदियों के बाल खुले ? किन-किन कलियों का अन्त हुआ ? ।
तू पूछ अवध से राम कहाँ वृन्दा बोलो घनश्याम कहाँ ? ओ मगध कहाँ मेरे अशोक ।
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ ? री कपिलवस्तु । कह बुद्ध देव ? के वे मंगल उपदेश कहाँ ?
तिब्बत ईरान जापान चीन तक गये हुये सन्देश कहाँ ? × × × रे रोक
युधिष्ठिर को न यहाँ । जाने दो उनको स्वर्ग धीर । कह दे शंकर से आज करें ।
वे प्रलय नृत्य फिर एक बार । सारे भारत में गूंज उठे । हर-हर बम-बम का
महोच्चार ।"

यहाँ हिमालय, अवध, वृन्दावन, कपिलवस्तु केवल स्थानवाचक नाम नहीं, द्रौपदी, राम, श्याम, अशोक, चन्द्रगुप्त, बुद्ध, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, एवं शंकर भी केवल व्यक्तिवाचक नाम नहीं, न ही गाण्डीव, गदा आदि मात्र शस्त्र नाम नहीं अपितु ये सब भारतीय लोक-मानस पर अंकित वे मिथक अंक है जो उन्हें स्वदेश गौरव और राष्ट्र रक्षा के निमित झिझोड़ कर रख देते हैं । अनेक इतिहासों के हजारों पृष्ठ भी वह कार्य नहीं कर सकते जो काम इन पन्द्रह-बीस शब्दों की माला में पिरोये मिथकों ने कर दिखाया है ।

भारतीय साहित्य के अन्तर्गत समंजित मिथक-चेतना वास्तव में भारत के सुदूर अतीत से लेकर वर्तमान के आज के बिन्दु तक का ओर-छोर नापती हुई इस समूचे विकासक्रम को एक सांस्कृतिक-परिणति के रूप में देखती है । वैदिक ऋषि वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, भास और श्रीहर्ष आदि की संस्कृत रचनायें इसी मिथक चेतना की डोर से भारत के जन-मन को अपनी भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक अस्मिता में बाँधे हुये हैं । पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के कवियों का

प्रतिपाद्य चाहे कुछ भी हो, लोक-जीवन से जुड़े मिथकों का ताना-बाना उन्होंने भी अपनी भाषिक-संरचना में बुना है । अपभ्रंश के प्रथम भारतीय मुसलिम कवि उद्दहमान[8] ने "संदेश-रासक" लोक-काव्य में मुलतान के सामाजिक जीवन का वर्णन करते हुये बतलाया है कि यहां घर-घर में स्त्रियां चरणों की गूंज के साथ राम कथा और कृष्ण लीलाओं के गीत गाती हैं । रासो काव्य, भक्ति-काव्य और रीतिकाव्य ही नहीं वरन् आधुनिक काल भी विभिन्न पौराणिक मिथकों की बदौलत लोक-चेतना से सम्पृक्त हुआ है ।

पंजाब की धरती पर रचित गुरुवाणी में निर्गुण उपासना का, प्रतिपादन होते हुये भी सर्वत्र भारतीय पौराणिक मिथकों द्वारा अभीष्ट सन्देश आम जनता तक पहुंचाया गया है । यहां तक कि अधिकांश मुसलिम सूफी कवियों ने भी फारस-ईरान के मिथकों की बजाय भारतीय वेद-पुराण, भूगोल, इतिहास, और यहां के प्राकृतिक परिवेश से जुड़े मिथकों का चयन कर भारतीय जन मानस की जातीय चेतना को ही अभिव्यक्ति दी है । आधुनिक काल के सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रधार बना साहित्य तो पूर्णतया मिथक-दीपों के आलोक से ही भारतीयों का मार्ग दर्शन करता चला आ रहा है[9] ।

कतिपय अन्य लोक साहित्य के विद्वानों के विचार एवं अभिमत मिथक के सम्बन्ध में इस प्रकार हैं -

---

8- अब्दुर्रहमान,

9- अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, स्मारिका-1994 लेख-डा० नीलिमा कुमार, पृष्ठ 43-44 से साभार । प्रका-अशोक बिहारी फेस-2, दिल्ली सम्पा० आनन्द आदीश, डा० कमल किशोर गोयनका ,

"मानव-चेतना मिथकीय चेतना से ही विकसित होकर यथार्थ-वादी ऐतिहासिक चेतना में परिवर्तित होती है । मिथक मनुष्य का आदिम काव्य है... मिथक में आस्था तथा इससे भी अधिक दृढ़ विश्वास का आधार रहता है । इसी भूमि पर मिथकीय कल्पना का हवा महल खड़ा होता है । आस्था ही मिथक को यथार्थ तथा पुनीत बनाती है[10]। मिथक वस्तुतः आत्मनिष्ठ एवं मनोवैज्ञानिक होता है । यह सांसारिक यथार्थ को मानवीय अनुभूतियों की शब्दावली में प्रस्तुत करता है[11]।

मिथक इस अखण्डता और व्यापकता की विराट् मोहक कल्पनायें प्रस्तुत करते हैं । सम्पूर्ण तर्कनात्मक कल्पना, जातीय मन का अचेतन मन बन जाता है । कल्पना का कार्य-व्यापार मिथक को नया स्वरूप प्रदान करता है । कल्पना मिथक एवं स्वप्न अन्तः सम्बन्धित होते हैं तथा व्यक्ति के अचेतन की प्रकृति के अनुसार समकालीन बोध के विभिन्न रचना आयामों में अभिव्यक्त होते हैं । आधुनिक बोध की यथार्थता को नये देवों से जोड़ने वाली शाश्वत मानवीय चिति को जो प्रकारान्तर से मिथकीय चेतना ही है, सर्जन और नवनिर्माण की प्रेरणा और आधार भूमि भी है । मिथकीय संवेदना स्वप्न में उभरती है । स्वप्न में मिथकीय अनुभूति की तीव्रता का एक बड़ा कारण मनुष्य का अपने प्राकृतिक अचेतन से जुड़ा होना है । संस्कृति की पुनः रचना की प्रकृति जब-जब तीव्र होती है, मिथक कल्पना को अत्यधिक उत्तेजित कर देता है।

10- मिथक और स्वप्न, डा० रमेश "कुन्तल मेघ", पृष्ठ 207-208 2

11- नव स्वच्छन्दतावाद, डा० अजब सिंह, पृष्ठ 200,

4.2. मिथक और "लीजेण्ड" का अन्तर :

जहाँ तक मिथ अथवा मिथक के समझने का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में बहुत विवेचन किया जा चुका है। फिर भी आइये कतिपय पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के मत इस संदर्भ में और देखते यों जिससे मिथक की धारणा और अधिक स्पष्ट हो सके।

मिथक शब्द का प्रयोग देवी-देवताओं अथवा अति प्राकृतिक पात्रों और मानव जीवन के अनुभवों से परे किसी सुदूर काल की असाधारण घटनाओं एवं परिस्थितियों से सम्बन्धित आख्यानों के लिये होता है।[12]

मिथक सामान्यतः प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कथात्मक होता है। सामान्य कथाओं से मिथक की यह भिन्नता है कि यह कथा (मिथक कथा) जिन लोगों में प्रथमबार दुहराई जाती है, वे इसे सत्य मानते हैं।[13]

मिथक असीम की ओर उठती हुई सार्वभौम भावना और सत्य का विलक्षण रूप है।[14] मिथक का सत्य सर्वथा आत्मपरक एवं मनोवैज्ञानिक सत्य होता है और जागतिक वास्तविकता को मानवीय भावनाओं की शब्दावली में व्यक्त करता है। यह तर्कणा शक्ति के पूर्व-पूर्ववर्ती मानस-अनुभवों का अभिलेख है।[15]

मिथक स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न होने वाली वस्तु न होकर भावना व आस्था का अनिवार्य रूप है जो समय की सहज धारा में प्रकट होकर समस्त मानव-चेतना को सम्मोहित कर लेता है।[16]

12- इन साइक्लोपीडिया ऑफ सोसल साइंसिज, वोल्यूम द्वितीय, पृष्ठ 220,
13- एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, ई. ए. गार्डनर, वाल्यूम नवम पृष्ठ 118
14- ह्यूमन ऑफ टु ह्यूमन, नीत्शे, भाग-2, पृष्ठ 26,
15- एन ऐसे ऑन मैन, कैसिरर, पृष्ठ 79,
16- मिथ एण्ड सिम्बोलिज्म, सम्पादित-थॉमस एण्ड सेपीक, पृष्ठ 3,

मिथक यथार्थ की अभिव्यक्ति का अस्पष्ट अप्रत्यक्ष और जटिल माध्यम नहीं है, अपितु एक मात्र उपादान है[17]। मिथक व्यक्ति और समाज को संगठित करने वाले माध्यम हैं। सामूहिक अचेतन सिद्धान्तानुसार यह सामूहिक अचेतन निजी उपलब्धि नहीं है। अतः इसका किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध नहीं होता है, वरन इस मानस में आदिम युग से वर्तमान युग तक सम्पूर्ण मानवजाति के संस्कार समाविष्ट रहते हैं। ये संस्कार बिम्ब रूप में होते हैं और इनकी अभिव्यक्ति मिथक के रूप में होती है[18]।

मिथक आदिम जातियों के धर्म के वास्तविक रूप हैं। इसमें सार्थक सत्य होता है। इस प्रकार मिथक आदिम विश्वास एवं नैतिक ज्ञान का व्यावहारिक घोषणा पत्र है[19]।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार मिथक देवी-देवता अथवा अतिप्राकृत पात्र, असाधारण घटनाओं व विभिन्न परिस्थितियों से सम्बन्धित आख्यान, कथा-रूप सामाजिक यथार्थ (जिसमें इसे कहा सुना जाये) कथा तत्व की उपस्थिति, धार्मिक परिवेश और उसकी अलौकिक संसार से सम्बद्धता, सर्वभौम भावना, सत्य का विलक्षण रूप, आत्मपरक एवं मनोवैज्ञानिक, मानव, मनोभावों के अभिलेख आदि हैं जबकि भारतीय मिथक का जन्म धार्मिक अनुष्ठानों तथा अननैतिक, धार्मिक जन धार्मिक व क्रियात्मक पक्ष से होता है। दोनों विचारकों ने मिथक को

17- पोयटिक एण्ड प्रोसेस, जार्ज हक्सेले, पृष्ठ 178

18- द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ सी.जी. जुंग, वाल्यूम 6, 9

19- मिथ इन प्रिमिटिव साइकालोजी, मैलिनोवस्की, पृष्ठ 101

रचना में धर्म को समान महत्व दिया है । दोनों के ही एक निश्चित सामाजिक परिवेश होता है, जहाँ उनको सहासुना जाता है । दोनों ही विचारक मिथक को अलौकिक संसार मानवीय मानों की अभिव्यक्ति तथा काल्पनिकता से सम्बन्धित मानते हैं इस सब समानताओं के साथ-साथ इनमें कुछ विभिन्नतायें भी पाई जाती है भारतीय विद्वान मिथक और भाषा को अन्योन्याश्रित मानते हैं जबकि पाश्चात्य में भाषा से अधिक सम्बन्ध नहीं है ।

मिथक कहीं न कहीं यथार्थ से अवश्य जुड़े होते हैं । वे समाज के विकास तथा इतिहास के अध्ययन में सहायक होते हैं । ये वैज्ञानिक अन्वेषण की मार्ग-प्रशस्ति में भी सहयोग देते हैं क्योंकि विज्ञान मानव-कल्पना को ही यथार्थ रूप देता है जैसे प्राचीन मिथक पुष्पक विमान से प्रभावित होकर ही आज के आधुनिक व्योम-विमानों का निर्माण होना । इस प्रकार मिथक कोरी कल्पना मात्र नहीं अपितु यथार्थ लिये हुये होते हैं ।[20]

मिथक अनुभूति और कल्पना पर आधारित होता है इसलिये मिथक सार्वभौम कल्पना है ।[21] इस प्रकार कल्पनाशीलता के फलस्वरूप मिथक सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना को नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है । यथार्थता को भी मिथकीय चेतना बदल देती है । मिथकीय परिकल्पना ऐतिहासिक बोध को तो विस्मृत कर देती है, लेकिन अपनी प्रकृति से सामाजिक चेतना को भी जगाती है । इतिहास में जब-जब विदेशी आक्रमणों और दासता में हमारी चेतना का पराजय, अपमान

20- छायावादी काव्य में मिथक, डा० चन्द्रपाल शर्मा, पृष्ठ 16,

21- हम विषपायी जनम के, बालकृष्ण शर्मा नवीन' पृष्ठ 429,

और क्रूर प्रतिद्वन्दियों को कुचलने की कोशिश है, तब-तब इन मिथकों ने हमारे राष्ट्रीयचरित्र को सिर्फ अभिव्यक्ति ही नहीं दी बल्कि उन चरित्रों की जय घोषा की है[22]।

मिथक जीवन-मूल्य और कल्पनाशीलता के साथ जुड़ने से स्वच्छन्द प्रवृत्ति का हो जाता है। मिथकीय अनुभूति में लक्ष्य, आवेग की अभिव्यंजना होती है। इनकी अभिव्यक्ति कल्पना के सहारे स्व संवारती है। इसकी चेतना में चिन्तन के साथ अनुभूति का स्पन्दन होता है। मिथक मानव जाति का सामूहिक स्वप्न और सामूहिक अनुभव है[23]।

मिथक का स्वरूप कथात्मक ही नहीं होता है वरन् वे काव्य में विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते हैं। अतएव "वे सभी धारणायें जो जीवन मूल्यों और सामाजिक मूल्यों को आख्यायित करती हैं, मिथक कही जाती हैं। मिथक से कवि संस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखता है। मनुष्य का सर्जनात्मक जीवन सांस्कृतिक अनुभवों के प्रभाव क्षेत्र से बाहर नहीं होता। परिणाम स्वरूप कवि कविता के मिथकों को नये अर्थ देकर बार-बार प्रस्तुत करता है और इस तरह अपनी संस्कृति के संरक्षण के साथ-साथ उसे अधिक सम्पन्न एवं सर्जनात्मक बनाता है। कवियों ने रामकथा को प्रत्येक युग में विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। जो सांस्कृतिक मूल्यों का संकेत देती है, किन्तु सबमें मिथक एक ही है, और वही सर्जनात्मक का निर्देशक है। वास्तव में इस प्रकार मिथक एक आविष्कार है।

22- छायावादी काव्य में मिथक, डा० चन्द्रपाल शर्मा, पृष्ठ 40

23- जन स्वच्छन्दतावाद, डा० अजय सिंह, पृष्ठ 102

आविष्कार का तात्पर्य है किसी प्रस्तुत वास्तविकता में से प्रमुख विचारों की अवतारणा और कल्पना के माध्यम से पुनः अभिव्यक्त करना ।

इस प्रकार वे सभी दिव्य एवं अलौकिक कथायें गीत, कहानियां लोकगीत, पहेलियां, लोक गाथायें, जिनके कलेवर में पुराख्यानों के संकेत है, उनकी घटनाओं का समावेश है, मिथक के अन्तर्गत परिगणित की जायेगी । अष्टादश पुराणों में ऐसी ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कथाओं की भरमार है । यदि हम कहें कि भारतीय संस्कृति के अक्षय कोष पुराण ही मिथक की जन्मभूमि हैं तो इसमें किंचित भी अत्युक्ति नहीं होगी ।

निःसन्देह मिथक आदिम जातीय समुच्चय को अभिव्यक्ति के धार्मिक वृक्ष में लगे हुये सुन्दर सुमन है जिनकी सुरभि से लोक साहित्य का समूचा वातावरण अलौकिक आभा से दीप्त हो उठा है । इनमें प्रारंभिक युगों की आस्था और विश्वास का जल इसके मूल को सदैव अभिसिंचित करता रहता है, जिससे यह मिथक के वृक्ष आज भी हरी विमा से युक्त हैं और जिनकी शीतल छाया में बैठ पाठक को अनूठी शान्ति-सुख का अनुभव होता है । ये मिथक क्षण भंगुर होते हुये भी शाश्वत और सनातन प्रतीत होते हैं । दूसरे शब्दों में ये अविनाशी हैं । शरीर की भांति तो यह विनाश शील हैं किन्तु इनके विनाश में ही नवीन मिथक प्रादुर्भूत हो उठते हैं । आत्मेव जायते पुत्रः के रूप में इन मिथकों में भी ऐसी ही अदम्य शक्ति होती है कि ये नष्ट होकर तुरन्त दूसरे रूप में जीवन्त हो उठते हैं । मिथक के बिना संस्कृति की कल्पना असंभव है । वो आज के स्वर में अपना स्वर मिलाते हुई कह सकती हूँ कि "मिथ गंभीरता से ग्रहीत होते है, किन्तु लोक कहानियां (लीजेण्ड्स) मनोरंजन का विषय मानी जाती है[24]।

24- जनरल एन्थ्रोपॉलाजी, बोआज, पृष्ठ 609

4.3 लोक साहित्यगत मिथक और लीजेण्ड के उदाहरण :

विद्या की अधिष्ठात्री देवी भगवती सरस्वती एक पौराणिक मिथक है । उनके हाथ में वीणा सुशोभित है । वे हंस पर विराजमान है । वे अत्यधिक वात्सल्यमयी हैं । ज्ञानदायिनी की कृपा-कोर और आंचल की छाया का आकांक्षी है लोक-उपासक । एक चित्र देखियें -

"मइया कविता मोय लिखइयों, ग्यान दान दै दइयों ।
दैकें कलम हाथ में मोरे, [illegible] लिखबे कइयों ।।
गोरौ हांथ-हांत में लैकें लिखबो मोय लिखइयो ।
दे प्रकाश हर-जनम मुंडीपै, आंचर डारें रइयो ।।"[25]

वैदिक काल से ही गणेश गणपति के रूप में पूजे जाते रहे हैं । मूषक उनका वाहन है । वे सभी देवताओं में श्रेष्ठ हैं । मोदक उन्हे अत्यन्त प्रिय हैं । पौराणिक मिथक के माध्यम से विघ्नविनाशक भवानी-शंकर का यह स्वरूप देखिये-

"गनपति ग्यान गुनन के सागर, सब देवन में आगर ।
लडुवन को नित भोग लगाउत, [illegible] भर-भर ।।
मूसक पै [illegible] सवारी, [illegible] बाहर ।
कवि प्रकाश [illegible] उजागर ।।"[26]

वेद से रुद्र का वर्णन है । पुराण काल में यही रुद्र शंकर के मिथक के रूप में वर्णित हैं । शशि-शेखर के एक हाथ में त्रिशूल दूसरे में डमरू सुशोभित है । उनके

25- बुन्देलीप्रकाश, ओमप्रकाश सक्सेना "प्रकाश" पृष्ठ 3/4/5/5

26- बुन्देलीप्रकाश, ओमप्रकाश सक्सेना "प्रकाश" पृष्ठ 3/4/5/5

जटा-जूट में गंगा लहरा रही है । सांपों की माला धारण किये, मृगछाला पहिने अपने प्रिय वाहन वृषभ पर सवार हैं । इनके उपासक सदैव अभय हैं -

"जै-जै भोलो भोला संकर, रबै काउ कौ का डर ।
धारें माथ दोज कौ चन्दा, लयें त्रिशूल डमरू कर ।।
जटन बीच लहराई गंगा, सांप सरक रये सर-सर ।
कयं प्रकाश मृगछाला पैरें, चलत नादिया ऊपर[27] ।।

त्रिनेत्र के ताण्डव का मिथक भी पौराणिक एवं विख्यात है । सारे शरीर में भस्म विभूषित है । कमण्डल भांग से परिपूर्ण है -

"बम-बम महादेव शिव-शंकर, बम-बम भोले हर-हर ।
सबइ रमा भभूती अंगइ, भांग कमण्डल भर-भर ।।
आंख तीसरी खोल देत तौ कंपत त्रिलोकी थर-थर ।
करत प्रकाश तानडव ऐसो, सबके दुख लेतइ हर[28] ।।

बुन्देली लोक-साहित्य में भारत मां के मिथक को बड़े कौशल से व्यक्त किया है। इसमें हिमालय, समुद्र, सूर्य, चन्द्र, विन्ध्याचल, सिंध, ब्रह्मपुत्र के पौराणिक, ऐतिहासिक एवं प्राकृतिक मिथकों का एक साथ आनन्द लीजिये -

---

27- बुन्देलीप्रकाश, ओमप्रकाश, सक्सेना "प्रकाश" पृष्ठ 3/4/5/5

28- बुन्देलीप्रकाश, ओमप्रकाश, सक्सेना "प्रकाश" पृष्ठ 3/4/5/5

"झुनझुक हेरन लगी ठगी-सी ठांडी रूप सलोनों ।

सेत हिमांचल को माथे पै मुकुट बंधों सो नोनों ।।

कोट धरो सूरज सो मापै चन्दा किरन पसारें ।

गंग-जमुन बंगाल बगल में सुघर जनेऊ डारें ।।

कराके फैंटा विन्ध्याचल को ठांड़ो लखौ ठगो-सौ ।

दोउ कर सिंध ब्रह्मपुत्री के सुचि भुजदण्ड बधो सौ ।।

सागर परसत लखौ उमंग सों लहरन चरन धुआबै ।

अति सनेह सों सुघर सलौनें मोती आन चढ़ाबै[29] ।।

अथर्ववेद में वर्णित भारत-मां का मिथक कैसा सराहनीय है । "हे धरती! तू मेरी माता है और मैं तेरा पुत्र हूँ ।" धरती मां जो अमृत धरा वसुंधरा है, का एक जीवन्त चित्र देखिये -

"कभी न करवट लेती जननी, बांह वीर मइया की,

कभी न झोली खाली देखी, जा धरती मइया की,

वसुन्धरा है, अमृत भरा है, फिरभी क्यों प्यासा है पंछी

मइया नदी किनारें ।[30]

कृषक-वधू के रूप में बुन्देली वातावरण का सांस्कृतिक मिथक कितना सुन्दर बन पड़ा है । इसकी एक जीवन्त झांकी देखिये -

---

29- बुन्देल भारती अवधेश, पृष्ठ 15

30- बुन्देल भारती अवधेश पृष्ठ 27

"देन कलेऊ जाय खेत पै, रोज खेत की रानी,
जुनरा-चना की रोटी लैकें, धरें शीश पै पानी,
गडुआ भरो महा भोरा को जीरो दओ बघार,
लाल मिरच की चटनी पर है सब विंजन बलहार,
दाहिने लियो ननक सुख मोर,
गुलको कैं कै इस सौंकारु, आ बढ़यो दाजोर[31]।"

बुन्देलखण्ड की वीर- वसुधरा सबको शरण भी देती है । विपत्ति-विदारिन बुन्देल-भूमि में राम-सीता ने भी शरण ली और इसके त्याग ने पर राम को भी दुख भोगना पड़ा । यथा -

"चित्रकूट में अवधपुरी के, आकें सीताराम रहे,
जबनौं रये बुन्देलखण्ड में तानौं पूरन काम रहे,
छोड़ दओ बुन्देलखण्ड तौ परे दोउ हैरानी में
बुन्देलों की सुनो कहानी, बुन्देलों की बानी में ।
पानीदार यहां का पानी, आग यहां के पानी में[32]।"

स्त्री सुमन-सी सुकुमार है किन्तु जब वह अत्याचार का समूलोच्छेदन करने का व्रत ले लेती है तब वह वज्र सी कठोर काली, रणचण्डी का रूप धर शत्रु का दमन करके ही दम लेती है । "काली" के मिथक के साथ झांसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई की बांकी झांकी देखिये जिसे मिथक का सुंदर उदाहरण कहा जा सकता है-

---

31- बुन्देलभारतीय, अवधेश, पृष्ठ 36,

32- बुन्देल भारती, अवधेश, पृष्ठ 37,

"जिनके राज न सूरज डूबै, नाम सुनें सें चौंक परें,
जहँ झांसी फिर फांसी बनकें अंगरेजन कें परी गरें,
दिखा परी झांसी की झांकी, झांसी वाली रानी में;[33]

× × × ×

"पानीदार बुन्देला राजा छत्रसाल तलवार धनी,
जीके मारें सीमा भीतर घुसन न पाई मुगल अनी,
सुख की निदिया सोउन न पाओ तहन साह जिंदगानी में।"[34]

× × × ×

"जहाँ समाधि [illegible] हीर [illegible], अमरसूर हरदौल भये,
[illegible] राखबे [illegible] को [illegible], [illegible] में [illegible] ही बौल भये,
[illegible] रा-सौ तन मन धन सौ दओ अपनी भरी जवानी में।"[35]

उक्त तीनों उदाहरणों में क्रमशः वीरांगना लक्ष्मीबाई झांसी की रानी, बुन्देल-केशरी छत्रसाल एवं भाभी को मातृवत मानने वाले वीरलाला हरदौल की प्रेरक मार्मिक एवं मनोहारी लीजेण्ड हैं।

नायिका में दीपावली की कल्पना रीतिकालीन कवियों में अधिक है, लेकिन इनके बिम्बों में प्रकाश के झिलमिलाते वृत्तों की चमक-दमक ही दिखाई पड़ती है, [illegible] प्रस्तुत फाग में दिवाली के अवसर पर पोतनी माटी से ढिक

33- बुन्देल भारती, [illegible], पृष्ठ 36,
34- बुन्देल भारती, [illegible] पृष्ठ 36,
35- बुन्देल भारती, [illegible], पृष्ठ 36,

झाड़ना, गोबर से ढरेंन सवारना, चौक पूरना फिर हल्दी से टीककर अक्षत चढ़ाकर दीपक रखना तथा फुलझड़ी जलाना जैसी क्रमिक क्रियाओं से दिवारी का सांस्कृतिक मिथक उजागर होता है -

"मौं पै घुंघटा की ढिक डारें, नैन ढरेंन समारें ।
पूरें चौक मांग सेंदुर दै, आरवत टीका पारें ।।
बंदरा दै कें करें अमावस, दोउ नैन उजयारें ।
कयं प्रकाश दिवारी आ गई, हंसत फुलझरी बारें ।।"[36]

कामदेव और रति का पौराणिक मिथक बुन्देली लोक साहित्य में जहां तहां चित्रित किया गया है । एक फाग में देखिये जिसमें कामदेव ने विश्व विजयी अश्व छोड़ दिया है वह रति के भी मानको भंग कर रहा है -

"घुरवा कामदेव ने छोरे, मान रती के टोरे ।
सरद जुनइया छिटक परी सो सबै प्रेम रस बोरे ।।
बान चला पचवांन व्यार के, कितनन के हिय फोरें ।
कयं प्रकाश [illegible] में, तामें करे [illegible]ोरे ।।[37]

लोककवि ईसुरी, शिवानन्द बुन्देला एवं दुर्गेश दीक्षित ने क्रमशः धारवर, कृष्णा और सीता के माध्यम से जिन दार्शनिक मिथकों का निर्माण किया, वह बुन्देली मेधा के परमोत्कर्ष हैं । मानव-देह की क्षण भंगुरता सांगरूपक के द्वारा अभिव्यक्त की गई-मनोरम और बुन्देली परिवेश की सुन्दर झांकी "बखरी" के रूप में अत्यधिक उल्लेख्य और प्रेरक है -

---

36- बुन्देली प्रकाश, ओमप्रकाश सक्सेना "प्रकाश" पृष्ठ 79,

37- बुन्देली प्रकाश, ओमप्रकाश सक्सेना "प्रकाश" पृष्ठ 58

{1} "मरकरी बसियत है भारे की, दई पिया प्यारे की ।

कच्ची भीत उठी माटी की, छाइ फूस चारे की ।।

बेबन्देज बड़ी बेवाड़ा जेइ में दस द्वारे की ।

एकऊ नईं किंवार-किवरिया, बिना कुची तारे की ।

ईसुर चाय निकारो जिदना हमें कौन बारे की[38] ।।"

{2} बड़े भाग से तुमहैं मिली है, जा दछा की गाड़ी,

दिन छिन धरे लोटियो अंध न छइयो करकैं ठांडी,

संसय-निसा घिरन ना पावे, भय-भरका मेंगिरन न पावे,

ईबैहद में दोस प्रमान पै स्वारथ डारत है डांकी ।

तुमहो सरका गाड़ीवान के जतन से गाड़ी हांकौ[39] ।।"

{3} एड़ी टेड़ी बांसुरी बजावे वारो कौन,

सीता चली मायकें लौटावे वारो कौन ?[40]"

इस लोक पहेली में लोक कवि की लाक्षणिक प्रतिभा प्रदर्शित होती है । यहाँ सीता का आशय संस्कृति से है जिसे हमारे तपस्वी पूर्वजों ने अपने जीवन का मूल्यवान अंश देकर रचा है, वही संस्कृति रूपी सीता अपने मायकें अर्थात रसातल को जा रही है । युग की विषम परिस्थितियों को ऐड़ी-टेढ़ी बांसुरी कहा गया है।

पुरवाई लोक गीत के घर की वस्तु है । पुरवाई के झोकों को लोकगीत ने न जाने कितनी बार अर्घ्य दिया होगा । जरा चित्र तो देखियें । बैलगाड़ी

38- बुन्देली प्रकाश, ओमप्रकाश सक्सेना "प्रकाश" पृष्ठ 5, फाग 21,

39- बुन्देली काव्य, सम्पा. डा0 हरगोविन्द, डा0 रामस्वरूप खरे, पृष्ठ 36,

40- बुन्देलीकाव्य, सम्पा. डा0 हरगोविन्द, डा0 रामस्वरूप खरे, पृष्ठ 53,

चली जा रही है । कोई कह उठा- पुरवाई के बादल उमड़ आये हैं,बैलों को तेज करो । देखते-ही देखते घूंघट को ग्राम्य-बधू की आँखें भी बरस पड़ीं,उसके गाल भीग गये । आँसुओं का नाम नहीं लिया गया,उनकी ओर संकेत भर किया गया है । वियोग के आंसू हैं ये शायद पर वियोग ही क्यों ? गरीबी के क्यों नहीं ?,ग्राम्य बधू का घूंघट भी तो पुरवाई के मेघ सा श्यामल है,और मेघ बरसने पर जैसे धरती भीगती है,घूंघट को भीग रहे हैं,बधू के गोरे-गोर कपोल-गाल । लोकगीत आंसुओं को झट देख लेता है । इसका वह चिर अभ्यस्त है । प्रमाण में प्रस्तुत हैं मुंशी अजयमेरी का जीवन्त लोकगीत -

"गाड़ी वारे मसक दै बैल
अबैं पुरबइया के बादर अन आये
कौना बदरिया अर्ई,रसिया
कौना बरस गये मेघ
अबै पुरबइया के बादर अन आये
उग्गन बदरिया अर्ई,रसिया
पच्छन बरस गये मेघ
अबै पुरबइया के बादर अन आये
घुंघना बदरिया अर्ई,रसिया
गलुअन बरस गये मेघ
अबै पुरबइया के बादर अन आये[41]।

41- धरती गाती है,देवेन्द्र सत्यार्थी,पृष्ठ 108, 109

इस प्रकार बुन्देली लोक साहित्यान्तर्गत परिगणित किये जाने वाले उपांगों लोक कथा, गाथा, लोक पहेली एवं लोकगीतों में स्थान- स्थान पर जहां मिथकों के दर्शन होते हैं वहां साथ ही साथ लीजेण्ड के भी सुहावने, मनोरम एवं मनोरंजक रूप दृष्टिगोचर होते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बुन्देली लोक साहित्य में पौराणिक मिथक, आध्यात्मिक मिथक, दार्शनिक मिथक, प्राकृतिक मिथक, मानवीकरण मिथक प्रचुरता से उपलब्ध हैं । शृंगार रस तो फाग का प्राण तत्व ही है । मिथक से जहां कवि का प्रतिपाद्य अभिव्यक्ति पाता है, वहां काव्य-सौन्दर्य में भी वृद्धि होती है । सरस रसाभिव्यक्ति और तीव्र भावानुभूति के साथ अर्थ- गांभीर्य की योजना मिथक के माध्यम से ही संभव हो पाती है ।

"वास्तव में बुन्देली लोकगीतों का बचपन धर्म की छाया में व्यतीत होता है । गीतों की काफी संख्या ऐसी है जिनका जन्म पूजा, पर्व, त्यौहारों तथा, व्रतों के साथ होता है । कुछ देवताओं की पूजा के इर्द-गिर्द घूमने वाले गीतों में जनता के रीति-रिवाज हमें अपनी आत्म कथा सुना देते हैं । जन्म, विवाह तथा मृत्यु सम्बन्धी अन्ध विश्वास, शकुन, अशकुन, भूत-प्रेतों की पूजा के मंत्र और गीत, जादू टोने और पशु पक्षियों तथा पेड़ों सम्बन्धी विश्वास, इन सबके अध्ययन से हम बुन्देलखण्ड की नब्ज़ पर हाथ रख सकते हैं । इस श्रेणी के मुख्य गीत हैं- माता के भजन, कार्तिक के गीत, बाबा के गीत नौरता गीत, गाथात्मक वीरगाथा-गीत, राछरे, पवारे, लोरिया बच्चों के खेल-गीत, सोहरे, विवाह गीत, साजन, बनरा, बन्नी, बधाई, गारी श्रावण गीत, मल्हार, दिलवारी, फागें, लेद, सैरे, एवं जातीय गीत । इसके अतिरिक्त नृत्य और कथा गीत[42] । इसी कोटि में आ जाते है ।

42- धरती माता है, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृष्ठ 117

4.4 मिथक और लोकसाहित्य का अन्तर :

मिथक के सम्बन्ध में विगत अध्यायों में भली प्रकार प्रकाश डाला जा चुका है । वास्तव में मिथक वे संज्ञा एवं अव्ययवाची शब्द हैं जिनमें अतीत में घटित घटनाओं का धार्मिक स्वरूप विद्यमान है । जैसे शरीर में आत्मा का वास होने से शरीर क्षण भंगुर और अस्थायी होते हुये भी उससे जीवन्त और चमत्कृत रहता है ठीक उसी प्रकार लोक-साहित्य के शरीर में आत्म तत्व की भाँति मिथक की आत्मा संनिनिहित रहती है । आत्मा तत्व है, मिथक भी तत्व है । पर मिथक स्वयमेव अपना कुछ विशिष्ट अर्थ नहीं रखते जब तक कि वे भाषा कावलेवर धारण न कर लें । प्रकारान्तर से मिथक अर्थ की भाँति शब्द और अर्थमें मौजूद रहते हैं । ये मिथक इतिहास में प्रयुक्त होने से ऐतिहासिक, धर्म-ग्रन्थों में प्रयुक्त होने से धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में प्रयुक्त होने पर सांस्कृतिक-से दृष्टिगोचर होने लगते हैं ।

प्रारम्भिक काल में मिथ धर्मगाथा के लिये प्रयुक्त किया जाता था फिर पौराणिक युग में पुराख्यान के रूप में प्रचलित हो गया । इसी मिथ शब्द से वर्तमान युग में इसके स्थान पर "मिथक" शब्द का शुभागमन हुआ जो इस समय बहुप्रचलित है।

हीरा के संग से जिस प्रकार साधारण काँच बहुमूल्य वस्तु की संगति पा बहुमूल्य बन जाता है उसी प्रकार मिथक सच्चे जौहरी अथवा पारखी के हाथ में पहुँचकर विशिष्ट अर्थ वाले हो जाते हैं, उनमें धार्मिक, आध्यात्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत की आभा छिपी रहती है । यही कारण है कि एक-एक मिथक पर अनेकानेक ग्रन्थों की सृष्टि की जा सकती है । निःसन्देह मिथक एक बहुआयामी तत्व है ।

अपने महत्व के कारण मिथ कभी लोक साहित्य की एक स्वतंत्र विधा थी किन्तु आज उसे आख्यान की भांति लोक-कथा का एक भेद मात्र मान लिया गया है । यों तो यह सभी निर्विवाद रूप से स्वीकार करते है कि कहानी काल्पनिक और मनोरंजनार्थ ही प्रणीत की जाती है । किन्तु आख्यान में प्रयुक्त सभी मिथक पूर्णतया सत्य होते है । हां इतना अवश्य है कि इनके मूल में कोई न कोई ऐतिहासिक घटना अथवा पुराख्यान अवश्य विद्यमान रहता है जो बहुत समय पश्चात अतिरंजित हो जाया करती हैं ।

कतिपय विद्वान मानते हैं कि मिथ का संसार प्रायः हमारे आनुभविक यथार्थ के मेल में नहीं होती । इसमें अति प्राकृत शक्तियों द्वारा और घटनाओं या अतिप्राकृत शक्तियों द्वारा अनुशासित प्राकृत पात्रों और घटनाओं का वर्णन मिलता है। ये पात्र और घटनायें विश्व की सृष्टि और इसकी विभिन्न विचित्रताओं तथा रहस्यों की व्याख्या करते हैं । इस प्रकार मिथ का प्रयोजन प्राक् सृष्टि के आदिम युग की उस वास्तविकता की व्याख्या प्रस्तुत करना है जो वर्तमान के संदर्भ में भी अपनी सार्थकता रखती है ।

मिथ का मूल स्वरूप यद्यपि ऊपर से अत्यन्त लघु कलेवरी प्रतीत होता है पर, उन पर गंभीरता पूर्वक विचार करने पर वे विटप की भांति विशाल और और विश्व व्यापी बन जाते हैं । इस प्रकार मिथिक धारणायें विश्व के गठन और उत्पत्ति सम्बन्धी आधारभूत विचार हैं । ये मिथिक प्राणियों के जीवन की घटनाओं और हमारे समकालीन प्रायः परिचित व्यक्तियों के अद्भुद कृत्यों और कष्टों से सम्बन्धित लोक कहानियों में प्रविष्ट हो जाती हैं । सुप्रसिद्ध लोक साहित्य अध्येता बोआज के मतानुसार "वे कथायें मिथ हैं जिनमें प्राकृतिक व्यापारों का मानवीकरण किया गया है और जिन्हें किसी प्रागैतिहासिक युग से सम्बद्ध कर दिया गया है । इस प्रकार मिथ वह कथा है जो किसी समुदाय द्वारा सत्य मानी जाती है ।

किन्तु तत्थ की धारणा सदैव एक जैसी नहीं रहती इसलिये टायलर के स्वर में अपना स्वर मिलाते हुये कहा जा सकता है कि सम्मान्यता के सामाजिक प्रतिमान के बदल जाने पर एक युग का मिथ दूसरे युग की लोक कहानी हो जाता है। साथ ही साथ यह भी तत्थ है कि प्रथाओं और विश्वासों के समर्थन में प्रयुक्त होने पर लोक कहानी मिथ बन जाती है।

"लोक विश्वास लोक जीवन के सामान्य निष्कर्ष एवं लोक संस्कृति के आवश्यक अंग हैं।"[43] सुमनेर नामक लोक संस्कृति के (फोकलोर) प्रकाण्ड पण्डित ने लिखा है कि "लोक विश्वासों का निर्माण अकस्मात् अथवा मिथ्या ज्ञान पर आश्रित असंगत तथा विवेकहीन क्रिया के कारण हुआ है।"[44]

मैलीनोस्की की धारणा है कि मिथों में इतिहास का स्वर रहता है। अधिकतर कार्यवादी मिथ को सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण और दृढ़ीकरण का माध्यम मानते हैं।

ये सम्पूर्ण मिथक हमें प्रत्येक देश के लोक साहित्य में उपलब्ध होते हैं। मैक्समूलर की धारणा के अनुसार -"मिथ न तो इतिहास का रूपान्तर हैं, और न इतिहास के रूप में स्वीकृत नीति-दर्शन। यह भाषा की प्रकृति में संन्निहित दुर्बलता या विकृति का परिणाम है। भाषा के निर्देश अस्पष्ट हुआ करते हैं। और जब तक भाषा विचार के समरूप नहीं हो जाती (जो कि वह कभी नहीं हो सकेगी) तब तक वह इस अस्पष्टता से मुक्त नहीं हो सकती। भाषा की यही अस्पष्टता मिथकों को जन्म देती है।

43- भारतीय लोक विश्वास, डा0 कृष्णदेव उपाध्याय, प्रकाशकीय अंश से।

44- वहीं, डब्लू. जी. सुमनेर की फोकवेज पुस्तक के पृष्ठ 84 से,

संस्कृति के निर्माण में और लोक साहित्य किसी भी देश की पूरी संस्कृति की अनेकानेक अभिव्यक्तियों में से एक है। नगरों के योग की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कभी भाषाविज्ञानिकों ने नगर या संस्कृति-भाषा के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों में प्रचार की व्याख्या तरंग-सिद्धान्त के आधार पर की थी। जल में उत्पन्न होने वाली तरंग या लहर अपने पार्श्ववर्ती क्षेत्र को प्रभावित करती और अपनी संचार क्षमता की सीमा तक क्रमशः क्षीण होती हुई, पहुंचती है। इसी प्रकार संस्कृति के केन्द्र या केन्द्रों (नगरों या उपनगरों) की भाषा अपने चारों ओर के गांवों के भाषा-रूपों को, अपने वाहक माध्यमों की संचार-क्षमता की विकासता की सीमा तक, प्रभावित करती हैं। यह संस्कृति मात्र और लोकवार्ता के सम्बन्ध में भी सत्य है। नगरों के विश्वास, उत्सव, शिष्टाचार, कथा, गीत आदि उनके पार्श्ववर्ती ग्राम-समुदायों में प्रसार पाते रहे हैं, और सामान्य संस्कृति के अंग बनते रहे हैं। हान्स नाउमान ने तो इस बात पर इतना अधिक बल दिया है कि उसने लोकवार्ता मात्र को उच्च या अभिजात परम्पराओं की अनुकृति घोषित कर दिया है। उसने इस पर विशेष बल दिया कि लोक (असंस्कृत समुदाय) में रचनात्मक क्षमता नहीं होती। लोक रचना नहीं करता, वह तो अभिजात सामग्री की पुनर्रचना ही कर सकता है।

वस्तुतः हर संस्कृति के दो आयाम होते हैं जिन्हें क्रमशः छोटी परम्परा और "बड़ी परम्परा" कहा जा सकता है।[45] उसमें ये दोनों परम्परायें समानान्तर रूप में सक्रिय रहती हैं और एक दूसरे को प्रभावित करती रहती है। छोटी परम्परा स्थानीय या विशेष तक सीमित या अपढ़ ग्राम-समुदायों की होती है। बड़ी

45- पेजेण्ट सोसायटी एण्ड कल्चर, द्वितीय आवृत्ति, सन् 1961ई0 राबर्ट रेड फील्ड, फोनिक्स बुक, शिकागो।

परम्परा बहुमान्य और समाज के कुछ चिन्तनशील व्यक्तियों द्वारा विद्या केन्द्रों या धर्मपीठों में विकसित हुआ करती है। निरन्तर सम्पर्क और पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया के क्रम में बड़ी परम्परा छोटी परम्परा बन जाती है और छोटी परम्परा बड़ी परम्परा में बदल जाती है। वरूण पूजा जो बड़ी परम्परा थी आज एक समुदाय विशेष [सिंधी समुदाय] तक सीमित होकर छोटी परम्परा में परिवर्तित हो गयी है और आर्येतर जातियों की शिव-पूजा जो छोटी परम्परा थी, वेदोन्तर कालोंमें बड़ी परम्परा बन गई है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों की सामग्री रामकथा और महाभारत युद्ध की लोक गाथाओं से गृहीत हुई है जिसके साक्ष्य स्वयं इन रचनाओं में ही मिल जाते हैं। मुल्ला दाउद के "चन्दायन" का मूल लोरिक चन्दा की वह प्रसिद्ध गाथा है जो आज भी लोरिकायन के नाम से गायी जाती है। सूफी प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन करने वाले आलोचकों ने यह परिलक्षित किया है कि उनकी वस्तु या तो मौखिक परम्परा की कहानियों से ली गई या उनके आधार पर कल्पित हुई है। इस प्रकार इन दो परम्पराओं को एक दूसरे से विछिन्न नहीं माना जा सकता। अतएव लोक साहित्य की संकल्पना जितनी सार्थक है, उतनी ग्राम साहित्य की नहीं।

इसका स्वाभाविक अनुलोम निष्कर्ष है कि कृषक वर्ग या गावों और नगरों में रहने वाला अल्प संस्कृत, अशिक्षित या अर्द्ध शिक्षित समुदाय ही लोक नहीं है। लोक क्षेत्र विशेष का पूरा जन समुदाय है। यह विभिन्न सांस्कृतिक, आर्थिक इकाइयों की वह समष्टि है जिसे समस्त जनता या समूचा जन-समुदाय कहा जाता है और जिसके अन्तर्गत शिक्षित और अशिक्षित तथा साधारण और असाधारण सभी प्रकार के लोग आ जाते है[46]। लोक और

46- लोक साहित्य और संस्कृति, डा० दिनेश्वर प्रसाद।

साहित्य (या वार्ता) के अभिप्रायों पर पृथक-पृथक विचार करने पर लोक साहित्य की जो सम्मिलित संकल्पना उभर कर सामने आती है, वह केवल यही है कि यह लोक का सामुदायिक मौखिक साहित्य है । इसके अन्य लक्षण अपरिहार्य न होकर सापेक्ष और किन्हीं उदाहरणों में वैकल्पिक हैं । ऐसे ही सापेक्ष लक्षण है । इसका परम्परागत होना और इसे अज्ञात रचयिताओं की कृति मानना । कुछ अन्य लक्षण भी है जो संशोधन की अपेक्षा रखते है ।

सामान्य रूप में लोक साहित्य को परम्परागत मानना युक्त संगत है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें कुछ भी नया नहीं होता । केवल परम्परा या अतीत का रिक्थ होने पर इसके लिये प्रवाह बना रहना संभव नहीं है । कभी इस बात पर बल दिया गया था कि यह अवशेषों का अध्ययन है और आधुनिक युग में इसका विकास नहीं हो सकता । किन्तु लोक साहित्य यदि परम्परा है तो ऐसी, जिसका बदलती हुई परिस्थितियों के साथ नवीनीकरण होता गया है । इसके रूपान्तरण की प्रक्रिया के विश्लेषण में यह देखा गया है कि यह अपने हर प्रस्तुतीकरण में अपने वाचकों द्वारा परिवर्तित हो जाती है । इसमें होने वाले परिवर्तनकाल के दोनों आयामों-अतीत और वर्तमान का स्पर्श करते हैं ।

इतना ही नहीं इसमें परम्परागत सामग्री के संशोधन और रूपान्तरण के अतिरिक्त एकदम नयी सामग्री का समावेश ही रहता है । जिसे विकासशील लोक साहित्य कहा गया है, यह किसी न किसी सीमा तक हर युग का सत्य है । जिस अर्थ में परम्परागत सामग्री लोक साहित्य है उसी अर्थ में विकासशील लोक साहित्य भी ।

वस्तुतः लोक साहित्य का केन्द्रीय लक्षण है सामुदायिकता इसकी अपेक्षा में ही इसके अन्य लक्षण एक संकुल की रचना करते हैं । यह सामु-

दायिकता या लोकप्रकृति केवल अनुष्ठान और क्रियामूलक गीतों, शिक्षापरक कहावतों और कथाओं या मनोरंजनात्मक पहेलियों, गाथाओं, और कहानियों के रूप में ही नहीं दिखाई पड़ती, वरन् इस बात में भी कि लोक रचनायें मौन पाठ की अपेक्षा लोक के सदस्यों द्वारा या उनके बीच मुखर पाठ या प्रदर्शन के विषय है। गाथायें, कहावतें, गीत और पहेलियां गायक या वाचक द्वारा सुनाई जाती हैं इसलिये उनकी स्थिति में सदैव एक दूसरा पक्ष, (श्रोतापक्ष) बना रहता है। वाचक और गायक अपने श्रोताओं की मनः स्थिति और प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा में इनके कुछ अंशों को विस्तार देते है और कुछ को संक्षिप्त करते जाते हैं। उनका हर वाचन या गायन रचना का मात्र पुनः प्रस्तुतीकरण न होकर पुनः सृजन हो जाता है। इस अर्थ में लोक साहित्य एक प्रकार का नाटक है, जिसका वाचक या गायक सदैव अभिनेता की भूमिका में रहता है, और अपने सामाजिक दबाव का हर समय अनुभव करता है। यह दबाव ही लोक साहित्य की निरन्तर परिवर्तनशीलता की व्याख्या करता है। इसी से लोक साहित्य, जो व्यक्तियों की रचना है, व्यक्ति रचनाकार से अलग हो जाने पर अपने मूलरूप में नहीं रह जाता। यह पूरे समुदाय का हो जाता है और इसके सदस्यों द्वारा इस सीमा तक परिवर्तित हो जाता है कि इसमें किसी खास व्यक्ति के व्यक्तित्व की छाप को नहीं ढूंढ़ा जा सकता। अपने काव्य और प्रसार क्षेत्र की विशालता के अनुपात में ही यह अपने रूपान्तरों की संख्या का विकास करता जाता है। अनिश्चित पाठ, जो शिष्ट साहित्य की तुलना में इसकी सीमा है, इसकी शक्ति और जीवन का रहस्य भी है। यही इसे अपने समुदाय के शिष्ट साहित्य की तुलना में अधिक प्रतिनिधिक बनाता है।

मिथक लोक कहानियों, लोकगीतों, लोक पहेलियों, लोक गाथाओं, और लोक विश्वासों में सभी में हो सकते हैं । इन सभी का समुच्चय ही लोक साहित्य कहा जाता है । समूचे बुन्देली लोक साहित्य में विभिन्न विभिन्न मिथक दीपों की भांति अपनी-अपनी दिव्य आभा विकीर्ण करते हुये हमारे लोक का मार्ग प्रशस्त कर रहे है ।

पंचम अध्याय

5.0 बुन्देली लोक साहित्य में मिथकीय अभिव्यक्ति :-

जैसा कि पूर्व में उल्लिखित किया जा चुका है कि बुन्देली लोक साहित्य का अक्षय भण्डार है । इसके अन्तर्गत कथायें, गाथायें, आख्यायिकायें, प्रहेलिकायें, लोकगीत एवं अर्वाचीन समूचा लोक साहित्य समाविष्ट हो जाता है । प्रहेलिका लोक कथा की अपेक्षा सर्वाधिक मिथकीय अभिव्यक्ति हमें लोकगीतों में ही उपलब्ध होती है क्योंकि लोकगीत वास्तव में हृदय से निःसृत जन-मानस की आकुल औरअनुभूत वाणी है । लोकगीत प्राचीन होते हुये भी चिरनवीन है, उसकी निश्छल अनुभूति एवं सरस अभिव्यक्ति उसे मधुर बनाकर ग्राम्य-बाला के अकलुष और अनछुये यौवन की भांति मादक बनाती है, किन्तु इस मादकता में अशृंखलता कदापि नहीं होती वरन् अनन्य तन्मयता होती है ।

"चिर परिचित शब्द, चिरपरिचित बातें, चिर परिचित स्वर- यही लोक गीत की शक्ति है । कोई गीत पहाड़ी पगडण्डी के समान ऊंचा-नीचा, कोई समतल प्रदेश के दूर तक फैले हुयेक्षितिज की छवि लिये हुये है । नीरव उदास दोपहरी के गीतों का रंग और होता है, रात्रि के गीतों का और । प्रत्येक ऋतु, प्रत्येक उत्सव, कातने-बुनने के धन्धे, जुताई-बुआई और निराई-कटाई की सामाजिक क्रियायें- सभी के साथ गीतों के टांके लगे हुये हैं । मक्के की रोटी जैसा सूर्य उदय होता है, सांझ हो आती है, रात बीत जाती है और समय-चक्र के साथ-साथ लोकगीत के पहिये निरन्तर चलते रहते हैं । किसी क्लान्त थकित युवती का चित्र, जिसका किसी भी काम में जी नहीं लगता, किसी वन प्रान्तर काचित्र, एकाकीपन में गुथा हुआ, मातृ-वत्सला की कोई कड़ी, ग्राम-देवता का आवाहन, अच्छी फसल के लिये प्रार्थना, किसी रीति नीति, प्रथा या विश्वास का संकेत,

कोई वीरगाथा, प्रेमगाथा-ऐसी बहुमुखी सामग्री बार-बार लोकगीत के अटपटे शब्दों में प्रस्तुत की जाती रही है- युग-युगान्तर से । लोक-मानस की एक-एक रेखा, सामयिक बोध की एक-एक अवस्था, सामूहिक सुख-दुःख और सामूहिक विजय-पराजय, प्रकृति की गति विधि, वृक्ष, पशु-पक्षी, और मानव के पारस्परिक सम्बन्ध, बलि, पूजा, टोने-टोटके, लोकगीतों की पृष्ठभूमि में समाज विज्ञान के असीम भण्डार का अध्ययन किया जा सकता है[1]।

डा० मोतीचन्द के कथनानुसार "उस महान सूक्तकार की दृष्टि में उनकी मातृभूमि, मिट्टी, पहाड़ों, जंगलों, और नदियों से बनी केवल एक महती भूमि -खण्ड ही नहीं है । उसके लिये धरती जीती-जागती माता है, जिसके दूध से पलकर हम प्राणवान होते हैं, जिसके आंचल में छिपी धनराशि को पाकर हम संसार के सुखों को भोगते हैं, जिस पर हम जीते हैं, हंसते हैं, लड़ते-झगड़ते हैं और अन्त में मरकर फिर उसी में मिल जाते हैं[2]।" पृथ्वी सूक्त की आवाज आज भी इस विशाल देश में प्रतिध्वनित हो जाती है- "माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः[3]" अर्थात् धरती मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ ।

धरती माता की मिथकीय कल्पना बुन्देली लोकगीत में इसप्रकार सजीव और जीवन्त हो उठी है-

"धरती माता तैंने काजर दये
सें दुरन भरलई मांग
पहर हरिअला ठांड़ी भई
तैंने मोह लियो सब संसार"

---

1. धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृष्ठ 5, प्रस्तावना से ।
2. धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृष्ठ 20,।।
3. अथर्ववेद, पृथ्वीसूक्त,

अर्थात हे धरती माता तुमने आंखो में काजल डाल लिया, सिन्दूर से मांग भर ली, हरयाले वस्त्र पहिनकर तुम खड़ी हो गई हो और तुमने समस्त संसार को मोह लिया है । इसमें धरती के नारी और मातारूप का मिश्रण बहुत सुन्दर है । इसी भावना के अन्य रूप यहां द्रष्टव्य है :-

"धरती माता तो में दो भये, इक आंधी इक मेय
मेय के बरसे साखा भई जा में लिपट गये संसार ।"

"देश में अनेक युग प्रारम्भ हुये और उनका अन्त होता रहा । पर धरती का चिर नवीन रूप निहार कर आज भी जनता की आंखें सदैव की भांति ही तृप्त हो उठती हैं । आज भी जनता को मातृभूमि की धूलिप्रिय है । भूरीलाल और काली मिटिट्यों की गीत आज भी हमारे लोक साहित्य में सुरक्षित हैं । आवश्यकता तो केवल इस बात की है कि एक छोर से दूसरे छोर तक देश की आत्मा को टटोल कर देखने का यत्न किया जाय ।" इस देश की सन्ततियों की यद्यपि वेषभूषा, खान-पान, रीति-रिवाज, बोलियां और भाषायें भिन्न हैं फिर भी वह एकता के अखण्ड सूत्र में आबद्ध है । तभी तो-

" राधा नें रूप सजो सोरउ सिंगार । कुंजन में नन्दनवन हो रऔ बलहार ।
काये ना कान्हा फिर लेवें औतार। धरती में इतनो है प्यार[4] ।"

मानवीकरण के माध्यम से इसी धरती माता का गुणानुवाद करते हुए एक आकर्षक प्राकृतिक मिथक द्रष्टव्य है -

---

4- बुन्देली काव्य, सम्पा० डा० हरगोविन्द, डा० रामस्वरूप खरे, पृष्ठ 60,

"मलयागिर की अत ऊँची पहारियाँ, विन्धकी पारियाँ देख लजाउतीं ।
धरती पै बुन्देल की जन्मबे खौं, देवन की तिरियाँ ललचाउतीं ।
कत मित्र जु तीनउँ बेरें सुगन्ध के, बोजना लैकें डुलाउवे आउतीं ।
झुक झूमतीं, लूमतीं, पाँवन चूमतीं, छेउ रितें परकम्मा लगाउतीं[5] ।"

इस प्रकार अपने प्यारे भारत राष्ट्र को, अपनी महीयसी गरीयसी धरती माता को बुन्देली लोक साहित्य में बड़ा ही गरिमा मय एवं श्रद्धास्पद भाव प्राप्त है । भारत माता की कल्पना आज की नहीं अपितु वेदकालीन है। यह पौराणिक मिथक अत्यन्त साध्य एवं प्रेरक है ।

यह प्यारा राष्ट्र त्यौहारों, उत्सवों और पर्वों का देश है । इसमें अनेक प्रकार के वर्ण, जाति और सम्प्रदाय के लोग आदिकाल से रहते चले आये हैं। उनके अपने -अपने सम्प्रदाय एवं मत प्रवर्तक हुये, महान पुरूष हुये जिन्होंने अपने स्वार्थ को तिलांजलि देते हुये हंसते-हंसते अपने प्राण-प्रसून राष्ट्र-देवता के चरणों में समर्पित कर दिये । ऐसे साहसी, वीर एवं पराक्रमी नर-श्रेष्ठ "शहीद" की संज्ञा से अभिमण्डित किये गये ।

बुन्देलखण्ड केशरी चम्पतराय, छत्रसाल, वीरसिंह देव(प्रथम) झांसी की महारानी वीरांगना लक्ष्मीबाई, पृथ्वीराज, आल्हा, ऊदल, अभई, ब्रह्मा, ताहर, ब्रह्मा लाखन, इन्दल, महाराज परमर्दिदेव, मल्हना, जगनिक, कारसदेव, एलादी, हरदौल, जगदेव, अमानसिंह प्रभृति के अनूठे ऐतिहासिक योगदान को कदापि भुलाया नहीं जा सकता है । देश के ऊपर प्राण न्यौछावर करने की हौंस, अदम्य उत्साह, अपराजिय वीरता

5- बुन्देली काव्य, सम्पा0डा0 हरगोविन्द, डा0 रामस्वरूप खरे, रामचरण हयारण "मित्र" की रचना "बुन्देलखण्ड महिमा" से अवतरित । पृष्ठ 6

के कारण ये सभी शूरवीर, साहसी और राष्ट्रभक्त ही जन-नायक बनकर युग-युगों तक प्रेरणा के स्रोत बने रहेंगें । कौन कह सकता कालान्तर में ये ही "ऐतिहासिक मिथक" का स्वरूप धारण कर लें । इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं । सुभाष, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद महात्मा गांधी भी अप्रतिम उदाहरण हैं । आगे आने वाली पीढ़ियां इनसे सतत् प्रेरणा लेती रहेंगी ।

सम्पूर्ण आल्हखण्ड युद्धों के वर्णन से भरा हुआ है । वीर रस के माध्यम से आल्हा-ऊदल अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने को चल दिये । तब वे कहते है -

"कै तो खुपड़ी खुपड़िन मिलि है कै मैं गया देउँ करवाय ।"

आल्हा अपने सैनिक साथियों को ललकारते हुये कहते हैं-

"नौकर चाकर तुम नाहीं हो, तुम सब भैया लगो हमार ।

पांव पिछाड़ी जो पड़ि जै है, बुड़िहै सात साख को नाम ।"

जब आल्हा परमाल के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर निष्क्रिय बैठे रह गये, तब उनकी माता ने चुभते हुये वचन कह डाले -

"बिटिया होती मोरी कोखि तें, केहु राजा को देती बिआहि ।

तिनकी कुम्मक मैं ले औती, और महोबो लेती बचाहि ।"

व्यंग्य अत्यन्त तीखा था, अस्तु वह कारगर सिद्ध हुआ । लाखन का पराक्रम अवर्णनीय है । वह जब शत्रु दल में घुस जाता हैं तो प्रतिपक्षी इस प्रकार तितर-बितर हो जाते है जैसे सिंह के पहुंचने पर गायें व्याकुल होकर भागती हैं । वे शत्रुओं को पकड़कर ऐसे मार डालते हैं जैसे भेड़िया भेड़ को। द्रष्टव्य है -

"सुमरन करकें अजैपालकौ लै के रामचन्द्र कौ नाम ।

खैंचि सिरोही लाखन राना, समुहें गोल गये समुदाय ।

जैसे भिड़हा भिड़हिन पकरै, जैसे सिंह चिड़ारै गाय ।

तैसेइ लाखन दल में पैठें, रन में कठिन लरै तलवार ।"

सोहर गीतों में प्रत्येक जच्चा कौशल्या रानी बन जाती है और घर में पुत्री का जन्म सीता का जन्म माना जाता है । विद्वान ग्रन्थकारों ने जिस घटना का उल्लेख नहीं किया, उसका वर्णन लोक साहित्य में मिलता है । सीता जी के लिये उपर्युक्त अत्यन्त वीर प्रतापी वर ढूढ़ने की आवश्यकता पड़ी, क्योंकि सीता स्वयं अत्यन्त विदुषी और पराक्रमशीला है । उन्होंने खेल-खेल में ही चौक में रक्खा भगवान शंकर का "पिनाक" उठाकर एक ओर रख दिया था -

"आजु की लीपा-पोती सियाजू करी है, धनुष दये सरकाय ।"

यहाँ भगवान राम, धनुष भंग का संकेत, धनुष उठाने की पूर्व योजना आदि पौराणिक मिथक के रूप में उल्लेख्य है । इसी प्रकार एक अन्य लोकगीत में गंगावतरण" की पौराणिक कथा उपलब्ध है, जिसमें राजा भागीरथ के कुटुम्बीजनों का उद्धार होने की घटना गुम्फित है । गंगा नदी जो मुख से निकलकर हरिद्वार में नीचे उतरती हैं और फिर सोरों घाट से बहकर सगर-सुअनों को तारने हेतु अग्रसर हुई है :-

"तेरो कुटुम्ब तिरो भागीरथ, अब मति रोके रे नल मोको, ।

पटपरि फोरि गऊमुख निकरी, हरिद्वार बहि आई ।

भागीरथ के कुटुम्ब तारने, सोरों घाट बहाई ।"

भक्तिमती "मीराबाई" की कहानी भी लोकगीत में प्राप्त होती है। देखिये-

"मीरा तैने नैना गवाये रोय-रोय ।

बालापन की सुरंग चुनरिया, फटे न मैलीहोय ।

विष के प्याले राना जीने भेजे, विष को अमरत होय।"

रुक्मिणी विवाह के गीत में रुक्मिणी एक ब्राह्मण के हाथ कृष्ण के पास प्रेम-पाती पहुंचाकर हरण कर ले जाने का आमंत्रण भेजती हैं । थककर सोये हुये बटोही ब्राह्मण को गरूड़ ने उठाकर द्वारका पहुंचा दिया । गरूड़ का यह प्रसंग लोक कवि की मौलिक कल्पना है[6]। एक अन्य गीत में शिशुपाल की बारात में नौ लाख घोड़े, दस लाख बराती सजे हुये बताये गये हैं । इस बारात की धूमधाम में इतनी धूल उड़ी है कि आकाश सूर्य छिप गये हैं । अत्युक्ति की कैसी ऊंची उड़ान है लोक कवि की स्वाभाविक कल्पना में :-

"चेदिराज शिशुपाल की सजी है बरात, गगन में सूरज अलोपी है गये[7]।"

शिव-विवाह की गारी में शिवजी का औघड़ रूप दिखाया गया है, जिसमें उनकी विचित्र वेष-भूषा, बरातियों की अंगभंगिता तथा अपरूपता का अच्छा खासा मजाक उड़ाया गया है । शिवजी की अज्ञातनामा वंशावली पर खूब ताने कसे गये है[8]। इसी प्रकार एक अन्य लोक गीत में राम के विवाह में जनकपुर की स्त्रियाँ खूब हास परिहास करती हैं । साहित्यिक दृष्टि ने जिन छोटी-मोटी रीति-रस्मों की उपेक्षा की है, उनका रहस्य लोक साहित्य ने जन साधारण के समक्ष खोल कर रख दिया है, इनमें रामायण के पात्रों में पौराणिक मिथकों के रूप में राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, मंदोदरी, सुलोचना, कौशल्या, कैकेयी[9] विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

6- बुन्देली लोक-गीत, भाग 1, निजी संग्रह, सम्पा० डा० रामस्वरूप खरे, क्रमांक 191

7- बुन्देली लोकगीत, भाग-2, निजी संग्रह, भाग-3, 397,

8- बुन्देली लोकगीत सम्पा० डा० रामस्वरूप खरे भाग 1, निजी संग्रह क्रमांक 127,

9- बुन्देली लोक गीत सम्पा० डा० रामस्वरूप खरे भाग-2, निजी संग्रह क्रमांक 312,

पार्वती की मल्हार में पार्वती का तपस्यारत रहना, शंकर जी की आज्ञा-नुसार सप्त ऋषियों द्वारा पार्वती की प्रेम परीक्षा लेना, पार्वती की माता मैना का दूल्हा के भयंकर वेष को देखकर विलाप करना नारद जी के समझाने पर हंसी खुशी से विवाह कर देने तथा महादेव का पार्वती के साथ कैलाश पर जाना आदि प्रसंग बड़े रमणीय हैं।[10]

अन्य लोकगीतों में कृष्ण गोपियों की लीलाओं का बड़ा ही मधुर चित्रण हुआ है। वृषभान पुत्री राधा का मान, दान लीला, रासलीला, माखनचोरी, गोचारण आदि का वर्णन इनमें मिलता है। इनमें श्री मद्भागवत पुराण के अनुसार ब्रज की लताओं, विटपों, गाय, बछड़ा, यमुना, करील-कुंज, कदम्ब के वृक्ष, वंशी, गोप-गोपिकायें, नन्द, यशोदा, अक्रूर, कंस, पूतना, बकासुर के पौराणिक मिथक विद्यमान हैं।[11]

श्रवण कुमार (सरमन) के मृत्युकाल की करुण घटना लोक साहित्य का प्राण बन गई है जिसमें सरमन के जन्म से मृत्यु तक की घटनाओं का मातृपितृ भक्त आदर पुत्र के रूप में उल्लेख है। सरमन को लगने वाले प्राणान्तक वाण ने शक्ति वान बनकर लक्ष्मण को संज्ञाहीन कर दिया था। कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है तभी रामलक्ष्मण के विछोह में (सरमन के माता की शापानुसार) दशरथ को प्राण त्यागने पड़े थे। एकांश देखिये- "कामर धरें पिता मात की।

"हमरे मात पिता है ज्ञानी, राजा तुरन्तलेचलो वानी,

हूँके हूँके बोले बानी, कामर उठा लई तब जानी,

वाल सरमन की नइयां काऊ और की। कामर धरें पिता मात की।

जई बान लक्ष्मन लग्यो जाई, मरयो पुत्रशोक में जाई

अन्धा-अन्धी तलफत जाई, जानकथा गये सरग सिधाई

10- बुन्देली लोकगीत सम्पा० डा० रामस्वरूप खरे भाग 3 निजी संग्रह क्रमांक 105

11- बुन्देली लोकगीत सम्पा०डा० रामस्वरूप खरे भाग 4 निजी संग्रह क्रमांक 107.

गारी तुलसीकृत रामायन की । कामर धरे पिता मातकी।[12]

सम्पूर्ण रामचरित मानस की पूरी घटनाओं का सकारण उल्लेख करते हुये छोटे-से लोकगीत में कैसी सामासिक शैली अपनाई है कि देखते ही बनती है । धन्य-धन्य है लोक कवि की प्रशंसनीय मेधा-

"राम हते औ रावन्ना । इक छत्री एक बामन्ना ।

अनें उनकी नारि हरी । उनने ऊ की नाश करी ।

इत्ती तो ती बातन्ना । तुलसी रच दओ पोथन्ना।[13]

राम और कृष्ण के पौराणिक मिथक लोक-मानस में अलौकिक, असाधारण एवं दिव्य न रहकर उनके अपने जाने-पहचाने साधारण मनुष्य के रूप रह गये जिनमें अनेक मानवीय भावनाओंका सन्निवेश है । पावस ऋतु है ।झड़ी लगी हुई है । ऐसे में एक मात्रवृक्ष के नीचे खड़े होकर वर्षा की बौछार से बचाया जा सकता है । किन्तु कैसा कारुणिक और हृदय संस्पर्शी चित्र है :-

" वन कों निकर गये दोउ भाई ।

काउ विरछ तर भींजत हुइहैं राम लखन दोऊ भाई ।

राम बिना मोरी सूनी अयोध्या लक्ष्मण बिन ठकुराई ।

सीता बिना मोरी सूनी रसोइया, कौन करे चतुराई।[14]

इस प्रकार समूचे बुन्देली लोक साहित्य में यत्रतत्र सर्वत्र प्रचुर परिमाण में पौराणिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक मिथकों की अभिव्यक्ति सहज रूप में दृष्टिगोचर होती है । पशु-पक्षियों की कथाओंमें एवं मानव-वाणी का प्रयोग करते दिखाये गये है ठीक 'हितोपदेश की कहानियों' की भांति । मानवीकरण

12- बुन्देली लोकगीत सम्पा०डा० रामस्वरूप खरे भाग-2 निजी संग्रह क्रमांक 105.
13- बुन्देली लोकगीत सम्पा०डा० रामस्वरूप खरे भाग-2, क्रमांक 207.
14- बुन्देली लोकगीत, सम्पा० डा० रामस्वरूप खरे भाग-2, क्रमांक 271.

का प्राचुर्य नहीं है । इसीलिये प्राकृतिक मिथक भी स्वल्प ही दिखाई देते हैं ।

5.। संभावनायें :- जहाँ तक संभावनाओं का प्रश्न है । जब तक लोक रहेगा तब तक लोक साहित्य का भी निर्माण होता रहेगा । मिथक सांस्कृतिक देन है । संस्कृति कभी मरती नहीं । हाँ वह नवीन-नवीन रूप धारण करके रूपान्तरितहो उठती है । जैसे पिता के शारीरिक एवं मानसिक गुण किसी न किसी रूप में स्वतः विद्यमान रहते हैं । ठीक उसी प्रकार हमारा पौराणिक एवं सांस्कृतिक रिक्थ लोक मेंबीज की भाँति अपना अस्तित्व बनाये रखता है । जैसे हमारी धरती की क्षमता अनन्त है । उसमेंकितनी ही फसलें बोओ, काटो, कोई अन्तर नहीं पड़ता अथवा उसकी कितनी हे वनज और खनिज सम्पदा का दोहन करो फिर भी वह बरापर देती ही रहती है । सच है धरती माता के समान कोई दानी नहीं है । युगयुगों से वह निरन्तर दान करती आई है फिर भी उसका भण्डार कभी कम नहीं होता । अमर और अक्षय है उसका भण्डार । इसी प्रकार न जाने कितने आक्रामक आये और चले गये । आज उनके नाम-निशान तक नहीं बचे । पर हमारी प्राणदायिनी संजीवनी संस्कृति वास्तवमेंअक्षुण्य है । निःसन्देह जब तक सूर्य, चन्द्र और आकाश में अनगिनत नक्षत्र विद्यमान है तब तक हमारी संस्कृति को कोई कभी भी नष्ट नहीं कर सकता ।

आवश्यकतानुसार समाज में नये नये आविष्कार होते रहते हैं । आविष्कार वैज्ञानिक प्राप्ति का मूलाधार हैं । नई-नई वस्तुओं, मशीनें, उपकरण और नयी-नयी वैज्ञानिक शोधों से अदृश्य और छिपीहुई बातोंका भेद उजागर होता है। समाज सुविधानुसार उन्हें अपनाता जाता है । साइकिल, रेडियो, पंखा, टेलीविजन, फ्रिज, वाशिंग मशीन, कृषि सम्बन्धी उपकरण, टेलीफोन, फैक्स, टाईप मशीन, हीटर, एयर कण्डीशन्स कक्ष, अस्पताल, कार्यालयकार, मारूति, स्कूटर, बस, ट्रक, मोटर, वायुयान, राकेट,

टैंक इन सबसे लोकभाषा का भण्डार भरता है । धीरे-धीरे यह शब्दावली अनरूप मेंअभिव्यक्त होने लगती है । जैसे:- लालटेन, फटफटिया, गारद[गार्ड] टिकस, गिरमिटिया[मजदूर जिन्होने एग्रीमेण्ट किया हो] अर्दली[ऑर्डरली]पेण्ट, कोट, पतलून, बलाउस, इयरिंग, सिगरेट[श्वेतांगिनी धूम्र दण्डिका], रेल[लौह पथ गामिनी] रेलवे[लौह-पथ], रूमाल[मुख-मार्जन वस्त्र-खण्ड], म्यूनिसिपैलिटी [मान्सिपालिती] हॉस्पिटल[अस्पताल]इत्यादि ।

भाषा के एक नियमानुसार प्राचीन शब्दों का प्रचलन उनके अभाव में समाप्त हो जाता है । उनके स्थानपर जो-जो नये शब्द आते हैं, उनका प्रचलन, प्रचार और प्रसार होने लगता है। यही कारण है कालान्तर में जाकर हमें प्राचीन लोकगीत एवं आधुनिकलोक गीत का विभेद स्वीकार करनापड़ेगा । क्योंकि नवीन वस्तु ही पुरानी पड़ती है और उसके ध्वंसावशेष पर नई का जन्म होता है, फिर वही नयी एक न एक दिन [कालातीत होने पर] पुरानी पड़ जाती है । इसीलिये आज हर देश का साहित्य भी-प्राचीनकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल के साहित्य के रूप में विभक्त किया जाता है ।

इसी प्रकार प्राचीन लोक साहित्य में और अर्वाचीन लोक साहित्य में थोड़ा बहुत अन्तर तो रहेगा । ठीक पीढ़ी दर पीढ़ी की भाँति । वह कुछ छोड़ेगा कुछ ग्रहण करेगा । मनुष्य स्वभाव नये की ओर अधिक आकर्षित होता है । किन्तु प्राचीन का मोह भीसहज नहीं छूट पाता । इसलिये दोनोंही प्रवृत्तियाँ [नई पुरानी] समाज और साहित्य के क्षेत्र में चलती ही रहेंगी, यही उनका विकास क्रम है, यही उन्नयन का मार्ग है ।

समूचीसृष्टि में मनुष्य सबसे अधिक बुद्धिमान प्राणी है । बुद्धि है तो वह कुछ न कुछ करती रहेगी, ढूंढ़ती रहेगी, तर्क से ही सही । कभी कभी उसे हृदय को भी साथ लेना पड़ता है । इन्हीं दोनों के आधार पर साहित्य में कलापक्ष

और भावपक्ष का उदय होता है । इन दोनों पक्षों की विशेषोन्नति के लिये भाषा का होना अनिवार्य है क्योंकि भावानुभूतियों को अभिव्यक्त करने का कुशल साधन एकमात्र वाणी है, भाषा है । इसलिये भावी पीढ़ियां साहित्य-सर्जन करेंगी-और लोक मानस भी कुछ न कुछ अपनी सर्जना करेगा जिसमें सहजता होगी, सुगमता होगी, अन्गणता होगी किन्तु उसकी सारी बातें आखों देखी और प्रत्यक्ष अनुभवों पर आधारित होंगी ।

निःसन्देह लोक साहित्य का भविष्य अत्यधिक समुज्जवल है, लोक-मेधा अवश्यमेव अकुण्ठित रहेगी । बिम्ब, प्रतीक और मिथकों के सहारे नया-नया सृजन जन्म लेगा । इससे अनेक नवीन क्षितिजों का उन्मेष होगा और नई-नई मौलिक संभावनायें साकार होंगीं ।

<u>5.2 परिस्थितियाँ</u> :- किन्हीं भी घटनाओं के घटित होने के लिये एक विशेष भूभाग, जलवायु, भौतिक एवं प्राकृतिक वातावरण प्रभावित करता है । सामाजिक धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियोंके अतिरिक्त साहित्यिक परिस्थितियों के योगदान को [illegible] विस्मृत नहीं किया जा सकता । समाज की प्रत्येक परिस्थिति का प्रतिबिम्ब, चाहे वह उपयोगी हो चाहे अनुपयोगी, चाहे अच्छी हो अथवा बुरी-साहित्य के दर्पण में ज्यों की त्यों प्रतिबिम्बित हो उठती है । यह स्वाभाविक भी है ।

यदि हम आदिकाल से लेकर हिन्दी साहित्य के आधुनिक कालतक की परिस्थितियों पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो प्रतीत होगा कि युद्धों की अनिवार्यता ने कवियों कोवीर-रस-पूर्ण गाथायें लिखने के लिये बाध्य कर दिया था और जब किसी सुन्दरीराजकुमारी को अपनीअंकशायिनी बनाना चाहा जबकि उसके परिवार वाले इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते थे तब भी शक्ति एवं

धन सम्पन्न विशिष्ट प्रभाव वाले व्यक्तियों ने युद्ध लड़े, प्रतिपक्ष को परास्त किया और फिर मनोनुकूल सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति को अपने राज-प्रासाद की शोभा बनाया। आश्रित कवियों ने उस राजा-रानीकीप्रशंसा में उनका प्रशस्ति गान किया। इस सन्दर्भ में वीर-रस की अभिव्यक्तिके साथ-साथ भयानक, रौद्र, वीभत्स, शान्तएवं संयोग और वियोग श्रृंगार की अभिव्यंजना हुई। किन्तु वातावरण और परिस्थितियों के आधार पर तत्कालीन युग वीरगाथा काल के नाम से अभिहित किया। तात्पर्य यह है कि परिस्थिति सापेक्ष साहित्य की सर्जना हुई।

भक्तिकाल में ईश्वर भक्ति से सम्बन्धित साहित्य सृजित किया गया। भजन, पद, दोहा, चौपाई नामक छन्द के अतिरिक्त कुण्डलिया, सोहर, नहछू, कवित, सवैया और घनाक्षरी छन्द के माध्यम से निर्गुण, सगुण राम एवंकृष्ण विषयक वांगमय की साधना सम्पन्नहुई। तुलसीसूरदास, मीराबाई, रैदास, दादूदयाल, सहजोबाई, दयाबाई, इस युग की प्रधान भक्त प्रतिभायें हैं।

रीतिकाल मेंविशिष्ट पद-रचना, मेंबंधकर रीतिबद्ध, रीतिमुक्त दो प्रधान धाराओं का विकास हुआ। इसमें राम, कृष्ण, सीता और राधा के नामों की ओट लेकर अपने-अपने राजाओं को प्रसन्न करने के लिये भक्ति-भावना को तिलांजलि देकर श्रृंगार-रस की वासनात्मक उत्तेजनात्मक एवंअश्लीलतायुक्त अभिव्यक्तियों की फुहारों में मस्त हो गये। इस प्रकार आदर्श राम, कृष्ण और सीता, राधा मात्रनायक नायिका बनकर रह गये। चाटुकारिता के चटक रंग ने वास्तविकता के उदात्तभाव को विनष्ट कर डाला। केशव बिहारी घनानन्द, पद्माकर, देव इसी प्रकार के कवि हैं।

आधुनिक युग विषमताओं का युग है । इस युग में समाज के सामने कोई उच्च आदर्श नहीं रह गया । क्रमशः मानव-मूल्यों की अवमानना होने लगी । परिणाम स्वरूप हताशा, कुन्ठा, निराशा, कायरपन, पलायन की वृत्ति, अनाचार, भ्रष्टाचार, कर्तव्य-परायणता के प्रति उपेक्षा का भाव का आधिक्य होने लगा । कुरीतियाँ और अन्धविश्वासों की आड़ में स्वार्थियों ने अपना स्वार्थ सिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया । स्वावलम्बी भावना छोड़ आज का मनुष्य यन्त्राधीन होकर परावलम्बी बन गया । अस्तु इन्हीं सब बातों और परिस्थितियों का वर्णन इस युग के साहित्य में प्रतिबिम्बित हो उठा ।

खड़ी बोली को राष्ट्र भाषा होने का गौरव मिला । गद्य की सर्वाधिक विधाओं जैसे- कहानी, नाटक, उपन्यास, निबन्ध, समालोचना, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, रिपोर्ताज, आत्मकथा इत्यादि का प्राधान्य रहा है । इसी से इसे "गद्ययुग" की संज्ञा से अभिहित किया गया है । इसके अतिरिक्त अन्य नई-नई प्रवृत्तियों का भी उदय हो रहा है, जिनमें आज के युग की सच्ची एवं यथार्थ झांकी गुम्फित हैं । साहित्य-सर्जना में परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ है । मिथकाभिव्यक्ति इस युग की सबसे बड़ी देन है । नयी भाषा, नये प्रतीक एवं नये विम्ब भाषा की सार्थकता के लिये नये रूप धारण कर साहित्यिक संसार में दिन प्रतिदिन उदित हो रहे हैं । लोक साहित्य भी इससे अछूता नहीं रह पायेगा ।

5.3 <u>अपेक्षायें</u> :- उदात्त मानव- मूल्यों की संस्थापना के लिये आवश्यक है कि सत एवं श्रेष्ठ साहित्य की सर्जना की जाय । आज आम आदमी इतना गिर चुका है कि वह किंकर्तव्य विमूढ़-सा हो गया है । दो नम्बर के काले धन्धों में वह आकण्ठ निमग्न होता चला रहा है । रातों-रात करोड़पति बनने की होड़ लगी

हुई है । यद्यपि ऐसे भ्रष्ट और आचारहीन समाज में अच्छी बातों और सिद्धान्तों की कल्पना अव्यावहारिक-सी प्रतीत होती है, फिर भी किसी न किसी को तो यह चुनौती स्वीकार करनी ही पड़ेगी । अस्तु निःस्पृह, त्यागी, सच्चे आदर्श और सुधी साहित्यकारों को युग-सुधार का बीड़ा उठाना ही पड़ेगा ।

सच्चा साहित्यकार निष्पक्ष होता है । उसके द्वारा प्रणीत साहित्य मृत समाज कोअमृत तत्व देकर उसेअन्धकार केगर्त से निकालकर उत्थान के ऊर्ध्व शिखरों की शाश्वत ज्योति कीओर ले जाता है । क्योंकि वह स्रष्टा के साथ साथ द्रष्टा भीहै । सच्चा साहित्यकार अपने दायित्व से विमुख नहीं हो सकता निःसन्देह साहित्यकार अपने युग के सुन्दर स्यन्दन का सारथी होता है । सम्यक दिशा-निर्देश उसका सर्व प्रथम कर्तव्य है । जनकवि क्रान्तिक, युगद्रष्टा सन्त कबीर, समन्वयकर्ता सन्त तुलसीदास, राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, युग कवि डा० रामस्वरूप खरे, मंजुल मयंक, नीरज, बालकृष्ण शर्मा नवीन एवं माखनलाल चतुर्वेदी प्रभृति इसके सुन्दर उदाहरण हैंजिन्होंने समय कीनाड़ी पर हाथ रखकर उसके उपचारार्थ तदनुकूल साहित्य-सर्जना करके जागरण का शंख फूंका ।

राम, कृष्ण, बुद्ध, शिवाजी, राणाप्रताप, सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर, आजाद के साथ-साथ हमें कुछ औरपौराणिक मिथक अन्वेषित करनापड़ेंगें, जो राष्ट्र को सही दिशा में ले जाकर उसे वैभव के शिखरोंतक पहुंचा सकें । जैसे रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, युवा-हृदय सम्राट सुभाष, लालबहादुर शास्त्री । इन सबके उदात्त पक्ष उद्घाटन करके नयी पीढ़ी कोअभिनव दिशा दी जा सकती है ।

जिस प्रकार रावण-विजय के समय नरेश मेहता द्वारा प्रणीत "संशय की एक रात" में रामके द्वन्द्व को सामान्य मानव के रूप में चित्रित करके उन्हें परिस्थितियों के समक्ष नत-मस्तक नहीं होने दिया वरनसच्चा साधक बनकर

लक्ष्यकी प्राप्ति का सन्देश दिया गया । आज ऐसे उदात्तकाव्य ग्रन्थों की महती अपेक्षा है । इसी प्रकार निराला द्वारा प्रणीत "राम की शक्ति पूजा" निराश और हताश व्यक्ति के मन में नवीन आशा और अभिनव प्रेरणा का संचार कर सकती है । इन दोनों रचनाओंमें कवियों ने प्राचीन "पौराणिक मिथक" का अवलम्बन लेकर ही नये सन्दर्भ में आधुनिक युग-बोध का उदात्तसन्देश दिया है । कर्तव्य-पालन हेतु सदैव कटिबद्ध रहने का उपक्रम प्रशंस्य ही नहीं अनुकरणीय भी है ।

जैसा साहित्य की व्युत्पत्ति से स्पष्ट होता है कि साहित्य में हित का होना अनिवार्य तत्व है । बिना हित किये साहित्य साहित्य नहीं रह जाता। इस सन्दर्भ में युग द्रष्टा संत तुलसी की यह अवधारणा ध्यान रखकर उसी के अनुसार सर्जना करना चाहिये-"कीरति भनति भूति भलसोई । सुरसरि समन सब कर हित होई।" अथवा प्रकृति के अनन्य उपासक कविवर पन्त की यह पंक्तियाँ सदैव स्मरण रखनी पड़ेंगी - "वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप, हृदय में बनताप्रणय अपार । लोचनों में लावण्य अनूप, लोक-सेवा में शिव अविकार ।"

पुनश्च चाहे साहित्य का प्रश्न हो चाहे लोक साहित्य का चाहे उसकी किसी विशेष विधा का । मानवीय जीवन-मूल्यों को ध्यान में रखकर ही उनकी प्रतिबद्धता सार्थक हो सकती है । वह साहित्य [तथाकथित] जिससे हमारी भावी पीढ़ियाँ अशक्त और पथभ्रष्ट बनें, कदापि स्पृहणीय नहीं कहा जा सकता, न आज उसकी अपेक्षा है । संप्रति ऐसे क्रान्तिकारी, प्रेरक और उदात्त साहित्य की महती आवश्यकता अनुभव की जा रही है जिससें श्रेष्ठ विचारों की मशाल प्रज्जवलित की जा सकें । जिससे हमारे मनोमालिन्य दूर किये जा सकें । जो आज बिछुड़े और टूटे हुये से इधर-उधर बिखरे और उपेक्षित पड़े हैं, उन्हें समाज की मूलधारा में मिलाया और जोड़ा जा सके ।

षष्ठ अध्याय

6.0 बुन्देली लोक साहित्यगत मिथक प्रयोग :-

मिथकीय प्रयोगों से काव्य अथवा गाथाओं में चमत्कारिकता अनुरंजन एवं सौन्दर्य का सन्निवेश हो जाता है । कभी-कभी तो मात्र एक शब्द ही सब कुछ बतला देता है । मिथक वट-वृक्ष का वह छोटा-सा बीज है जो अपने आपमें बरगद की विशालता एवंमहानता समेटे हुये होता है । मिथकों की भाषा संकेतमय होती है,लेकिन ऐसा होने पर भी उनमेंइतिहास का पूरा कालखण्ड समाया हुआ रहता है । उर्वशी,पार्थ,कुन्ती ऐसे ही शब्द हैं जिनमें तत्कालीन पुराख्यान बीज रूप मेंविद्यमान हैं,पर ज्यों ही उन पर सम्यक रूप से विचार किया जाता है तो उस युग का सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश सुस्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो उठता है ।

प्रत्येक देश के लोक साहित्य में ऐसे मिथकीय तत्व विद्यमान रहा करते हैं । इनमें अतीत की सुन्दरतम झाँकियाँ उपस्थित रहा करती हैं । सुनहरा और झिलमिलाता हुआ अतीत अर्वाचीन युग के गवाक्षों से स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो उठता है । बुन्देली लोक साहित्य में भी इसी प्रकार अनेक मिथकीय तत्व है । कभी ये मिथक लोक काव्य की माला में मणियों की भाँति गुम्फित रहते हैं,तो कभी ये ही मिथक लोक गाथाओं,कथाओं और आख्यायिकाओं में तिलतन्दुल की भाँति पृथक-पृथक दिखलाई देते हैं । बुन्देली लोक कथा-साहित्य में दोनों की यही स्थिति है । वह अतिप्राकृत जीव होता है,विशाल भीमकाय और सर्वशक्ति सम्पन्न होता है । इंगित मात्रमें ही सब कुछ तहसनहस कर डालता है । उसके प्राण किसी सरोवर तट पर अवस्थित अथवा किसी पहाड़ की चोटी पर बैठे अथवा निर्जन कन्दरा में रहने वाले वन्य जन्तु की गर्दन में छिपे रहते हैं ।

कुछ मिथक केवल सन्दर्भित होते हैं जबकि कुछ मिथकों के स्वरूप को उजागर करने के लिये पूरे कथा प्रसंग आवश्यकीय होते हैं । इसकेअतिरिक्त किन्हीं किन्हीं मिथकों में अन्तर्कथा-रूप ध्वनित एवं व्यंजित होती है, जबकि कलागम और तुलनारूप में भी मिथकीय सन्दर्भ उपलब्ध हो जाते हैं । ये सारे मिथक कभी ऐतिहासिक रूप धारण कर लेते हैं तो कभी सामाजिक, सांस्कृतिक और पौराणिक रूप में भीप्राप्त होते हैं । आध्यात्मिक एवं दार्शनिक मिथक की गणना भी इन्हीं के अन्तर्गत परिगणित की जाती है । धर्म, पाप-पुण्य स्वर्ग-नरक, सूर्य-चन्द्रमा, राहु-केतु सृष्टि-प्रक्रिया और प्रलय इसी प्रकार के मिथक आज भी अपना अस्तित्व सुरक्षित कियेहुये हैं । नदी-पहाड़, झरना, झंझावात, सूर्योदय, सूर्यास्त, संध्या और ऊषा केमानवीकृत रूप मानवीकरण की भाषा में प्राकृतिक मिथकरूप में ख्याति पा चुके हैं । वैदिक युग में रचा गया उषस् सूक्त एवंअर्वाचीन युग का छायावादी काव्य इससे भरा-पूरा एवं सम्पन्न है । यत्र-तत्र बुन्देली लोक साहित्यगत इनकी अभिव्यक्ति अत्यधिक सुन्दर एवं मनोहारी बन गयी है ।

6.। सन्दर्भ मात्र :-

पौराणिक मिथक कहीं कहीं सन्दर्भ मात्र मिलते हैं । पुराण साहित्य अत्यन्त प्राचीन है । इसीलिये इस साहित्य को "पुराण" संज्ञा प्रदान की गई । संस्कृत भाषा के कोशकारों ने इसका यही अर्थ ग्रहण किया है[1]। यास्क के मतानुसार "जिसमें पुरानी वस्तु भी नवीन हो जाय, उसे पुराण कहते हैं[2]। पद्म पुराण का भी

1- पुराणं पुराभवम् । पद्मचन्द्र कोश, सम्पादक, गणेशदत्त शास्त्री, पृष्ठ 320,

2- पुराणं कस्मात्नवं भवति । निरुक्ताचार्य यास्क, 3/19/24,

यही अभिमत है कि "प्राचीन परम्परा को नवीनरूप से प्रस्तुत किया जाय, वह "पुराण" है[3]। इस प्रकार पुराण न केवल प्राचीनयुग से सम्बन्धित है अपितु भावी घटनाओं का भी पूर्व कथन कर देते हैं। इसलिये वे केवल प्राचीन ही ही नहीं हैं अपितु प्राचीनता से सम्पृक्त होकर भी आधुनिक और आधुनिकोत्तर हैं। एक सुप्रसिद्ध पुरायणवेत्ता के मतानुसार "यह सृष्टि किससे किस प्रकार हुई ? इसकालय कहाँ और कैसा होगा ? सृष्टि के पदार्थों की उत्पत्ति का क्रम किस प्रकार है या मनुष्य जाति के प्रमुख ऋषि और राजा किस क्रम से अधिकार रूढ़ हुये ? उनके चरित्रकैसे थे ? इस सृष्टि और प्रलय के बीच कितना समय लगता है ? इन पाँचबातों की विवेचना जिसके द्वारा की जाय अथवा यों कहें कि इन पांच बातों का ज्ञान जिस विद्या के द्वारा प्राप्त हो वहीं पुराण-विद्या" है[4]।

साहित्य समाजका उपजीव्य है। समाज दैनन्दिन की घटनाओं सेअप्रकट रूप से प्रभावित होता रहता है। घटनायें युग प्रचलित विचार धारा से जन्म लेती हैं अथवा परिवर्तित रूप धारण करती हैं। समवाय रूप में इन सभी का प्रभाव साहित्य पर पड़ता ही है क्योंकि साहित्य न तो समाज से पृथक है और न जीवन से अपितु समाज और मानव जीवन की विशद व्याख्या ही साहित्य है। इसीलिये रचनाकार अपनी दूरदर्शिनी दृष्टि से समाज के भूतकाल, वर्तमान और भविष्य के अन्तस में झांककर सब कुछ देख लेने में समर्थ हो जाता है। इसकी नवोन्मेषिनी प्रतिभा ऐसी कालजयी कृतियों को जन्म देती है जो जीवन के चिरन्तन मूल्यों से मण्डित होती है और काल का कराल चक्र भी उन्हे ग्रसित

3- पुरा परम्परां वक्तिपुराणं से नवे स्मृतम। महर्षि वेद व्यास, पद्म पुराण, 1/2/53,

4- पुराण परिशीलन महामहोपाध्याय पं0 गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, पृष्ठ 9,

नहीं कर पाता । श्री मद्भागवत पुराण एवं महाभारत पुराण ऐसीही न भूतो न भविष्यति वाली अमर कृतियां हैं जिनके अधिकांश मिथक आज के लोकसाहित्य में पद-पद पर दृष्टिगोचर होते हैं । एक प्रकार से प्राचीन सन्दर्भ नये सन्दर्भ बनकर अपना अभिनव अर्थ साधित करते हैं ।

हमारा जीवन सुख और दुख का संगम है । जब विषाद अवसाद, कष्ट, संत्रास, निराशा, कुण्ठा मानव-जीवन को संत्रस्त कर देते हैं तो मानव को आध्यात्म की शीतल अंक में शरण प्राप्त होती है । आध्यात्मक-चिन्तन से उसको जीवन का संबल प्राप्त होता है । साहित्य मानव की वेदनाको अभिव्यक्ति प्रदान करता है और इसके स्रोत की प्राप्ति के लिये वह धर्म, दर्शन, इतिहास और संस्कृति के पृष्ठों में खोजाता है ।

श्रेष्ठ रचनायें समकालीनता के स्वर को अभिव्यक्ति प्रदान करती है चाहे उसकी कथा किसी भी युग की हो । समकालीनता के आवरणमें से सनातनत्व भी झांका करता है । इसी कारण रचना को वृहत्तर सन्दर्भ प्राप्तहोते हैं । द्विवेदी युगीन काव्य राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रेरणा प्राप्त कर राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के संवाहक बन गये थे ।

जहां तक लोक साहित्य की सर्जना का प्रश्न है, इनमें पौराणिक कथाओं के अंश संदर्भ मात्र के रूप मेंविद्यमान रहकर अपने युग तो प्रभावित करते ही हैं, भावी पीढ़ियों के लिये भी अतीत की कुंजी बन जाते हैं जिनसे न केवल वर्तमान संवरता है वरन भविष्य भी सूर्य की भांति झांकने लगता है । "इतिवृत्तात्मक कथन से पाठक या श्रोता पर कोई विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता और रूढ़ कथा को सुनना वह पसन्द नहीं करता किन्तु जब उन्हीं कथाओं में उसे अपने जीवन की भोगीहुई परिस्थितियों की प्रतिछवि दिखलाई पड़ती है तो वे

उसकेलियेअक्षयनिधि बन जाती हैं । इसलिये इन पौराणिक कथाओं के काव्यों में नये युग के अनुरूप अनेक नये सन्दर्भ समाविष्ट दृष्टिगत होते हैं[5]।" एक अत्यन्त सटीक एवं उपयोगी उदाहरण दृष्टव्य है :-

करम गति टारे नाहिं टरी ।
मुनि वशिष्ट से पण्डित ग्यानी, सोधि के लगन धरी ।।
सीता हरण मरण दशरथ को, वन में विपत्ति परी ।
चक्रवर्ति हरिचन्द राज तज मरघाट रच्छ करी ।।
शैव्या रोहिताश्व सब छूटे, बन गये सब चकरी ।
रोउत रे नई रानिपिंगला जोगी भये भरथरी ।।
नल दमयन्ती सत्वान ने सत की गैल धरी ।।
इन्द्र अहल्या, द्रुपद सुता की होनी नाँहि टरी ।।

उपर्युक्त लोकशैली में रचित पद में यद्यपि अनेक पौराणिक कथा में अन्तर्कथाओं के रूप में विद्यमान हैं । पर वे यहाँ सबकी सब सन्दर्भ मात्र हीं है ।

5- नये काव्य, नये सन्दर्भ, डा० राधेश्याम अग्रवाल, पृष्ठ 4,

6.2 पूरे कथा प्रसंग :-

बुन्देली लोक साहित्यगत मिथकीय प्रयोगों की जहां बात आती है, वहां साथ ही साथ यह भी भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि लोक कथाओं और लोकगीतों कहीं-कहीं पूरे कथाप्रसंग अवतरित हैं । क्योंकि यदि उनका संदर्भ मात्र देते तो वे उतनी प्रभावी नहीं बन सकती थीं । उनकी व्याख्या और विश्लेषण अपेक्षित हो जाता । पर, पूरे कथा प्रसंगों द्वारा स्वतः ही साहित्यकार का मन्तव्य अत्यन्त साफ हो जाता है और पाठक उसके भाव को सुगमता पूर्वक ग्रहण कर लेता है । लोक साहित्य में श्री मद्भागवत पुराण एवं महाभारत की पूरी पूरी कथायें ज्यों की त्यों लोकभाषा भाषा में गृहीत कर ली गई हैं । श्री राधेश्याम कथावाचक और बिन्दुजी के नाम इस सन्दर्भ में बड़े आदर के साथ लिये जा सकते हैं । लोक कथाकारों और लोक गायकों ने उक्त दोनों पुराणों की कथाओं को लोक साहित्य का अमृत तत्व बना दिया । आदि काव्य रामायण से भी लोक साहित्यकार ने अनूठी प्रेरणा ली है । धरती का गाय रूप धारण कर प्रार्थना, रामजन्म, बाललीला, विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा, अहल्या उद्धार, सीता-राम दर्शन (पुष्प वाटिका) सीता-स्वयंवर, परशुराम मान-मर्दन, विवाह, बनवास, गुहमैत्री, चित्रकूट, पंचवटी-निवास, सीताहरण, सुग्रीव-मित्रता, बालि, वध, हनुमान का लंका दहन, सेतु बन्ध, रावण वध, सती सुलोचना, विभीषण राज्याभिषेक, सीता परित्याग, लवकुश जन्म, विश्वामित्र और मेनका, गंगावतरण आदि प्रकरणों पर पूरे-पूरे लोक काव्य उपलब्ध हैं । इसी प्रकार महाभारत के अठारह पर्वों में कौरव पाण्डवों की उत्पत्ति, युधिष्ठिर-दुर्योधन की द्यूत क्रीड़ा, द्रोपदी चीरहरण, पाण्डवों का अज्ञातवास, कृष्ण का दूत रूप, गीतोपदेश, भीष्म की शर-शैय्या, अभिमन्यु, जयद्रथ, द्रोणाचार्य-वध, कर्ण, अश्वत्थामा की कथायें, युद्ध का समापन, गांधारी वनवास, यदुवंश का नाश, स्वर्गारोहण की कथाओं

इत्यादि से समूचा लोक साहित्य मिथकीय आभा से जगमगा उठा है ।

शकुन्तला और राजा दुष्यन्त, प्रलयकाल, सृष्टि रचना, उशीनर और राजा शिवि की शरणागत वत्सलता, सत्यवान-सावित्री कथा, नल-दमयन्ती आदि के पौराणिक मिथक आधुनिक काव्य में ही नहीं वरन् लोक साहित्य में खूब पुष्पित एवं फलित हुये हैं । इन सबमें धर्म के वैशिष्टय का उल्लेख है "क्योंकि मानव के गर्भ में आने से लेकर मृत्यु पर्यन्त धर्म ही उसका सहयात्री रहता है[6] । सच है जो साहित्य मनुष्य के जितने निकट होगा उतना ही स्थायित्व प्राप्त कर सकेगा । लोक साहित्य का वट-वृक्ष इसी पौराणिक वृतान्तों के जल से अभिसिंचित भाव-भूमि पर शुद्धीकृत हुआ है और यही कारण है कि जिससे लोक साहित्य अत्यन्त संवेदनशील बन सका।

बुन्देली लोक साहित्य में प्रथमतः जगनिक द्वारा प्रणीत "आल्हखण्ड" में आल्हा-ऊदल की सम्पूर्ण कथा 52 लड़ाइयों के माध्यम से व्यक्त हुई है । इसी प्रकार वीर हरदौल, छत्रसाल, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कारसदेव, चन्द्रावलि और मधुरावलि की पूरी-पूरी कथायें लोक साहित्यकारों की प्रेरणा-स्रोत बनी हुई हैं । श्रवण कुमार के अन्धे माता-पिता की करुणकथा को भी लोक साहित्यकार विस्मृत कर सका । सच बात तो यह है कि इन उक्त कथाओं में मानवीय मूल्यों की संस्थापना की गई है । क्योंकि इन्हीं पर धर्म, आध्यात्म और दर्शन का भव्य भवन प्रस्थापित है । कुछ पूरे कथा-प्रसंग यहाँ उद्धृत किये जा रहे है :-

आल्हा-ऊदल की शौर्य-लोकगाथा राष्ट्र प्रेम, राष्ट्र धर्म, बलिदान और अनूठे पराक्रम के साथ समूचे बुन्देलखण्ड में विख्यात है जिसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है:-

---

6- धर्मस्तत्र अनुगच्छति, महाभारत, वेद व्यास,

कालिंजर के चन्देल नरेश परिमार्दिदेव (परमाल) ने बावन युद्ध किये थे। उनकी सेना में जस्सराज एवं बच्छराज दो भाई उच्च सैनिक पदों पर आसीन थे। इनका विवाह कालिंजर दुर्ग के पूर्व आधुनिक बांदा और सतना जिला के पूर्वीय सीमा भूमि दिया उमरी ग्राम की दो वलिष्ठ ग्राम्य आभीर-युवतियों से सम्पन्न हुआ। इनसे उत्पन्न होने वाली सन्तानें "वनाफर" क्षत्रिय के नाम से विख्यात हुईं इन्हें अन्य ठाकुरों से निम्न समझा गया। इन्हीं बनाफर जाति के वस्सराज सेनापति के यहां आल्हा-ऊदल का जन्म हुआ जिन्हें जन्म से ही युद्ध का वरदान प्राप्त हुई। ये देवी के अनन्य उपासक थे। इसी प्रकार बच्छराज के भी दो वीर पुत्र मलखान और मलखे हुये। जस्सराज की पत्नी देवल्दे थी। इन्हें ही आल्हा-ऊदल की माता होनेका गौरव प्राप्त हुआ। बचपन में ही एक युद्धमेंजस्सराज का बध कर दिया गया जिससे समूचा महोबा राज्य शोक-सागर में निमग्न हो गया। जगनिक तत्कालीन सुप्रसिद्ध जनकवि था जिसने बुन्देलखण्ड के इन दो वीर-बांकुरों की कीर्ति-गाथा लोकगीतों के द्वारा उदात्त भावों से ओत-प्रोत कर रच डाली। कवि ने आल्हा-ऊदल की माता को धर्म की बहिन माना। आल्हखण्ड में इन्हीं दो वीरों की अमर गाथा अनुस्यूत है। भारत के समूचे उत्तरी भाग में यह गाथा बड़े ही उत्साह-उमंग के साथ सुनी और गाई जाती है। जब नभ में काले-काले मेघ आच्छादित हो उठते हैं, वर्षा की सुहानी ऋतु में पराक्रमी मेघ अपना तुमुल घोष निनादित करते हैं, बिजली चमकती है और घनघोर वर्षा की झड़ी लगती है उस समय आल्हखण्ड के वीरोचितगीत नवयुवको के हृदयों में रसमयी धारा प्रवाहित कर वीरत्व की धारा में युवकों को सराबोर कर देते है। यथा-

"सिंह कीबैठक क्षत्री बैठे ठेहुनन धरे नगिन तलवार।
मुंह नाहिं देखें जोतिरिया को जिनके मार मार रटलाग।

पंघति पंघति से दल बैठो भस्माभूत लगो दरबार ।

दुर्गा लोट रही पत्थी पर, जैसे लौट कालिया नाग ।।"

राजा परमार्दि देव की रानी मल्हना उरई-नरेश माहिल की बहिन थी । माहिल कूटनीति-विशारद और राज्य के कर्ता-धर्ता थे । आल्हा-ऊदल की शौर्य गाथा के साथ-साथ परमालका यश चारों दिशाओं में व्याप्त था । यही कारण था कि तत्कालीन दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज चौहान को परास्त करके महाराज ने अपने पुत्र ब्रह्मजीत के साथ पृथ्वीराज की पुत्रीबेला का विवाह रचा था । मंत्री माहिल आल्हा-ऊदल की वीरता से कुढ़ते थे। वे जस्सराज के शत्रु थे । राजा परमाल से भी वे ईष्या रखते थे । अतएव माहिल ने राजा से एकान्त मंत्रणा करके उनके खूब कान भरे । परिणामस्वरूपआल्हा-ऊदल को राज्य-निष्काषन का दण्ड मिला । वे अपनीमाता को लेकर कन्नोज चले गये । कन्नौज-नरेश जयचन्द्र आल्हा ऊदल के पराक्रम से पूर्व परिचित थे । इसलिये उन्होंने इन दोनों वीरों का यथोचित सम्मान करके अपने राज्य में सम्माननीय पद दिया । माहिल ने फिर षडयंत्र रचा। दिल्लीनरेश पृथ्वीराज चौहान को प्रेरित किया कि वह आल्हा-ऊदल जैसे वीर [illegible] यह स्वर्ण अवसर न छोड़े । क्योंकि परमाल इस समय अकेले हैं महोबा से आल्हा-ऊदल जैसे वीर निष्कासितकिये जा चुके हैं । इस प्रकार वह अपमान का बदला ले सकता है और परमाल-पुत्री से अपने पुत्रका विवाह करवा सकता है । इसषडयंत्र का पता जब परमाल पुत्रब्रह्माजीत को मिलातो उसने अपने पिता को बतलाया । परिणामस्वरूप माहिल को भरे राजदरबार में अपमानित होना पड़ा । माहिल ने पुनः पृथ्वीराज को पत्रलिखकर कूटनीति पूर्ण भेदों की सूचना दी । अतः चौहान ने अपने वीर योद्धाओं के साथ महोबा आ धमके औरकीर्ति सागर परभुजरियों के उत्सव के समय आक्रमण कर दिया । तब महारानी मल्हनाने अपने को इकदम असहाय जान आल्हा-ऊदल की वीरमाता देवलदे को

महोबा की वस्तुस्थिति से अवगत कराते हुये एक करुणाजनक पत्र ज्ञानिक द्वारा भिजवाया जिसमें जन्मभूमि की रक्षा केलिये आल्हा-ऊदल का आवाहन किया गयाथा । देवलदे पत्र पढ़कर द्रवीभूत । उन्होंने महारानी मल्हना के आवाहन परआल्हा-ऊदल को मातृभूमि की रक्षा के निमित्त महोबाजाने कीआज्ञा दी । जयचन्द्र से आज्ञाप्राप्त कर आल्हा-ऊदल का महोबा के रक्षार्थ योगियों वेश में प्रवेश और कीर्ति सागर के समीपस्थ उद्यान में डेरा ।

चौहान ने समाजीत का वध कर डाला और ब्रह्मजीत को दस हजार हाथियों के घेरे में घेर लिया। रणभूमि में हलचल । सेना में आक्रोश एवं आतंक का वातावरण । इसीबीच आल्हा-ऊदल योगियों के वेश में रण-भूमि में जयचन्द्र के पुत्रलाखन के साथ कूद पड़े । अपने युद्ध-कौशल का परिचय देते हुये उन्होंने ब्रह्मजीत कोमुक्त करा लिया । तत्पश्चात चौहान और योगियों में घमासान युद्ध हुआ और चौहान को इसयुद्ध में आहत होकर पराजित होना पड़ा। सम्मान उत्साह और उमंग के साथ भुजरियों कामहोत्सव सम्पन्न हुआ । शब्द भेदी वाण विशारद पृथ्वीराज चौहान को विशाल सेना के साथ परास्त कराने के बाद वीर पुत्रों की गाथा सदैव स्मरणीय रहेगी । निःसन्देह आल्हा-ऊदल दोनों ही अलौकिक वीरथे,औरउनके रक्त में वीरता की धारा प्रभावित थी । अपने जीवनकाल में उन्होंने तीस युद्धलड़े और विजय-श्री प्राप्त की । उड़न बछेरा, महोबा की कुलदेवी, तत्कालीन अस्त्र-शस्त्र युद्ध केअतिशयोक्ति पूर्ण प्रभावी वर्णनों एवं अनुष्ठानों में अनेकानेक मिथक वीजरूप मेंविद्यमान हैं ।

वीर हरदौल की गाथा भी आज मिथक बनकर बुन्देलखण्ड वसुन्धरा वासियों को प्रेरित करके कर्तव्य-मार्ग पर चलने का पंथ प्रशस्त करती है । महाराज ओरछा वीरसिंह देव(प्रथम)के बारह पुत्र थे । उनके सबसे बडे पुत्र जुझारसिंह थे ।जो अपने पिता की मृत्यु के पश्चात ओरछा के राजा बनें ।

इन्हीं के छोटे भ्राता थे बुन्देलखण्ड के प्राणप्यारे दिमान वीर लालाहरदौल जिनका जन्म विक्रम संवत 1665 में हुआ था । ये एरछ, बड़ौनी एवं बड़ागांव के जागीरदार थे । जिनकी वार्षिक आय उस समय दस लाख रुपये थी । हरदौल की शादी दुर्गापुर के जागीरदार लाखनसिंह परमार की पुत्री हिमांचल कुंवरि के साथ वि०सं० 1684 में सम्पन्न हुई थी । इनके एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम विजय सिंह था । हरदौल जहाँ वीरसिंह देव प्रथम के पुत्र मधुकरशाह के पुत्र एवं जुझार सिंह, के लघुभ्राता थे वहीं वे एक धीर, वीर, अस्त्र-शस्त्र, कुशल और मृगया की क्रीडा में भी दक्ष थे । वे अद्वितीय पहलवान थे । फारस के सुप्रसिद्ध तलवारबाज मेंहदी हुसैन को हराकर ओरछा का गौरव बढ़ाया । जुझारसिंह की धर्मपत्नी महारानी चम्पावती जो इनकी भौजाई थी, का इन पर अपार स्नेह था । जब युद्ध में हरदौल की जांघ में गहरा घाव लगा तब उनकी मातृ-वत्सला भौजाई ने हरदौल को उपचारार्थ अपने महल में बुलवा लिया । उनके द्वारा की गई सेवा-सुश्रुषा और औषधि प्रयोग से हरदौल शीघ्र स्वस्थ हो गये । अपने ज्येष्ठ भ्राता की अनुपस्थिति में फूलबाग में बैठकर जो रामराजा मन्दिर के समीप है, वे प्रजा की विनती सुनने लगें, और उसके कष्ट निवारण में ध्यान देने लगें ।

विक्रम संवत 1685 में बुन्देलखण्ड की सेना की एरच के समीप बेतवा के तट पर शाहजहां की मालवा, कन्नौज और आगरा की सेनाओं से मुठभेड़ हुई । इसमें शाहीसेना बुरी तरह पराजित हुई । परिणामस्वरूप चम्पतराय और दिमान हरदौल शाहजहां के हृदय में बबूल के कांटे की भांति चुभने लगें । शाहजहां ने बुन्देल-वीरों को परास्त कराने के अनेकानेक प्रयत्न किये किन्तु वह सदैव असफल रहा । फिर शाहजहां ने कूटनीति से काम लिया और भयंकर षडयंत्रकारी हिदायत खां को ओरछा भेजा । उसने चौरागढ़ जाकर हरदौल के खिलाफ विषवमन किया। जुझारसिंह उसकी वाक्-पटुता पर पूर्व से ही मुग्ध था, । समय पाकर और राजा

को अपने अनुकूल जानकर उसने धीरे-धीरे कहना प्रारम्भ किया- महाराजा हरदौल का महारानी के पास महल में अकेला रहना जनता में भ्रम पैदा करता है।" जुझारसिंह को अपनी प्राणों से भी प्यारी रानीचम्पावती पर विश्वास हो गया। वे हरदौल को द्वेष-दृष्टि से देखने लगें। उधर हरदौल के एक और विरोधी सरदार प्रतीत राय औरपहाड़सिंह ने मिथ्यारोप गढ़कर जुझारसिंह के मन में पनपे अविश्वास के वृक्ष को छल-कपट के पानीसे खूब सींचा इस प्रकार वह खूब हरा-भरा होकर लहलहा उठा।

एक बार जब महाराज जुझारसिंह महलों में पधारे तब महारानी चम्पावती राजा के शुभागमन की खुशी मेंअत्यन्त विह्वल हो उठी। भोजन करने को जुझारसिंह और हरदौल पूर्व की भांति एक साथ बैठे। रानी तो प्रसन्नता के मारे प्रेमावेश मेंसब कुछ भूल गई। जुझारसिंह को चांदी के थाल में भोजन परसा और हरदौल को सोने के थाल में। बस, फिर क्या था। यह देखकर राजा जल-भुन गये और हिदायत खां, प्रतीतराय औरपहाड़सिंह की बात सत्य मान ली। जुझारसिंह नेअपनी हीरानी पर लांछन लगाकर उसका तिरस्कार किया। रानी ने बहुत कुछ अनुनय विनय की कि कुँअर हरदौल मेरे लिये पुत्र के समान हैं और वे भी सदैव मुझे माँ की भांति ही आदर और सम्मान देते है। भला यह सब कैसे संभव हो सकता है ? आप विवेकपूर्वक विचार करें, और षड्यंत्रकारियों की चाल में न फसें अन्यथा बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा। पर अविश्वासतो अविश्वास है। रानी की सारी दलीलें बेकार हो गई। राजा का सन्देह नहीं मिटा सो नहीं मिटा। राजा ने हरदौल को विष देने का प्रस्ताव रानीके सामने रक्खा। रानी स्तम्भित रह गई। अब रानी धर्म-संकट में पड़ चुकी थी। एक ओर निर्दोष देवर की हत्या की पाप तो दूसरी ओर पतिता कहलाने का आरोप। किन्तु नारी अपने चरित्र की रक्षा

केलिये सब कुछ कर सकती है । दुश्चरित्रता का लांछन हत्या से भी जघन्य है । वह विवश हो गई । भोजन का प्रबन्ध किया । हरदौल को आमंत्रित किया गया । रानी ने अपने हाथों पकवान तैयार किये । वर्तमान श्री रामराजा मन्दिर के चौक में थाल परोसे वह हरदौल को पंखा झलने बैठी । बहुत रोकने पर भी रानी की आंखों से आंसू टपक रहे थे । हरदौल ने देखा और बोले- "भौजी, मुझे भोजन कराते समय तुम्हारी आंखों में आंसू ? तुम्हें ऐसा क्या कष्ट है जो इतनी दुखीहो ?

रानी ने उत्तर दिया- "लाला, यह भोजन करना तो मै चाहती थी पर लोग समझते कि मै सचमुच पतिता हूँ । अतः मृत्यु से भीअधिक कष्ट झेलने को तैयार होना पड़ा है ? रानी क्या कह रही थी हरदौल की समझ में नहीं आया । उन्होंने रानी की ओर प्रश्नपूर्ण दृष्टि से देखा और बोले-"मै तुम्हारा मतलब समझा नहीं ? मृत्यु से बड़ा कष्ट ? मेरे रहते हुये।" रानी बोली- "समझना ही चाहते हो तो समझलो। ~~[illegible]~~ तुम्हे मैं धोखे में नहीं रखना चाहती । विश्वासघातनीतो न कहलाऊँगी । तुम मेरे कष्ट को नहीं मिटा सकते । तुम्हारे सामने जो भोजन है, वह विषाक्त है। महाराज सन्देह करते है कि तुम्हारे और मेरे बीच अनैतिक सम्बन्ध है । अपनी सच्चारित्रता सिद्धकरने के लिये उन्होंने शर्त रक्खी है कि अपने हाथ से मै तुम्हे विष दूँ । तुम चाहो तो थाल खिसका सकते हो । यह भोजन मैं कर लूंगी । इतना अवश्य है कि बलिदान देकर भी मै लांछन न मिटा पाऊंगी । अस्तु, मेरी लाजकी रक्षा तुम्हारे हाथ है, रखो चाहे डुबाओ ।"

हरदौल को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था । जिस बड़े भाईको वह पिता तुल्य मानते, उसके हृदय में ऐसा सन्देह ? हरदौल अत्यन्त हर्षित हो भोजन करनेलगें । रानी की आंखो से आंसू झरे जा रहे थे । उसकी

उसकी इच्छा हुई कि थाल सामने से हटा दें। तब तक हरदौल ग्रास पर ग्रास तेजी से निगल गये । इस प्रकार विक्रम संवत 1688 ई0 में मात्र तेईस वर्ष की उम्र में हरदौल दिवंगत हुये । पुनश्च मृत्यु के पश्चात प्रेतात्मा के रूप मेंउन्होने अपनी बहन कुंजावती जो दतिया में रणजीत सिंह परमार को व्याही थी, उसकी पुत्री अर्थात् अपनी भांजी के विवाह में भाई द्वारा भात देने का संस्कार पूरा किया । बारात का पूरा प्रबन्ध एवं विवाह कीसारी तैयारीमें अदृश्य रूप से हरदौल ने अपनी भांजी के हाथ पीले करके अनूठा योगदान किया । उनके भानेजदामाद मानसिंह ने जब अद्दृश्य रूप से घी परोसते हुये उनका हाथ पकड़ लिया । तब उन्होंने मानसिंह के अनुरोध पर सभी को प्रत्यक्ष दर्शन दिये । साथ ही साथ भागौनी, बरूआ अमरपुर मठ बाजना {उ0प्र0} के ग्राम भान्जी को दान मेंदिये ।

दिमान हरदौल युद्धों में शौर्य दिखाने के कारण अमर नहीं हुये अपितु अपनी भाभी की चरित्ररक्षा के निमित्त उन्होंने जो विष-पान करके आत्म बलिदान किया, उसके कारण उन्हें यह अमरपद {देवत्व} प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार हरदौल के आत्म-त्याग की अनूठी एवं अलौकिक लोक गाथा में यद्यपि ऐतिहासिक तत्व मिश्रितहैं फिरभी उसमें अनेक लोक-विश्वास और मानवेतर घटनाओं के मिश्रण ने अनेक लोक मिथकें, की संभावना स्पष्ट कर दी । बुन्देली लोक-साहित्य में इसी प्रकार की अन्य सम्पूर्ण कथायें लोककवियों द्वारा पूरे कथा-प्रसंगो के रूप में विद्यमान हैं । इनमें अनेक मिथकों की सर्जना हुई है । बुन्देलखण्ड केशरी महाराजा छत्रसाल, वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कारसदेव, चन्द्रावली और मधुरावली एवं श्रवण कुमार की लोक-कथायें अनूठी एवं अलौकिक है । झांसी की रानी, महाराज छत्रसाल की लोककथायें ऐतिहासिक मिथक निर्मित करती हैं । चन्द्रावली एवं मधुरावली की लोक -

कथाओं में लोक द्वारा विनिर्मितकल्पना-प्रसूत मिथकहैं ।जबकि श्रवण कुमार की पौराणिक कथा होने केकारण पौराणिकमिथक के अन्तर्गत परिगणित कीजायेगी ।

6.3 अन्तर्कथा रूप :-

बहुत सी ऐसी लोक रचनायें है जिनमें लोक कवियों ने पूरे-पूरे कथा प्रसंग न देकर संकेत मात्र में अन्तर्कथाओं केउल्लेख करके उन्हें लोक विश्रुत बनाया । विषय के प्रतिपादन में ये अन्तर्कथायें दृष्टान्त रूप में अत्याधिक प्रभावी एवं उपयोगीसिद्ध होती हैं । गद्य एवं पद्य दोनों ही विधाओं में अन्तर्कथा रूप विशद रूप से चित्रित हुये हैं ।अश्वत्थामा,आल्हा-ऊदल एवं भीष्म का अमरत्व लोक साहित्य में पौराणिक मिथक के रूप में विद्यमान हैं । लोक-मानसकभी भीयह नहीं मानना चाहता कि उक्त महापुरुष जीवित नहीं हैं । लोक मानस में ये युग-युग से चले आ रहे हैं और युगों तक उनके लोक-विश्वासी मन में सदैव जीवित रहकर अजर-अमर बने रहेंगें ।

लोककवि ईसुरी की एक फाग यहाँ इस आशय से प्रस्तुत की जा रही है कि इसमें उनके जीवनसे सम्बन्धित अनेक घटनायें अन्तर्कथा रूप में गुम्फित हैं । यथा-ईसुरी तीन भाई थे । सदानन्द,रामदीन और स्वयं ईसुरी । ईसुरी का बचपन अपने मामा जानकीके यहाँ लुहरगांव {कौनिया,हरपालपुर} में बीता। उनके मामा के पास कोई सन्तान नहीं थी,इसलिये उन्होंने इनको गोद ले लिया था । बाद में उनके पुत्रउत्पन्न होने पर ईसुरी कुछ दिनों वहाँ रहकर अपनी ससुरालसलांगौन चले आये । यह स्थान हमीरपुर जिला में बगौरा नामक ग्राम से,जहाँ कि बाद में ईसुरीके जीवन का शेष समय बीता,से एक मील दूर है । उनकीपत्नीका नाम श्यामबाई था । उससे केवल एक लड़की हुई । उसका

नाम गुरबाई था और वह भवार विवाही थी । तीस वर्ष की उम्र में ईसुरी को पत्नी-वियोग का दुःख झेलना पड़ा । फिर उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया ।

सीगौन मेंकुछदिनों रहकर वे धौर्रा के मुसाहिबजू नामक एक जमींदार के यहाँ नौकर हुये । फिर रानी दुलैया [जैतपुर वाली] के यहाँ चले गये । यहाँ से बगौरा आकर रज्जबअली जमींदार के कारिन्दा बने और अन्त समय तक वहीं रहे । उनके यहाँ वे तहसील वसूली का कामकरते थे । वेतन था पाँच रुपया मासिक ।खाना-कपड़ा और रहने को आवास निःशुल्क । रज्जबअली की मृत्यु के पश्चात वे उसकी विधवा बेगम आजादी के यहाँ काम करते रहे और तत्कालीन छतरपुर नरेश के यहाँ सारी सुविधायें उपलब्ध कराये जानेकी शर्त पर भी नहीं गये । वह स्थान उनको इतना प्रिय हो गया था कि एक अन्य फाग में उन्होंनेइसका हवाला दिया । वे अपने मित्रों से यही प्रार्थना करते रहे कि यदि उनकी मृत्यु गंगा जी के पुनीत तट पर भी हो तो भी उनका दाह संस्कार बगौरा में ही पूरा किया जायें । दृष्टव्य है दोनो फागें :-

"जोलौं रहे पगन से नीके आय गये सबही कें ।
भये अंकौर रंजके मारें, जा नहूँ सकतकिसी कें ।।
आना आठ गांव में हिस्सा, मजा मिल्कियत जी कें ।
बने बगौरा रात ईसुरी, कारिन्दा बीबी कें ।।"

× × × ×

"यासे इतनो जस कर ली जौ । गंगाजू लौं मरें ईसुरी दाग बगौरा दीजो।"

इसी प्रकार उनकीअन्य फागो में राधा और कृष्ण का पौराणिक मिथक अन्तर्कथा रूप में प्रस्तुत हुआ है । राधा केमुख छवि की द्युति से सारे जगत में प्रकाश हो उठता है :-

"जग में होयउजेरोजीकौ, राधा कौ मुख नीकौ ।"

सूर्यचन्द्रमा का पौराणिक एवं प्राकृतिक मिथक ईसुरी की फागों में बड़ा ही स्पष्ट है[7]। इसमें लोक जीवन की झाँकी के साथकेशों का स्वाभाविक निरूपण किया गया है -

"कैसे उरे केस अनुगोये, आज लाड़ली धोये ।

बूंदा चुअत नितम्बन ऊपर, क्रम से गये निचोये ।

हरके केस भुजन पै आये, कारेनाग ससोये ।

ईसुर देखी छब छाजे पै, भानु चन्द्रमा मोये ।"

ईसुरी नेअन्तर्कथा-रूप मेंकृष्ण का इस प्रकार स्मरण किया है ।देखिये -

"रैयो मनमोहन सो बरकी, तुम नई भई, अहिर की।

होत भोर जमुना ना जइयों, देकैं कोर कजर की ।।

उनको राज उनईं की रैयत, सिर पर बात जबर की ।

ईसुर बात तला में बसकें, सैये साल मगर की ।।

× × × × ×

"ईसुर गिरधर रयं राधे में, राधा रयं गिरधर में ।

कामदेव का पौराणिक मिथक भीअन्तर्कथा रूप में विद्यमान है- सुर मुखतार मदन कें ।"

7- ईसुरी की फागें, सम्पा० कृष्णानन्द गुप्त, संस्करण संवत् 2003, पृष्ठ 3,4, 1,4,5,18,19,

राम, चार वेद, अष्टदश पुराण स्वर्ग-निसैनी, रामायण, तुलसी, कालहर (महादेव) आदि मिथक भी अन्तर्कथा-रूप में विद्यमान हैं । इसी प्रकार अन्यान्य लोक कवियों के लोक-साहित्य में सरसुतीमाता, शारदा माई, गणेश, शंकर, गिरजा, लक्ष्मी जू, देवीमइया, कालीमइया, राम, अवधबिहारी, राम-सीता, दशरथ, गीता, गोकुल के गिरधारी, ईसुरी कवि जैसे-"रामायण तुलसीकही, तानसेन ज्योंराग । सोई या कलिकाल में कही ईसुरी फाग ।" चातक, सूरज, सूर्यग्रहण, समुद्र, लक्ष्मण-रेखा, गंगा जमुना, बसन्त, शरद जुन्हैया, होली, इन्द्रधनुष, बालाजू, श्याम-मुरारी, अमावस, दिवारी, विधना, वृन्दावन, मथुरा, गोपी, ग्वाला, ऊधौ, कुब्जा इत्यादि की अन्तर्कथायें यत्र-तत्र सर्वत्र उपलब्ध होती हैं ।

6.4 फलागम रूप :-

लोक कथाओं में और दीर्घ लोकगीतोंमें निष्कर्ष के आधार पर फलागम निकालते हैं । वर्ण्य विषय का प्रतिपादन किसी न किसी उद्देश्य को पूरा करने केलिये होता है । यही कारण है कि प्रतीक अथवा बिम्बों का आश्रय लेकर साहित्यकार या लोक गाथाकार संगीतकार मनोभावों कासशक्त निरूपण करता है । इस प्रकार किसी छायाकार अथवा कलाकार की भांति, मनोगत भाव का यथार्थ चित्रणप्रस्तुत करना, भाषा के माध्यम सेअभिव्यक्ति देना अभीष्ट होता है । चित्र की रेखायें कुछ कहने को प्रेरित करती है । आँखें भी वाणीयुक्त होकर बोलने लगती हैं और वाणी अप्रत्यक्ष का वर्णनऔर दर्शन कर उठती है ।इसी प्रकार किसी कथा, नाटक, उपन्यास, कहानी, लोकगीत, एवं लोकगाथा को सुनने के अथवा देखने के उपरान्त उसका फल (परिणाम) निकाला जाता है । इसी को कथा, नाटक, उपन्यास, अथवा कहानी का फलागम कहतेहैं । लोकगीत और लोकगाथा में भी फलागम का तत्व विद्यमान रहता है । जैसे- दीपावली कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी से कार्तिक शुक्लाद्वितीया तकअनेक पर्व मनाये जाते हैं । इसे धनवन्तरि त्रयोदशीकहा जाता

है । इसके दूसरे दिन नरक चतुर्दशी (नरक चौदस) कहा जाता है कि द्वापर युग में श्री कृष्ण ने इस दिन नरकासुर का वध किया था । शास्त्रों में यमराज का तर्पण करना, दीपदान करना, तीन दिन पर्यन्त शुभ माना जाता है । इसका कारण है वामन भगवान ने इन्हीं तीन दिनों में राजा बलि की पृथ्वी को नापा था । प्रकाश समृद्धि वाचक है । दीपमाला के सम्बन्ध में एक पाश्चात्य विद्वान ने अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है- "वर्ष में एक रात को घरों को ऐसा सार्वजनीन रूप से प्रकाश पूर्ण करने की प्रथा से यह संकेत मिलता है कि वह उत्सव केवल मृत ओसिरिस के ही कारण से नहीं होता होगा वरन मृत मात्र के लिये होता होगा । दूसरे शब्दों में यह समस्त आत्माओं की रात होती होगी । क्योंकि यह एक अत्यन्त व्यापक विश्वास है कि मृत की आत्मायें वर्ष की एक रात को अपने पुराने घर को देखने को आती हैं और ऐसे अवसर पर लोग इन आत्माओं के स्वागत की तैयारी में उनके लिये भोजन तैयार करते थे तथा दीपदान करते थे जिससे उन्हें मजारों से घर तक के मार्ग का निर्देश मिल सके।[8] ओसिरिस मृत्यु के देवता माने जाते हैं और यम भी मृत्यु के देवता है । जिनको प्रसन्न करने हेतु जम दिया रखे जाते हैं । इस अनुष्ठान को पूरा करने में यम देवता के प्रति भय व्याप्त रहता है । अमावस्या को लक्ष्मीपूजन होता है । व्यापारी, व्यवसायी अपने खाते, बही, दवात, कलम, तराजू आदि का पूजन करते हैं । यह वैश्यों का प्रधान त्यौहार है अमावस्या को सूर्य चन्द्र तुलाराशि [illegible] में आते हैं । लक्ष्मी पूजन का वृतान्त पौराणिक [illegible] कथा में मिलता है । कहते है वेन के काल में पृथ्वी ने समस्त पदार्थों को आत्मसात कर लिया था । तब महाराज पृथु ने इसी रात्रि सभी वस्तुयें पृथ्वी से

8-फ्रेजर गोल्डनबाउ, (संक्षिप्त संस्करण) मैक० एण्ड क० लि० मि०, मार्टिन्स स्ट्रीट, लन्दन, फ्रेजर, पृष्ठ 337, 74

पुन: प्राप्त कर सुख श्री सम्पन्नता प्राप्त की, तबसे श्री-पूजन प्रारम्भ हुआ इस प्रकार यह अन्धकार पर प्रकाश की विजयका पर्व है । दूसरे प्रकाश से सभी प्रकार के रोगाणु नष्ट हो जाते है । द्वितीया के दिन गोबर से गोवर्धन की स्थापना की जाती है । गोधन सच्चा धन माना जाता है । गाय-बैलों की पूजा की जाती है । कृष्ण ने ग्वालों से इन्द्र की पूजा छुड़ाकर गोवर्धन पर्वत की पूजा प्रारम्भ की थी ।गोबर का पिण्ड सूर्यका प्रतीक माना जाता है और सीकें किरणों, का ।

प्राचीन कहानियोंके विषय पेड़-पौधे, जानवर, देवी, देवता अथवा राजा रानी होते हैं । समय-प्रवाहमें उनके स्वाभाविक नाम विस्मृत हो जाते है तथा घटनाओं की नई-नई कल्पनायें नि:सृत हुई हैं । राम के कथागीतों में राम की बहन शान्ता द्वारा सीता की चुगली खाने पर सीता निर्वासन की घटना कल्पित की गई है । व्रत की कहानियां राम, कृष्ण, शिव, शक्ति, लक्ष्मी आदि देवी-देवताओंके सम्बन्ध में कहीगई हैं । भारत में वैष्णव, शैव और शाक्त ये तीनों मतवाओं के सम्बन्ध में कही गई हैं । भारत में वैष्णव, शैव और शक्ति ये तीनों मत प्रमुखहैं । अत: इन देवताओं की लीलाओं में दुष्टदमन तथा प्रजा-रंजक कार्यों का उल्लेख है । ये कहानियां कुछ पौराणिक हैं, कुछ लौकिक । लक्ष्मी की कहानियां विष्णु पुराण, स्कन्दपुरा, महाभारत, रघुवंश आदि संस्कृत ग्रन्थों में कही गई हैं । पौराणिक कथायें अधिकांशत: प्रतीकवत हैं ।

इसी प्रकार करवा चौथ के व्रत में करवा का पूजन होता है और उसकी कहानी सुनाई जाती है । करवा जलपूर्ण घट होता है । जल से ही सृष्टि हुई है । जल मूलतत्व था और वह त्रिक भाव में आकर चाररूपों में चार कलशों की भावना प्रादुर्भूत हुई है । इस व्रतके अनुष्ठान में तिलकुट मानवमूर्ति का शिरोच्छेदन बलि-प्रथा का अवशेष प्रतीत है । नर, अश्व,अज, शब्दों का

आध्यात्मिक अर्थ है । सम्पूर्णानन्द के मतानुसार "आदि में बलि के लिये पुरुष या ईश्वर मनुष्य के शरीर में गया । परन्तु वह उसको अच्छा न लगा । फिर वह गऊ के शरीर में गया । वह भी अच्छा नहीं लगा । इसके बाद घोड़े, फिर भेड़-बकरी के शरीरों में गया । परन्तु वह उसको अच्छा न लगा । फिर भेड़-बकरी के शरीरों को छोड़ा । अन्त में उसने औषधियों में प्रवेश किया । वह उसे अच्छा लगा । इस छोटे से आख्यान में इन सैकड़ों हजारों वर्षों का इतिहास बन्द है जिनसे नरमेध से आर्य याजक फल-फूल पत्तियों की बलि या हवि तक पहुँचे[9] ।"

6.5 तुलनारूप :-

इस प्रकार बुन्देली लोक साहित्यगत जिसमें बुन्देलखण्ड का समूचा लोक कथा साहित्य, समूचा लोकगीत साहित्य, समूचा कहावत साहित्य, समूचा पहेली साहित्य एवं समूचा प्राचीन एवं अर्वाचीन लोक साहित्य सन्निविष्ट है, अनेक प्रकार के मिथक दृष्टिगोचर होते है । उनमें कहीं ये मिथक सन्दर्भमात्र है, तो कहीं पूरे कथा प्रसंगों को अपने में सन्निहित करके प्रेरक उपबोधन देते हैं तो कहीं ये मिथक अन्तर्कथा-रूप धारण करके भाषा की सामासिकता का अनूठा परिचय देते हैं, कहीं फलागम रूप में कथ्य के भोक्ता बनकर समूची कृति का आनन्द फल प्राप्त करते है और कहीं-कहीं तुलना रूप में विद्यमान रहकर भाषा और अर्थ के गांभीर्य को अभिव्यक्त करते हैं । कहीं-कहीं ये ही मिथक प्रतीक, बिम्ब और उपमा उपमेय बनकर काव्य में चमत्कार उत्पन्न करते हैं, तो साथ ही साथ मानवीकरण अलंकार के माध्यम से कलात्मक भाषा में निसर्ग के पदार्थ को एकदम साकार-सा जीवन्त कर देते हैं ।

9- आर्यों का आदिदेश, डा० सम्पूर्णानन्द, पृष्ठ 238.

सृष्टि के प्रारंभ से ही मिथक का प्रादुर्भाव हुआ क्योंकि जहाँ मानव चेतना में जिज्ञासा आई, वहीं से असंख्य कल्पनायें, यथार्थ कथायें कहानियों के रूप में प्रचलित होती गई और संस्कृति और विज्ञान के विकास के साथ-साथ मिथक बन गये । आज मनोवैज्ञानिक मानव-मन की चेतन-अचेतन की प्रस्तुतिमानते हुये मिथक का विश्लेषण करते हैं । सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश व वैज्ञानिक यथार्थ वादी बौद्धिकता के साथ-साथ मिथक भीपरिवर्तित होते रहते हैं । इस प्रकार मिथक कहीं न कहीं इतिहास से अवश्य जुड़े रहते हैं ।

लेकिन इनके परिवर्तन की गतिधीमीहोती है जिस कारण हमारा यर्थार्थवादी वैज्ञानिक जीवन आगे निकल जाता है, और ये इतिहास बन जाते है । "इन मिथकों में भी यथार्थवादीसामाजिकजीवन मूल्यों को व्याख्यायित करने की सामर्थ्य होती है । मिथक से ही कवि, कविता में मिथकों को नया अर्थ देकर अपनी संस्कृति को संरक्षित रखता है तथा सामाजिक व सांस्कृतिक विकास के लिये नये जीवन मूल्यों का निर्माण करता है । मिथक एक आविष्कार है। किसी प्रस्तुत वास्तविकता से प्रमुखविचारों की अवतारणा व कल्पना के माध्यम से पुन: अभिव्यक्तकरना। कवि इस विधि से यथार्थवाद तक पहुचते हैं । यहीकारण है कि मिथक कोरीकल्पना नहीं बल्कि यथार्थ लियेहुयेहोते हैं ।...छायावादी कवियों तथा कविताओं मेंएक विशेष जीवन दर्शन व एक नयी सामाजिक जागृति दिखाई देती है । ये कवि प्राय: जीवन तथा समाज को नये दृष्टिकोण व नये जीवन मूल्यों से झांकते हैं । परिणामस्वरूप नव समाज निर्माण की चेतना के कारण ये प्राचीन समाज कोजर्जर व रूढ़िग्रस्त व रोगी समाज के रूप में देखते हैं । इस युग के कवियों ने अपने काव्य में मिथक का प्रयोग काव्य, सौन्दर्य की वृद्धि, कविता को सरस व अर्थ सम्पन्न बनाने के लिये ही नहीं, किया बल्कि उस प्राचीन सामाजिक वातावरण, स्थिति, समाज कीसंस्कृति, जिसका कि वह भी एकअभिन्न अंग

है जो उसके चेतन व अचेतन मन को प्रभावित करती है, उससे प्रभावित होती है, कवि ने अपने काव्य द्वारा एक नई दिशा प्रदान की है । इस प्रकार इस युग के कवियों ने अपनी कविता में धार्मिक व पौराणिक मिथकों को लेकर समाज की प्राचीन धार्मिक मान्यताओं का खण्डन किया । इसी प्रकार उन्होंने प्राकृतिक मिथकों का एक नया जीवन-दर्शन देखा और एक नये संसार की शुरूआत की । आत्मनिष्ठ व मनोविज्ञानिक मिथकों से कवियों ने सामाजिक यथार्थ को मानवीय अनुभूतियों में तराशा और यहां भी उन्होंने एक आदर्श मानव की कल्पना की। यही कल्पना मिथक से जुड़कर कविता के रूप में प्रस्तुत होती है । वस्तुतः मिथक कल्पना और यथार्थ का समन्वय है[10] । इस प्रकार छायावादी कवियों ने अपनी कविताओं में पौराणिक, प्राकृतिक, सृष्टि व प्रलय के मिथों को उपमान, बिम्ब, प्रतीक व मानवीकरण के द्वारा वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है । वे सभी अवधारणायें जो जीवन मूल्यों, सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों को व्याख्यायित करती है, मिथक कही जाती हैं ।

बुन्देली लोक साहित्य के प्रणेताओं ने आत्मा-परमात्मा के मिलन के रूप में जन सामान्य नायक-नायिकाओं के सुन्दर चित्रों की अवतारणा की है । मानवीय कर्म और मानवीय सन्दर्भ के माध्यम से आध्यात्मिक क्षेत्र के मिथकीय प्रयोग स्तुत्य हैं । विवाह और द्विरागमन के चित्रण इस सन्दर्भ बड़े ही अनूठे और कबीर दादू आदि निर्गुण कवियों से तुलना-रूप में अत्यन्त कमनीय बन गये हैं । लोक कवि ईसुरी की "चखरी वाली फाग" ऐसा ही तुलनीय मिथक है । इसी प्रकार लोक साहित्य ने पौराणिक मिथकों को इस प्रकार चित्रित किया है कि वे आधुनिक

10- छायावादी काव्य में मिथक, डा० चन्द्रपाल शर्मा, पृष्ठ 294

श्रेष्ठ और आराध्य के साथ-साथ उन जैसे ही ग्वाल लग उठे । पौराणिक कृष्ण वृन्दाविपिन बिहारी बनकर सामान्य ब्रजवासी की भाँति आचरण करने लगा वह सुदामा के साथ अपने शैक्षिक जीवन में गुरू सन्दीपन के पास रहकर अरण्य में जाकर जहाँ ईंधन संचयन करता है, वहाँ साथ ही साथ ब्रजवासियों पर आई हुई आपत्तियोंऔर बाधाओं का समाधान भी ढूंढता है । उनकी गायें चराता है गोपियों से रार ठानता है और इन्द्रपूजा छुड़वाकर गिरि गोवर्धन की पूजा का सूत्रपात करता है । वस्तुतः वह प्रेम भावना के वशीभूत हो कहीं रज्जु-बन्धन में बंधता है तो कभी छछिया भर छाछ" के लिये गोपियों की इच्छानुकूल नाचता भी फिरता है । पौराणिक एवं महाभारत का योद्धा कृष्ण अलौकिक न रहकर उनका अपना सगा बन गया । इस प्रकार लोक साहित्य में "एक नहीं अनेक सुन्दर मिथक तुलनारूप में उपस्थित हुये हैं जिनमें बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति स्वयमेव मुखरित हो उठी है ।

सप्तम अध्याय

7.0 बुन्देली मिथक प्रयोग : वर्गीकरण :-

चाहे प्राचीन काल का काव्य हो चाहे मध्ययुगीन, चाहे रीति कालीन काव्य हो, चाहे प्रयोगवादी काव्य और चाहे आधुनिक कविता अथवा लोक साहित्य हो, उसमें मिथकीय सर्जना किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा करती है । यह एक युगीन सत्य है । "मिथक देशकालातीत है और वैश्विक धरातल पर सभी ऐतिहासिक -पौराणिक अथवा लोक-प्रचलित किम्वदन्तियां सृजन का आधार बन सकती हैं । किसी विशेष देशकाल में ऐसे ही मिथक स्वीकार हो सकते हैं जो जन-मानसिकता में रमे-बसे हों, जिनकी ऐतिहासिक-पौराणिक प्रासंगिता लोकायत में जानी और स्वीकारी जा सकती हो । यदि ऐसा नहीं है तो ऐसे मिथक-प्रयोग अर्थ की जगह अनर्थ पैदा कर देते हैं । यदि मिथक प्रासंगिक नहीं है, वह अपने समय की धड़कन को स्थापित नहीं करता तो उसका उपयोग महज एक हठयोगी प्रयास माना जायेगा । यदि आज कोई साहित्यकार "गीत गोविन्द" के कृष्ण को धर्मवीर भारती की "कनुप्रिया" की तरह उठाना चाहता है तो अपनी प्रासंगिता में वह "नियोरिज क्लास" की सैक्स विविधता को तो पूरा कर सकता है लेकिन युगीन, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता जबकि तिलक के कार्य योगी और हरिऔध के लोक कल्याण-पथगामी कृष्ण युग की मांग को, उसके अन्तर्विरोध को पूरा कर पाने में काफी सहयोगी सिद्ध हो सकते हैं । महात्मा बुद्ध और कालिदास का प्रसंग इतिहास-मिथ में परिगणित है । विचारणीय तथ्य यह है कि ऐसी कौन सी अनिवार्यतायें हैं जिनकी वजह से बुद्ध बुद्ध बने और कालिदास कालिदास । क्या बुद्ध इतिहास में आज तक इसलिये जीवित है कि उन्होंने नारी के आकर्षण और विकर्षण का दर्शन दिया था या इसलिये जीवित हैं कि उन्होने वर्ण-व्यवस्था

के शिकंजे में फंसे भारतीय जन मानस को गणतांत्रिक संघ की स्थापना के माध्यम से एक वृहत्तर मानवता का स्वप्न देखा ? क्या कालिदास का रसराज श्रृंगार उनके व्यक्तिगत एवं किम्बदन्तिपूर्ण प्रेम-व्यापारों पर टिका हुआ है अथवा उनके श्रेष्ठ सृजन साहित्य पर ? जो रचनाकार समष्टिगत उद्देश्यों को उपेक्षित कर व्यक्तिनिष्ठ निहित मन:संस्कृति से मिथक के वास्तविक और व्यापक सत्य को ढांपकर उसके गैर प्रासंगिक सन्दर्भों को उठाने की कोशिश करता है, वह अपने यथार्थ में न केवल मिथक को भ्रष्ट करता है बल्कि वैश्विक धरातल पर जन मानस को गुमराह भी करता है ।"[1]

मध्यवर्ग का सत्ताश्रयी चरित्र अमूमन जो होता है वह तो भारत के अतीत में हुआ है । लेकिन अपवाद स्तर पर उसी वर्ग से विविध चिन्तन आयामों में ऐसे भी लोग पैदा हुये जिन्होंने राष्ट्रीय आकांक्षा के आधीन सामन्ती अथवा अर्द्धसामन्ती वर्ग की ब्रिटिश साम्राज्यवादी साजिश को पहिचाना और नंगा किया । सांस्कृतिक स्तर पर गैर राष्ट्रीय साजिश देने वाले विषाक्त नश्तर को पहिचाना और यथाशक्ति उसे उघाड़ने की कोशिश की तथा सामाजिक एवं साहित्यिक स्तर पर देश की उन रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों पर निर्मम प्रहार करना शुरू किया जो मूलत: देश की प्रगति में बाधक थे । मध्यवर्ग के इस अपवाद स्तर में जीने वाले चिन्तकों, मनीषियों, एवं सर्जकों की निगाहें जमीन पर थीं और शायद ..सोलिये इसी वर्ग से पैदा हुये राजा राममोहनराय, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, सुभाषचन्द्र बोस, भगतसिंह, चन्द्रशेखर, आजाद, शरच्चन्द्र, वंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, भारतेन्दु, प्रेमचन्द्र, प्रसाद और निराला जैसे लोग। निश्चय ही यह वर्ग उस समय की साजिश से क्षुब्ध था अत: सामन्ती एवं साम्राज्यवादी दोनों ही मुहानों पर इन्होंने जो चोटें की, उसके परिणामस्वरूप न

1- मिथक और स्वातंत्रोत्तर नाटक, डा० रमेश गौतम, पृष्ठ 9

केवल सत्ता के हितों को ही अपनी चूलें हिलती नजर आईं, बल्कि अपवाद स्तर पर मध्यवर्ग की इस उग्रवादी राष्ट्रीय चेतना को सिल सिलेवार समझने के लिये उन्होंने सत्ता को प्रेरित भी किया। मजे की बात यह हुई कि उत्पादन का अधिक से अधिक लाभ उठाने एवं किसानों को उनकी ही जमीन पर भूखे और नंगे रखने के कारण प्रेमचन्द्र जैसे लोगों की निर्देशक भूमिका में किसानों में विद्रोह सुलगने लगा। अकाल, भुखमरी और लगानों की अतिशयता ने इस विद्रोह में ऐसा पलीता लगाया कि बंगाल से लेकर उत्तरी भारत तक विद्रोह की आग भड़कने लगी। इधर दूसरे महायुद्ध में पुलिस और सेना में विद्रोह जग जाहिर है। गलती से ही सही लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में बम्बई जैसे महानगरों में अंग्रेजों ने जिन उद्योगों की स्थापना की थी वहाँ अपने को उद्योगपति कहलाने वाले पूंजीपतियों ने जहाँ उत्पादन का नहीं श्रम का शोषण करना शुरू किया और उन्हें बंधुवा मजदूरों की तरह काम करने पर विवश किया तो वहाँ भी हड़तालों का सिलसिला शुरू हो गया और इधर अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर सन् 1917ई0 में जारशाही का पतन करके रूस में मजदूर क्रान्ति की सफलता के परचम क्या देखें, भारत में सी0पी0आई0का उदय हुआ और इस तरह कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि दूसरे महायुद्धके समाप्त होने के बाद तक पूरे राष्ट्र में भारत को आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से मुक्त करने की पूरी तैयारी थी और सब्जैक्टिव कन्डीशन में सुभाषबाबू तक तक थे। एक अभूतपूर्व राष्ट्रवाद था उस समय- जाति, संप्रदाय, धर्म और मजहब से बिल्कुल विहीन अलग और अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीतिज्ञों के आकाओं ने इस आग को भली प्रकार पहचान लिया था। ये चाहते थे अपने वायदे के अनुरूप द्वितीय विश्वयुद्ध के फौरनबाद भी देश को राजनीतिक मुक्ति दे सकते थे। पुनश्च आजादी मिली। दुष्परिणाम उसी समय नजर आने लगे। राष्ट्रीय अखण्डता

टूक-टूक हो गई । विभाजन इसका प्रमाण है । राजनीति के तत्कालीन उत्थान-पतन के रूप को देखकर स्वतंत्रता का बिल्कुल एक नवीन "मिथ" उदित हुआ ।

अतीत स्वयं में एक मिथ है । वर्तमान के भी अपने मिथक निर्मित होते हैं यही कालान्तर में अतीत के मिथ में परिवर्तित हो जाते हैं । वर्तमान उनके नये अर्थग्रहण कर युगानुरूप भविष्य की कल्पना करता है । इस प्रकार मिथकों कीअनेकता होना स्वयं सिद्ध है । अस्तु उपलब्ध बुन्देली लोक साहित्य के आधार पर प्रयोग की दृष्टि से निम्नांकित वर्गीकरण किया जा सकता है । इस वर्गीकरण के मूल में जहाँ दैवी कथाओं का महत्व निर्विवादित है वहाँ भावी कथायें और पौराणिक कथायें भी अपना विशिष्ट महत्व रखती हैं । दूर से देखने पर यद्यपि इन कथाओं में कोई विशेष उत्तार दृष्टिगोचर नहीं होताफिर भी उसका सूक्ष्म रूप से विश्लेषण किया जाता है तब इन कथाओं में स्पष्टतया पार्थक्य प्रतीत हो उठता है । बुन्देली लोक साहित्य में प्रयुक्त मिथकों का वर्गीकरण इस प्रकार है :-

§1§ अलौकिक मिथक- इसके अन्तर्गत दैवी कथाओं के संक्षिप्त एवं विस्तृत रूप परिगणित किये जाते है । सृष्टि,प्रलय,जीवन,मृत्यु,बाढ़,अकाल,भूकम्प आदि की घटनायें इसी के अंग हैं । लोक से परे विश्वास भी इसके कारण बनते हैं ।

§2§ लौकिक मिथक :- इसके अन्तर्गत लोक की प्रसिद्ध मान्यतायें,ऐतिहासिक घटनायें,सांस्कृतिक उतार-चढ़ाव और सामाजिक परिवेश उत्तरदायी हैं । जिनके आधार पर कोई साधारण व्यक्ति लोक नायक बनकर स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त करता है और सामान्य जन में राष्ट्रीयभावना का उन्मेष करता है । वीर हरदौल,कारसदेव,झांसी की रानी,सुभाष,चन्द्रशेखर,आजाद,सरदार भगतसिंह

ऐसे ही महापुरूष मिथकीय व्यक्तित्व से अभिमण्डित हैं ।

§3§ पौराणिक मिथक - इसके अन्तर्गत पुराणों में वर्णित धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक कथायें, परिगणित की जाती हैं । जैसे राम, कृष्ण, वामन, मत्स्य, हरिश्चन्द्र, विश्वामित्र, मेनका, दुष्यन्त, शकुन्तला, अत्रि, अनुसूइया, भीष्म, अश्वत्थामा, गौतम, अहल्या, देवराज इन्द्र, नारद, व्यास, शुकदेव, पाराशर, गरूड़, सिन्धु-विमंथन इत्यादि की ।

§4§ दार्शनिक मिथक - इसके अन्तर्गत वे कथायें संन्निहित रहती हैंजिनमें आत्मा-परमात्मा के तत्वों का निरूपण रहता है। कबीर आदि सन्त कवियों की संसार, जीवात्मा एवं परमात्मा विषयक रचनायें इसी के अन्तर्गत परिगणित की जायेंगीं यम-नचिकेता की कथा इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेख्य है । ईश्वर एवं पंच तत्वों का निरूपण भी इसका प्रतिपाद्य है ।

§5§ प्राकृतिक मिथक- इसके अन्तर्गत प्रकृति की ललित एवं भयावह चेष्टायें, सूर्य, चन्द्र, -उदय-अस्त, संध्या, मध्यान्ह, रात्रि, नदी, पर्वत, वृक्ष, सर्ग, लय आदि से सम्बन्धित कथायें अथवा वर्णन एवं नैसर्गिक परिवेश के अन्तर्गत उषा आदि का जीवन्त चित्रण सटीक माना जायेगा । ऋग्वेद का उषस एवं नासदीय सूक्त से सम्बन्धित लोक गाथायें प्रमुख हैं -

§6§ ऐतिहासिक मिथक - इसके अन्तर्गत इतिहास की वे सुप्रसिद्ध कथायें परिगणित की जायेंगी जिन्होंने किसी विशेष युग में कोई अपनी विशिष्ट छाप छोड़ी हो जैसे पोरस, सिकन्दर, राणाप्रताप, शिवाजी, पाद्मनी, सती, जौहर, मीरा, तुलसी, सूर, हुमायूं, अकबर, औरंगजेब, मृगनयनी, मानसिंह, कर्मवतीबाई, पेशवा, लक्ष्मीबाई, सुभाष, गांधी, पटेल, अम्बेडकर, राधाकृष्णन, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द इत्यादि ।

§7§ काव्य मिथक - इसके अन्तर्गत काव्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्तियां परिगणित

की जायेंगी विशेषकर श्रृंगार के रस राजत्व निरूपण करने वाली छवियां । क्योंकि रसकाव्य की आत्मा है और प्रत्येक व्यक्ति सौन्दर्य से प्रभावित होता है । सौन्दर्य और श्रृंगार एक दूसरे के पर्याय हैं । श्रृंगार का उत्स रति है । सृजन इसीका प्रतिफल है ।

7.। दैवी कथायें :-

कल्पान्तर से जब प्रलय हो चुकी तब सत्य संकल्प ब्रह्मा की नाक के छिद्र से अंगूठे के बराबर वराह-शिशु निकला जो कालान्तर में बड़ा होता चला गया । विष्णु के इसी बराह अवतार ने, सम्पूर्ण प्राणियों की आश्रय भूता पृथ्वी का उद्धार किया । तब कहीं ब्रह्मा के मन से प्रकट होने पर मनु ने आधे भाग से उत्पन्न शतरूपा की अर्धांगिनी रूप में प्रजापति के निर्देशानुसार उससे मानवी-सृष्टि की। मनु से उत्पन्न होने के कारण ही उनकी सन्तति मनुज कही गई । श्री मदभागवत पुराण[2] की कथानुसार विष्णु ने ही तेईस अवतार धारण कर अब तक, जब-जब यहां अत्याचारों का आधिक्य बढ़ा और धर्म का ह्रास्य हुआ तब-तब अनेक शरीरधारण कर पृथ्वी का भार दूर किया । क्षीरशायी भगवान विष्णु ही सृष्टि के प्रारंभ में नाभि से उत्पन्न कमल पर प्रजापति ब्रह्मा का प्रादुर्भाव करते हैं । पुनश्च वे इच्छानुसार समूची सृष्टि की पुनः रचना करते हैं । यह उनका सहज कौतुक है । जैसे कोई शिशु बालक दिन भर मन चाहे खिलौना

2- श्री मदभागवत पुराण, वेदव्यास,

बना बनाकर खेलता है और फिर स्वतः ही उन्हें नष्ट कर दूसरे दिन फिर उनकी सर्जना करता है । ठीक इसी प्रकार प्रजापति ब्रह्मा का सृष्टि-सृजन मात्र एक खेल है, एक स्वप्न है । मनुष्य एक निरीह प्राणी है । भला वह सर्व समर्थ सर्वशक्तिमान ईश्वर की महत्ता कैसे जान सकता है ? उसके लिये ईश्वर के सारे क्रियाकलाप अज्ञेय और अलौकिक है । ऐसी अलौकिक और कैसी घटनायें ही अलौकिक मिथकों की उत्पत्ति की सर्जना करती हैं । बुन्देली लोक साहित्य की कथाओं एवं लोकगीतों में ऐसी घटनाओं के अनेकशः वर्णन हैं । उदाहरण स्वरूप एक रचना उद्धृत है । यथा-"अंधियारे में जो जग भओ। हरा-हरौ उजियारो भओ । सेसनाग की कर सैया । स्री के संग सो रओ छैया। ऊ के मन में ज्ञान भई । रचबे खौ फिर सृष्टि नई । पदम नाभि से प्रकट करो। ऊ पै ब्रह्मा रूप धरो । जल तें धरती निकर परी । हरि ने भारी कृपा करी । गगन बना पाताल बना । त्रिभुवन रवि चन्द्र बना । सरि गिरि और अरण्य बना। जीव जन्तु रच राज धना। अज ने मन में सोच करौं । मन सतरूपा रूप धरौं । समै-समै पै लै औतार । हरो विस्नु नें भू कौ भार[3]।"

महाभारत पुराणों फिर आगे ऐसा भी वर्णन है कि "सम्भल ग्राम में विष्णु यशा नामक सदाचारी ब्राह्मण होंगे । उन्हीं के यहाँ निखिल सृष्टि के सर्जक, पालक एवं संहारक परम ब्रह्म परमेश्वर भगवान कल्कि के रूप में अवतरित होंगें । बड़े होने पर वे देवदत्त नामक शीघ्रगामी अश्व पर आरूढ़ हो पृथ्वी के सम्पूर्ण म्लेच्छों का नाश करके स्वाभाविक रूप से सतयुग का शुभारम्भ करेंगे[4]। बुन्देली लोक साहित्य में इसकी छाया इस रूप में सुलभ होती है । यथा -

---

3- बुन्देली लोकगीत संग्रह, सम्पादक डा० रामस्वरूप खरे, पद 300, सातवाँ भाग ।

4- बुन्देली लोकगीत संग्रह, सम्पादक डा० रामस्वरूप खरे, पद 300, सातवाँ भाग ।

"कर पापिन को फिर संहार । हुइहै चौबिसवाँ औतार ।

कल्कि हरेंगे भू का भार । खोलेंगे सतजुग का द्वार[5] ।"

इस प्रकार सृष्टि,प्रलय और ईश्वर के अनेक अवतार अलौकिक मिथक ही माने जायेंगें।

प्रलयकालीन समुद्र में जब ब्रह्मा जी सो गये तब उनकी सृष्टि-शक्ति नष्ट हो चुकी थी । उस समय उनके मुख से निःसृत श्रुतियोंको चुराकर हयग्रीव दैत्य पाताल में ले गया । भगवान ने उसे मारकर मत्स्य रूप[6] में राजा सत्यव्रत को दर्शन दिये । यही ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न होकर इस कल्प में वैवस्वत मनु हुये ।

इसी प्रकार समुद्र-मंथन के निमित्त भगवान विष्णु ने ही कच्छप और मोहिनी अवतार धारण करके सृष्टि की रक्षा करतेहुये असुरों एवं दैत्यों का संहार किया[7] । इन अवतारों में अलौकिकता पदे-पदे दृष्टिगोचर होती है । इसी प्रकार वामनावतार[8] में भी अलौकिकता के दर्शन होते हैं ।

अवतारों के समय असमय में ही फूल फलों का प्राचुर्य, पृथ्वी का गोरूप धारण, असुरों के अत्याचार से पृथ्वी प्रार्थना, संकुचन, भूकम्प, पर्वतों, का कांपना, ग्रह नक्षत्रों का टूटना आदि अलौकिक घटनायें वर्णित हैं । बुन्देली लोकगाथाओं पहेलियों एवं लोकगीतों में इन तत्वों का समाहित किया गया है । यह सब इन्हीं वैदिक कथाओं के अंग-उपांग हैं ।

---

5. महाभारत, वेद व्यास,

6. श्री मद्भागवत् पुराण, वेदव्यास, 8/24/61, 12/13/2

7. विष्णु पुराण, 1/9/14, 16/ श्री मद्भागवतपुराण, 8/5/45/8/12/47,

8. वामनपुराण, 92/15

7.2 मानवी कथायें :-

देवी कथाओं में जहाँ अलौकिकता मुख्य रूप से विद्यमान रहती हैं वहीं लौकिक कथाओं में मानवीय- व्यापारों का निरूपण हुआ करता है। मनुष्य अपनी बुद्धि से बल से अनेक प्रकार के साहसी कार्य सम्पादित करता हुआ, विघ्न-बाधाओं को हंस-हंस कर झेलता हुआ लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है तत्पश्चात दृढ़ लगन औरमहान संकल्प के द्वारा वह सफलीभूत होता है। वीर हरदौल, कारसदेव कीलोक कथाओं में ऐसे ही चरित्र नायकों का वीरता-पूर्ण वर्णन उपलब्ध होता है। महोबा के शूर वीर आल्हा-ऊदल तथा उरई का माहिल पुत्रअभई [अभयसिंह] ऐसे ही अनुकरणीयनायक हैं जो साधारण स्थितियों और परिवारों में जन्मे तथा समाज की उपेक्षा के शिकार हुये। किन्तु अपने चरित्र की दृढ़ता और अजेय साहस से उन्होंने अपने व्यक्तित्व का भलीभाँति विकास किया।

वीर हरदौल ओरछेश [प्रथम] बीरसिंह देव के पुत्र थे। जुझार सिंह इनके बड़े भाई थे जो अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् सिंहासनारूढ़ हुये। हरदौल बुन्देलखण्ड को मुगलों के चंगुल से छुड़ाकर स्वतंत्र करना चाहते थे। इनके समय में मुगलों ने ओरछा पर अनेक आक्रमण किये परन्तु वीर हरदौल के अजेय साहस और पराक्रम के सामने शाहजहाँ की एक न चली। वीर हरदौल का विवाह तत्कालीन दुर्गापुर के जागीरदार लाखनसिंह परमार की पुत्री हिमांचल कुआरि के साथ सन् 1627 ई० में सम्पन्न हुआ और एक पुत्र रत्न विजयसिंह के चार माह पश्चात उनकी सन् 1630 ई० में मृत्यु हो गई। अतएव विजय का पालन-पोषण उसके चाचा भगवानराय दतिया द्वारा किया गया। बाद में बड़े होने पर उन्हें अपने पिता की जागीर [एरछ, बड़ौनी, बड़ागांव] प्राप्त हुई। इनके

प्रताप सिंह नामक एक पुत्र हुआ । प्रताप के पुत्र रायसिंह हुये । दिमान रायसिंह ने अपनी सम्पूर्ण जागीर के बराबर-बराबर आठ भाग करके अपने आठों पुत्रों में सन् 1790 ई० में बाँट दिये । इतिहास में यह "अठभैया जागीर"[9] के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

जुझार सिंह के मन में चापलूसों और हरदौल के विरोधियों ने रानी चम्पावती के साथ हरदौल के अनैतिक सम्बन्ध कीकहानी गढ़कर, सन्देह उत्पन्न कर दिया । परिणामस्वरूप जुझारसिंह ने अपनी रानी को निर्दोष सिद्ध करने के लिये हरदौल को विषयुक्त भोजन परोसने को कहा । परमभक्त मधुकर शाह के नाती वीर हरदौल ने रानी की सतीत्व-परीक्षा के निमित हँसते-हँसते विष युक्त भोजन करके आत्मोत्सर्ग कर दिया । त्रेतायुग में जिस प्रकार लक्ष्मण ने अपनी भाभी के साथ रहकर उन्हें माता के समान सम्मान दिया था ठीक उसी प्रकार वीर हरदौल ने भी अपनी मातृवत भाभी को महिमामयी ही नहीं बताया अपितु वे नारियों का आदर्श सिद्ध हुई । मात्र 23 वर्ष की उम्र में ही आद्य शंकराचार्य की भाँति वीर हरदौल का आत्म-त्याग बुन्देली गौरव-गाथामाला का अनूठा नगीना बन गया । पुनश्च बलिदान के उपरान्त हरदौल की बहन कुंजावती अपनी पुत्री के विवाह में फूलबाग स्थित उनकी समाधि पर नेवता देने एवं भात मांगने आई । तुरन्त आकाशवाणी द्वारा एवं स्वप्न में बहन को ऐसी प्रतीत हुई कि -जाओ तुम किसी बात की चिन्ता न करो । मै स्वयं विवाह में उपस्थित होकर भात लाऊंगा साथ ही साथ विवाह का पूरा प्रबन्ध भी करूँगा ।" कहते हैं हरदौल ने विवाह में अपने भानेज दामाद को प्रत्यक्ष दर्शन दिये और भेंट में भागौनी,बिरूआ सागर, अमरपुर मठ, माजना के ग्राम भान्जी को

9- दातपुरा कर्री, पसराई, टारौली चिरगांव, करवई, बिजना, टोरी फतेहपुर बंका एवं बंकापहाड़ी । -ओरछा का इतिहास, ठाकुर लक्ष्मणसिंह गौर, पृष्ठ 26

दान में भी दिये[10] ।

आज वीर हरदौल केवल समूचे बुन्देलखण्ड में अपितु पूरे उत्तर भारत वर्ष में देवता-तुल्य माने जाते हैं । ग्राम-ग्राम में बने उनके चबूतरे इस बात के प्रबल प्रमाण हैं । वीर हरदौल अपने उत्कृष्ट एवं उदात्त त्याग के लिये सदैव प्रातः स्मरणीय रहेंगे । मरते तो संसार में सब है पर मरणोपरान्त भी जिनका वंश अमर रहता है, सच्चे अर्थों में वही जीवित रहते हैं । वे मरकर अमर बन गये ।

किम्वदन्ती है कि राजू गूजर ने दिल्लीशवर पृथ्वीराज चौहान के साथ अपनी कन्या ऐलादीका विवाह सम्बन्ध करने से मना कर दिया था । राजू उस समय दिल्ली सीमान्तर्गत राजौरगढ़ में रहता था । चौहान के भय से एक दिन उसने दिल्ली का परित्याग कर दिया और याना लुहार की हरियल झाँझ में अपने परिवार सहित रहने लगा ।

गूजर राजू की कन्या ऐलादी ने महादेव की बारह वर्षों तक आराधना की थी । महादेव प्रसन्न होकर राम-लक्ष्मण एवं भाग्य-विधात्री वैमाता और ब्रह्मा के साथ हिंगलाज की देवी के पास गये । देवी ने महादेव को एक कटा हुआ सिर दिया । ऐलादी को महादेव ने वरदान में वही कटा हुआ सिर दिया। उसे ऐलादी ने वहीं तुरन्त एक पाटे पर पटक दिया । उससे निकटस्थ तालाब में एक कमल का फूल दृष्टिगोचर हुआ । जब ऐलादी स्नानार्थ उस तालाब में प्रविष्ट हुई तब वह कमल-पुष्प उसके हाथों में आ गया । उसने उस फूल को घर आकर अपने जलघरा पर रख दिया । अर्द्धरात्रि के समय वह पद्म-पुष्प अलौकिक तेज से प्रकाशित नवजात शिशु के रूप में परिणत हो गया । सरोमाता उसे "कारस" कहकर पुकारने लगी[11]।

10- दातपुरा, कर्से, पसराई, टारौली, चिरगाँव, कुरवई, विजना, टोरी फतेहपुर, बंका एवं बंका पहाड़ी, - ओरछा का इतिहास, ठाकुर लक्ष्मणसिंह गौर, पृष्ठ 25,

11- मामुलिया (मासिक हिन्दी पत्रिका) सम्पा0डा0 नर्मदाप्रसाद गुप्त, प्रका0 बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर के "एक अलौकिकदीप कारसदेव, नामकलेखका अंश। लेखक- श्रीराम... कमल सिंह "राकेश" पृष्ठ 19,

लोकगीत में कथा-भाव इस प्रकार है :- "सवा पैर कंचन बरसे, हरियल झांझ में । कलि में हो गये उजयारे । ढै गये कंगूरा मानाराय के जब कारस ने लओ औतार । वारे जनमत फूसर-मड़ैया कंचन की हो गई । और मिटे करम के दाग । वारे जन्मत धरनी के धर डगे । डगे परवत धरनी पातारें[12] ।"

अर्थात् हरियल झांझ में सवा प्रहर तक कंचनवृष्टि होती रही । कलि में उजाला हो गया । तृण की झोंपड़ी कंचन के रूप में परिणत हो गई । मानाराय के दुर्ग के कंगूरे ढह गये और पृथ्वी, पाताल तथा पर्वत कांपने लगे । बड़े होने पर कारसदेव ने पृथ्वी राज चौहान को कई युद्धों में परास्त कर उसकी कन्याका अपहरण करके अपने धर्म पिता राजू गूजर के अपमान का बदला लिया ।

बाद में कारसदेव ने अपने भान्जे नयनपाल को समझाया । कारस देव के सुप्रसिद्ध अश्व लीला का वर्णन लोक गाथाकार इस प्रकारकरता है :-

"ककई मंगाई हांती दांत की, रोम-रोम दिये निरवार ।
वारन-वारनमोती वेंदे, किसवारन हीरा-लाल ।
चारउं ऊड़ मेंदी रची, पूंछ रची सरबोर ।
चार पधारक पुट्ठन धरी, बगलन लिखीं चकोर ।
हरे पाट की हरियां लिखीं, और लिखो वन मोर ।
कंचन पुतरिया ढील कूंरव में रूपे की बांदी नाल ।
लील के गंडा गुदियन गुथे, मन लिपटें कारे नाग ।
सवा लाक की कलंगी धरीं, लीला के माज लिलार ।

12- बुन्देली लोकगीत संग्रह, सम्पा०डा० रामस्वरूप खरे, भाग-1, लोकगीत सं० 7।

कलंगी डुले, मोती औं, मन गंगा हेरा लेये ।

धरैं पलेंचा मकतूल के लोहे की दई लगाम लगाय[13]।"

इसतीव्रगामी अलौकिक अश्व की एक अनूठी झांकी दर्शनीय है :-

"छिपेरे बछेरा दै दैओ बाको चाल लगे थनमान ।

सजे बछेरा धीरज ना धरे टापन फोरैं डारे पातार ।

उड़यौ जावे बछेरा इन्दर लोक कौं ।"

इसी प्रकार युद्धार्थ सन्नद्ध कारसदेव का सैन्य-वेश तो देखिये :-

"पेरीं कछइयां रगधगी बरन्तर सेत सुपेद ।

टोप झलरिया सिर दये, पीछें दई गौड़ की ढाल ।

तेगा बांधे गुजरात कौ, जा पै धरी दुधारा धार ।

छप्पन छुरियां फेंटन कसकें कारस साज भये तैयार ।

सेल लफारो ले हांतन में, लै लहौरीलाल कमान ।

कारस जी ऐसा सज्यौ, मन उग रऔ दूजौ भान ।"

तब आश्चर्यचकित हो कारस की बहन ऐलादी बोली :-

"कां को बछेरा दुरबारू कर दये ई को भेद दियो बतराय ।

कां को पेरीं चूरा-सांकरें, कांको कसेतेज हथियार ।

कै मैड़िया ने मैंड़े दावे, कै भुमिया ने दावे गांव ।

कारसदेव अपनी बहन ऐलादी को उत्तर देता हुआ कहता है जिसका आशय

है कि :-

13- बुन्देली लोगीत संग्रह, सम्पा०डा० रामस्वरूप खरे, भाग-1, लोकगीत सं० 71.

"होश में मैने रण-चूड़ा पहना है रण-क्षेत्र में जाने के लिये अस्त्र-शस्त्र धारण कर लिये है और हाथों में रण-कंकण बांधे मृत्यु -वधू का वरण करने को उद्यत हूँ। मैं दांतों से घोड़े की रास संभालूंगा और शत्रु सेना को कुचल डालूंगा। अपने प्रयत्न में सफल नहीं होने पर ऐलादी कहती है- "हटक हटीले हट परे वरजू लये न मान। बांगिर की रसना रर रये,बरजे न माने सौ-सौ बार।" अर्थात सौ-सौ बार मना करने पर भी हठीला कारसदेव हठ नहीं छोड़ता। वह बार-बार बांगिर की रटना रट रहा है।" बांगिर शब्द की ऐतिहासिकता के संदर्भ में विद्यालंकार का कथन पठनीय है। वे लिखते है :-

"सिन्धु और गंगा के क्षेत्रों के बीच में कुरुक्षेत्र का बांगिर ही एक ऐसा रास्ता है जिससे होकर पूर्व से पश्चिम जाने वाली या पश्चिम से पूर्व की ओर जाने वाली सेनायें गुजर सकती हैं। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र के बांगिर प्रदेश में भारतीय इतिहास में अनेक महत्त्वपूर्ण और भाग्य-निर्णायक लड़ाइयाँ लड़ी गई थीं[14]।"

कारसदेव ने अपने भाई-सूरपाल को साथ लेकर गढ़ टांड़ के जाट सरदार पर चढ़ाई कर दी। सूरपाल ने जाट सरदार की भैंसियों को घेर लिया। मार्ग में हरयाना प्रदेश पड़ा। वहाँ के जाट सरदार ने गढ़ टांड़ के सरदार की पुत्री का पाणिग्रहण किया था। सरदारिनी ने अपनी भैंसों को पहचान लिया और सूरपाल से कहा- "आगे की भुअरी भैंस को पाड़ी, पीछे की मनकिया भैंस और

14- भारत का प्राचीन इतिहास, प्रका० सरस्वती सदन, मसूरी, संस्करण सन० 1950, सत्यकेतु विद्यालंकार, पृष्ठ 21,

अन्य सभी भैंसियां मेरे पिता की है । क्या मेरे नैहर में स्त्री-पुरूषों के जोड़े सो गये थे ? क्या मेरे भाई ससुराल गये थे । क्या तुमने आधी रात में चोरों की टाटें हटा दीं {कै टाटि हारे आदीरात में} अथवा तुमने भुन्नसारे रात में पसर चरते समय इन भैंसियों को पकड़ लिया {कै मारे पसुरिया भुनसारी रात {"तब सूरपाल ने उत्तर दिया- "ऐसा कुछ नहीं है । तुम्हारे मां-बाप इन्हें हाट में बेचने लाये थे और मैंने हाट में ही उनसे इन भैंसियों को खरीद लिया-यथा-{हाट बझाई सौदा खरीदी तेरे माई-बाप से ।" जाट बधू इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुई । पिता के पास वस्तु स्थिति जानने को सन्देश-वाहक भेजा और अपने पति से कहा-"तेरे जीवन को धिक्कार है क्योंकि मेरो नैहर वीरान हो गया है । सूरपाल मेरे पिता की भैंसियां हांक हरियल झाड़ि ले जा रहा है ।" इसे सुनकर जाट सरदार बोला-"यदि सूरपाल और कारसदेव मनुष्य हो तो युद्ध किया जाय। देवों पर विजय प्राप्त करना संभव नहीं । अरी बावरी, कारस तो साक्षात् शंकर का अवतार है ।" यह सुनकर जाट बधू ने अपने पति की भर्त्सना करते हुयेकहा- "तूने अस्तबल में घोड़ो को क्यों बांध रक्खा है ? क्यों शस्त्रों से अपने को सज्जित कर लिया है ? तू अपनी पोशाक उतार कर मेरी पोशाक पहन ले । अपने घोड़े और लड़ाई के हथियार मुझे दे दे । यदि हो सका तो मै आगे बढ़कर इन्हें रोकूंगी {हेकत थानिहै तो ठैंक हों} वरना मै उनके साथ ही चली जाऊंगी । कहे देती हूं कि मै वहीं उनके साथ भैंसियों के गोबर पाथूंगी{गोबर डारत रैओं भुअरी भैंस को} और तेरे कुल के गौरव को कलंकित अर्थात तेरे कुल में दाग लगा दूंगी । अपनी बधू के द्वारा इस प्रकार की भर्त्सना सुनकर जाट सरदार भी तुरन्त ही युद्ध तैयार हो गया ।" फिर क्या था अंतस की अग्नि की भांति सरदार की क्रोधाग्नि भड़क उठी रण की तुरही तू-तू बज उठी । रणसिंघे बजे रणकंकण बांधे शूरवीर तैयार हो गये।

बावन देश के राजा और अस्सी हजार बख्तर धारी योद्धा बात की बात में पहुंच गये । कोई पलाण करने लगा, कोई अगरी पीठ पर है, सवार हो गया । सब युद्ध करने चल पड़े । घुड़ सवारों के चलने पर पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े हो गये और कंकड़ों के छोटे-छोटे खण्ड रेत के रूप में परिणत हो गये । आकाश में रेत-कण आच्छादित होने से दिन में ही सूर्य अस्त सा प्रतीत होने लगा । इस प्रकार युद्ध के मंगलाचरण का नगाड़ा बज उठा ।" युद्ध का सजीव और अतिशयोक्ति परक वर्णन यहां लोक साहित्य की प्रतिभा का अद्भुद निदर्शन करा रहा है । अत्यन्त प्रशंस्य है । यथा -

"जटरा सुन ऐसें जर मरो मन लगी जहवीरन आग ।
तू तू तू तुरही बजी ऊंची गुरज बनी कंडाल ।
गुरज-गुजर पै घटा बाजि, रनसिंगा दै दै ललकार ।
रन के कंगन बांध हात में रनके सूर भये तैयार ।
राजा जुड़ आये बावन देस के और बखतरिया असी हजार ।
कोउ सजाये बछेरी पै चांदनी, कोउ चढ बैठ खरारी पीठ ।
इक छन चाले दो गये चलत न लागी वार ।
पथरा गुर कतरा भये, ककरन की भई रेत ।"

"निःसन्देह कारसदेव की कीर्तिगाथा में चित्रित हरयाना की जाट बधू के चरित्र की उपेक्षा नहीं की जा सकती । निर्भीकता को बोलती प्रतिभा जाटबधू की तुलना महा भारत की राजरानी विदुला से की जा सकती है । रूस की क्रान्ति कारिणी महिला एमा गोल्डमैन के समान उसमें अपनी गर्मी है । जहां कालिदास की शकुन्तला और निर्वासिता सीता के रोने से मोर नाचना भूल जाते हैं, फूल हंसना छोड़ देते हैं, हिरणों के मुख से घास के कौर छूट जाते हैं और जंगल का

उल्लास नि:श्वास में बदल जाता है,[15] वहाँ जाट-वधू की गर्जना से पत्थर धूल बनकर आकाश को ढक लेते है और सेलों में बिजली कौंधने लगती है । पति का निषेधार्थक उत्तर सुनकर जाट वधू हीनता से सिर नहीं झुकाती है । वह रण-यज्ञ के हवन-कुण्ड में हवनीय घृत बनने को उतावली हो उठती है और शूलों की तीखी नोंक पर चलने की अभिलाषा प्रकट करती है । दृढ़ता, दूरदर्शिता, निर्भीकता, सम्भाषण पटुता इन सबके समन्वयन जाट वधू के अन्तरंग सौन्दर्य को रमणीय, स्मरणीय प्राणमय और आकर्षणमय बना दिया है[16] ।" इस प्रकार वीर हरदौल, कारसदेव, सूरपाल, जाट वधू मानवीय कथा होने के कारणलौकिक मिथक के रूप में परिगणित किये जायेंगे ।

7.3 पौराणिक कथायें :-

बुन्देली लोक साहित्य में अनेकानेक पौराणिक कथाओं का उल्लेख किया गया है । इन पौराणिक कथाओं में भिन्न-भिन्न मिथक प्रस्तुत किये गये है । कुछसम्बन्धित कथाओं के सारांश यहाँ प्रस्तुत है :-

भगवान राम अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र थे । उन्होंने माता-पिता कीआज्ञा पालन हेतु राज्याभिषेक त्याग हंसते-हंसते वनवास स्वीकार किया। राम लक्ष्मण और सीता साथ रहीं । अनेक बाधाओं और विपत्तियों को झेलते हुये उन्होंने अनेक राक्षसों का वध किया । गौतम-पत्नीअहल्या का उद्धार, शबरी पर अनन्य कृपा करते हुये अनीति पथ गामी जयन्त को क्षमादी, विभीषण को अपना कर शरणागत वत्सलता का परिचय दिया । केवट को अपना कर ऊँच-नीच

15- रघुवंश, कालिदास, चौदहवां सर्ग ।

16- मामुलिया सम्पा०डा० नर्मदाप्रसाद गुप्त, पृष्ठ 29, अंक दीपावली संवत 2040.

और जातीय भेद-भाव दूर कर समानता की प्रतिष्ठा की । अन्त में लंकाधिपति अत्याचारी रावण का सवंश विनाश कर लंका में विभीषण का सुशासन संस्थापित कर, सीता को साथ में ले लक्ष्मणादि सहित [illegible] अयोध्या वापस लौटे । रामराज्य की स्थापना की जिसमें न कोई दीन दुखी था, न कोई ऊँच-नीच । सभी स्वस्थ्य थे । सभी सदाचारी थे । उनके शासन में गाय और सिंह एक घाट पानी पीते थे, तात्पर्य यह कि सत्य धर्म, सदाचार, और न्याय पर आश्रित उनके राज्य में मेघ समय पर वृष्टि करते थे । धन-धान्य और सम्पूर्ण वैभव-सम्पन्नता थी । लोकमत का सम्मान करने हेतु उन्होंने मात्र एक सामान्य रजक के कहने पर गर्भवती प्राणप्रिया अर्धांगिनी का परित्याग कर एक आदर्श राजा का उदाहरण सबके समक्ष प्रस्तुत किया ।

राम ने अपने जीवन में सदाचार, न्याय, मर्यादा और समता की रक्षा की । अन्याय के प्रति झुके नहीं । उसका शक्ति भर डटकर मुकाबला किया । उनके इन्हीं सुकृत्यों ने नर से नारायण बना दिया । वे इस प्रकार त्रेता युग के पुरुषोत्तम एवं आदर्श और मर्यादा वादी श्रेष्ठ पुरुष माने गये । लोक-मानस ने उन्हें अपने हृदय सिंहासन पर भगवान के रूप में प्रतिष्ठित किया । आज उनकी अपराजेय एवं अमर गाथा पौराणिक मिथक के रूप में विद्यमान है । जब तक धरती का अस्तित्व और आकाश में सूर्य-चन्द्र अवस्थित रहेंगे, उनका यश कभी धूमिल नहीं होगा ।

द्वापर युग के अपराजेय नेतृत्व को लेकर कृष्णवसुदेव देवकी के पुत्र के रूप में कंस के कारागार मथुरा में प्रकट हुये । अनेक बाल क्रीड़ायें करते हुये न केवल उन्होंने अपने धर्म पिता-माता नन्द-यशोदा को आनन्दित किया अपितु वहाँ के ग्वाल-बाल और गोपियों को भी अलौकिक सुख प्रदान किया । राम की भाँति इन्होंने भी अनेक कष्टों को झेला । अत्याचारों के विरुद्ध स्वयं अपने

अत्याचारी मामा के विरुद्ध अभियान छेड़ा । ग्वाल-बालों को संगठित करके उनका नेतृत्व किया और अन्याय-अनाचार के विरुद्ध ऐसी मशाल जलाई कि समूची असद शक्तियाँ स्वतः ही भस्माभिभूत हो गई । महाभारत के धर्मयुद्ध में पाण्डवों की सहायता कर "यतः धर्मः ततो जनः का उद्घोष किया । जन्म से मरण पर्यन्त आपत्तियों, कष्टों और विपत्तियों को झेलते हुये कदाचारी राक्षसों का समूल विध्वंस किया । उग्रसेन को पुनः राज्य सिंहासन पर बिठलाया और वसुदेव -देवकी को कारागार से मुक्त कराया । साथ-ही साथ अर्जुन के मोह को दूर कर उसे क्षात्र धर्म की रक्षार्थ युद्ध के लिये सन्नद्ध किया तथा "कर्मण्ये वाऽधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचिन" का उदाहरण प्रस्तुत कराया । गीता का अनूठा दर्शन कृष्ण की ही देन है ।

युग-युगों तक राम की भाँति लीला पुरुषोत्तम कृष्ण भी लोक-साहित्य में पौराणिक मिथक के रूप में विद्यमान रहकर सदैव कर्तव्य करने की प्रेरणा देते रहेंगें । उन्होंने न केवल यदुवंश को गौरवान्वित किया अपितु समूचे विश्व को अनुकरणीय एवं आदर्श कर्तव्य-बोध से भी अवगत कराया । वेद-पुराणों में उनकी यश-गाथा भरी पड़ी है । अष्टैश्वर्य गुणान्वित श्रीकृष्ण को श्री मद्भागवद पुराण के अनुसार बाईसवाँ अवतार माना जाता है ।

संगीत कला एवं साहित्य के साथ-साथ सामरिक विधा-नैपुण्य कम ही व्यक्तित्वों में दृष्टिगोचर होता है । सत्यं, शिवं और सुन्दरम् के भाव ने कृष्ण को सचमुच सच्चिदानन्द के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया ।

महर्षि विश्वामित्र की कृपा से सशरीर स्वर्ग जाने वाले और वहाँ से देवताओं द्वारा गिराये जाने पर बीच में ही अब तक सुस्थित रहने वाले महाराज त्रिशंकु के पुत्र राजर्षि हरिश्चन्द्र दानी भगवत-भक्त, धर्मात्मा एवं प्रजा वत्सल

अयोध्याधिपति थे । उनकी सत्यनिष्ठा तीनों लोकों में विख्यात थी ।

देवर्षि नारद से महाराज हरिश्चन्द्र की प्रशंसा सुनकर देवराज इन्द्र को भी ईर्ष्या हुई और उन्होंने परीक्षा लेने का निश्चय किया और इसके लिये विश्वामित्र को तैयार किया । विश्वामित्र ने अयोध्या का सम्पूर्ण राज्य हरिश्चन्द्र से दान में प्राप्त कर लिया । दान के अनन्तर विश्वामित्र ने दक्षिणा माँगी । राजा हरिश्चन्द्र क्या करते । सत्य वचन का व्रत तो निभाना ही था । अतएव वे काशी जा पहुँचे । स्वयं डोम के घर बिके और श्मशान-रक्षा का भार लिया । महारानी शैव्या एक ब्राह्मण के यहाँ धात्री का काम करने लगी । राजकुमार रोहित भी माता के साथ अनुचर का काम करने लगा । इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र जितनी दक्षिणा चाहते थे स्वयं पत्नी और पुत्र को बेचकर उन्हें सहर्ष प्रदान की और अपने धर्म का निर्वाह किया । परीक्षा तो परीक्षा होती है । उसमें किसी प्रकार का पक्षपात नहीं चलता । अस्तु जब एक दिन अचानक रोहित को उद्यान से ... पुष्प लाते समय सर्प ने काट लिया और वह कालकवलित हो गया तब शैव्या की अभूतपूर्व परीक्षा की घड़ी आ उपस्थित हुई । आज उसे धैर्य बंधाने वाला कोई भी नहीं था । दासी के पुत्र को भला कौन ले जाता श्मशान तक ? रात्रि के गहन अन्धकार में रोती-बिलखती वह अपने हाथों पर पुत्र का शव लेकर उसकी अन्त्येष्टि के लिये श्मशान पहुंची पर हाय रे दुर्भाग्य वहाँ उसका पति कहलाने वाला स्वयं मृत्यु-कर माँग रहा था क्योंकि उसे अपने मालिक चाण्डाल की आज्ञा पालन करना थी। माता कर दिये बिना उसे जला नहीं सकती थी । करुण-क्रन्दन सुन हरिश्चन्द्र ने यद्यपि उसे पहचान लिया था । कितनी करुणामय स्थिति थी, अनुमेय है कि पिता के समक्ष उसके एक मात्र पुत्र का शव लिये पत्नी बिलख रही थी और मृत्यु पिता को उस कंगालिनीसे भी कर बसूल करना ही था । परन्तु हरिश्चन्द्र का धैर्य

अविचल था । उन्होंने कहा- "भद्रे ! जिस धर्म के लिये मैंने राज्य छोड़ा, तुम्हें छोड़ा और रोहित को छोड़ा, जिस धर्म के लिये मैं यहाँ चाण्डाल का सेवक बना, तुम दासीपनी, उस धर्म को मै नहीं छोडूँगा । तुम मुझे धर्म पर डटे रहने में सहायता दो । पत्नी का यही धर्म है । आर्य ललनाओं का यही सदाचार है[17] साड़ी का आधा भाग लेना स्वीकार करने पर ज्यों ही शैव्या ने कर-रूप में आधी साड़ी फाड़ना चाही त्यों ही भगवान विष्णु प्रकट हो गये । सत्य औरधर्म भगवान के स्वरूप हैं । जहाँ सत्य तथा धर्म है, वहीं स्वयं भगवान प्रत्यक्ष हैं । देवराज इन्द्र, विश्वामित्र और स्वयं धर्म वहाँ प्रकट हो गये । धर्म ने कहा -"मै स्वयं चाण्डाल बना था ।" इन्द्र ने अमृत वर्षा करके कुमार रोहिताश्व को जीवित कर दिया । धर्म सदाचार की विजय हुई ।

इन्द्र ने सपरिवार सशरीर स्वर्ग चलने की हरिश्चन्द्र से प्रार्थना की। तब हरिश्चन्द्र ने कहा-"मेरी प्रजा मेरे वियोग में इतने दिन तक दुखी रही । मै प्रजाजनों को छोड़कर मात्र सुख-भोग हितार्थ स्वर्ग नहीं जाऊँगा ।" यह था उस युग का प्रजा वात्सल्य । हरिश्चन्द्र ने अपना समस्त पुण्य प्रजा को दान दे दिया और कहा कि प्रजा के सारे पाप भोगने मै स्वयं नर्क जाऊँगा । इस प्रकार महाराज के अप्रितम दान, धर्म और सत्य की रक्षा देखते हुये इन्द्र ने समस्त अयोध्यावासियों को उनके स्त्री पुत्रादि सहित सदेह स्वर्ग भेज दिया ।

हरिश्चन्द्र का सत्याचरण आदर्श धर्म आचरण बन गया और हरिश्चन्द्र "सत्य हरिश्चन्द्र" बनगये । उनकी यह अलौकिक एवं पौराणिक कथा सदा के लिये आदर्श सत्य सदाचार कीदिव्य गाथा बन गई । किसी लोक कवि ने सत्य

17- कल्याण, सदाचार अंक, सम्पा० मोतीलाल जालान, गीताप्रेस गोरखपुर वर्ष 52, संख्या 1, जनवरी 1978, पृष्ठ 400

भी कहा है :-

"चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत-व्यवहार ।

पै दृढ़ व्रत हरिश्चन्द्र को टरै न सत्य विचार ।"

अत्रि-अनुसूया, दुष्यन्त, शकुन्तला, भीष्म, अश्वत्थामा, गौतम-अहल्या, इन्द्र, नारद, व्यास, शुकदेव, पराशर, गरुड़, प्रभृति पौराणिक आख्यान लोक मानस में पौराणिक कथाओं के बीज-रूप में विद्यमान हैं । ये पौराणिक मिथक युग-युग तक अपने प्राचीन-अर्वाचीन अर्थ देने में सक्षम रहेंगे ।

7.4 उपर्युक्त कथाओं में अन्तर :-

जहाँ तकउपर्युक्त कथाओं के अन्तर का प्रश्न है इन कथाओं के शीर्षकों के वर्गीकरण से उनका अन्तर्भाव स्पष्ट हो जाता है । इसलिये पुनरावृत्ति के भय से उन्हें यहाँ न लिखकर मात्र उनका अन्तर स्पष्ट करना ही शोधार्थिनी का अभीष्ट है ।

देव से दैवी शब्द बना है । इसके मूल में दिव् धातु है जिसका व्युत्पत्ति परक अर्थ स्वर्ग, प्रकाश अथवा दिव् से सम्बन्धित माना जाता है । अभिप्राय यह माना जा सकता है कि दैवी कथा में लोक कलापों का वर्णन हो । स्वर्ग, नर्क, अमृत, पिता, सूर्य, चन्द्र, बाढ़, अकाल, अतिवृष्टि इत्यादि प्राकृतिक आपदायें ईति-भीत से सम्बन्धित कहानियाँइसी कोटि की हैं । इनके प्रति लोक मानस में गहरा विश्वास है । मात्रईश्वर ही इनके रहस्य को जान सकताहै । मानव मात्रतो इनके समक्ष निरीह और विवश है ।

जबकि मानवीय कथायें दैवी नहीं बन सकतीं । क्योंकि उन्हें प्राकृतिक उपादानों में प्रादुर्भूत नहीं किया वरन् वे मानवीय-सृष्टि हैं । इन मानवीय कथाओं में मनुष्य की मेधा का उत्कर्ष, बुद्धि-चातुर्य और लौकिक एवं

भौतिक कार्य-कलापों का निरूपण होता है । इतिहास और कल्पना का इनमें अद्भुत, समन्वय रहता है । देश-धर्म पर न्यौछावर होने वाले महापुरूष और शहीद इन कथाओं के नायक-नायिका बनते हैं । ऐतिहासिक काल-खण्ड में शासन करने वाले राजा-रानी, राजकुमार एवं मंत्री अपने जन-हित के कारण स्मृत किये जाते हैं । संसार सत् और असत् का संमिश्रण है । इसलिये सदाचारी और कदाचारी इसके पात्र बनते हैं । समाज में घटने वाली तत्कालीन समूची परिस्थितियों एवं वातावरणों का इनमें सुस्पष्ट दिग्दर्शन कराया जाता है ।

पुराण भारतीय मेधा की ही देन हैं । वेद व्यास ने अष्टादश पुराणों की रचना कर अनन्तर अष्टादश उपपुराण भी सृजित किये । इन पुराणों का मूल चतुर्वेदों में विद्यमान है । इस प्रकार चाहे सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग की गाथा हो वह सब पुराणों के विषय का प्रतिपाद्य बन जाती है । मनुष्य को मनुष्य देह बड़े पुण्यों के पश्चात मिलती है । यह देव-दुर्लभ एवं साधन धाम मानी जाती है । सत्य, धर्म का प्रतिपादन करते हुये मनुष्य वर्णाश्रम का पालन करके कैसे चतुष्टय पुरुषार्थ की प्राप्ति कर सकता है, इन समूची कथाओं का उद्देश्य है । अतएव परोपकार रत रहते हुये मनुष्य को चाहिये कि वह परमात्मा की प्राप्ति के लिये निरन्तर उद्योग करता रहे, यही जीवन का अन्तिम ध्येय है। माया इस ध्येय प्राप्ति में अनेक व्यवधान उपस्थित करती है । इसलिये उसकी ओर न देखते हुये इन्हीं सद्ग्रन्थों शास्त्रों की त्रिवेणी में अवगाहन करके अपने स्वार्थी मन को पवित्र बनाकर उसे भगवच्चरणों में लगा देना चाहिये । मानव-जीवन के एक मात्र भगवान हैं । सभी पौराणिक कथायें भिन्न-भिन्न रूप से अनेक देवी-देवताओं का परिचय देती हुयी मनुष्य को सुकर्म हेतु प्रेरित करती हैं ।

ये मनुष्य को सुकर्म हेतु प्रेरित करती हैं । वेद व्यास जी के मतानुसार अष्टादश पुराणों का सार यह है -

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।

अर्थात अठारह पुराणों का सार मात्र यह है कि परोपकार ही पुण्य है और पर-पीड़ा पाप । इसलिये मनुष्य को सदैव पुण्याचरण करते रहना चाहिये । इसी से मुक्ति के द्वार उद्घाटित होते हैं ।

प्रत्येक देश का अपना एक विशिष्ट एवं लोक साहित्य होता है । विशिष्ट साहित्य में शास्त्रीय विवेचना के आधार पर विषय का प्रतिपादन किया जाता है जबकि लोक साहित्य सीधे-सादे ऋजु एवं भोले-भाले अपढ़ व्यक्तियों की मेधा और हार्दिक भावनाओं का समुच्चय रूप हुआ करता है । इसमें सर्वत्र व सहजता और निश्छलता विद्यमान रहती है । यह किसी एक विशिष्ट व्यक्ति की देन न होकर समुदाय की मौखिक अभिव्यक्ति होती है। यही कारण है कि लोक में जो आलोक की धारा प्रवाहित होती है उसमें जन सामान्य अवगाहन करके सच्चीशान्ति का अनुभव करता है । विशिष्ट साहित्य में यौवन की सुगन्धि, रूप और दिव्य आकर्षण है, तो लोक नव जात शिशु की भोली भाली मन्द मधुर मुस्कान है । शिशु के सुन्दर गात की भांति लोक साहित्य का कलित कलेवर भी अत्यधिक मृदुल, सुखद और भव्य है । जैसे गोमुख से भगवती गंगा का उद्भव होता है ठीक उसी प्रकार लोक-मुख(वाणी) से लोक साहित्य की पुण्यतोया की अक्षुण्ण धारा प्रादुर्भूत होती है ।

भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं वरन् आध्यात्मिक दृष्टि से भी भारत वर्ष एक महान देश है । भारत की विशिष्ट प्रथा है धर्म और देश की अभिन्नता स्वीकार करना । यह भावना सर्व प्रथम ऋग्वेदिक संस्कृति में उदित हुई थी । धर्म और भारत की अभिन्नता की, जिसमें उत्सर्ग की भावना भी सम्मिलित है, उत्कृष्ट अभिव्यक्ति गुप्त काल में विरचित विष्णु पुराण के राष्ट्रीय गान में हुई है । यथा-"भारत जम्बू द्वीप का सर्वश्रेष्ठ विभाग है, क्योंकि यह पुण्य देश है । अन्य देशों को केवल सुखोपभोग की कामना रहती है । इस पुण्य देश के निवासी ही सुखी हैं जो अपनेकार्यों के फलों को

परमात्मा पर छोड़कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं । परमात्मा की अनुभूति की उनकी यही विधि है । देवता स्वयं कहते हैं कि देवताओं की तुलना में वे लोग सुखी हैं जो भारत वर्ष में मनुष्य रूप में जन्म लेते हैं क्योंकि स्वर्ग के सुखों और मोक्ष के उपरान्त प्राप्त आनन्द का यही एक मार्ग है ।"

श्रीमद्भागवत् पुराण में भी कहा गया है कि भारत पवित्र नदियाँ पर्वतों और पावन तीर्थ स्थलों तथा अवतारों, साधु प्रकृति राजाओं भक्तों और धर्म प्राण पुरुषों का यह देश महान है । यहाँ ईश्वर स्वयं कृपा करके मानव योनि में अवतीर्ण हुआ है ताकि नश्वर प्राणी उसकी भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकें । अर्थात देवगण बहुत त्याग, तप और दान के पश्चात मिलने वाले स्वर्ग-सुख से अधिक श्रेय इस पवित्र भूमि पर जन्म लेने को देते हैं। भारत भौगोलिक इकाई ही नहीं वरन् पूजा और श्रद्धा की वस्तु है, ईश्वर के प्रति स्पृहा और उसकी अनुभूति का प्रतीक है ।

इसी आध्यात्मिक देश भारतवर्ष का उत्तर प्रदेश एक विशिष्ट प्रांत है । इसी उत्तर प्रदेश का एक सांस्कृतिक भू-खण्ड है बुन्देलखण्ड है । यह भी अपनी आन बान और शान में अत्यधिक अनूठा और बांका है । यहाँ के निवासी अत्यन्त सरल, विनम्र और निश्छल हैं । यह दया, ममता और समता के साथ-साथ वीरत्व की अखण्ड भावना से ओत प्रोत है । इसी सांस्कृतिक प्रदेश की लोकवाणी है बुन्देली । यह अपने में वैदिक एवं लौकिक संस्कृत के साथ-साथ पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का अवदान समेटे पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी के शीतल एवं उत्तुंग शिखर से निनादित हुई है । इसमें खड़ी बोली-सी अक्खड़ता तथा ब्रज भाषा-सी मधुरता विद्यमान है । इसका लोक साहित्य अत्यन्त समृद्ध और विपुल परिमाण वाला है जो निरन्तर शोध का विषय बना

रहेगा । यह लोक साहित्य प्रमुख रूप से लोक गाथाओं, लोकगीतों, लोक कहावतों एवं लोक पहेलियों में विभक्त किया जा सकता है । इसके भावनात्मक और वैज्ञानिक दोनों ही पक्ष अत्यधिक विचारणीय, रम्य और वैज्ञानिक हैं । इस लोक साहित्य पर वैदिक और पौराणिक कथाओं का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है । यही वह प्रमुख कारण है जिसके परिणाम स्वरूप यहां के बुन्देली लोक साहित्य में मिथकीय अवधारणा का प्राधान्य है । इस प्रकार गद्य और पद्य दोनों विधाओं में "मिथक" के प्रयोग से जहां लोक कहानियों में अलौकिकता और चमत्कार का गुण समाविष्ट हुआ, उसी के साथ-साथ पद्य-पक्ष में तीव्रतम सरस भावानुभूति की कुशल और सहज अभिव्यक्ति भी कम स्तुत्य नहीं है । इस लोक साहित्य के अध्ययन के द्वारा यहां की जहां राजनीतिक, सामाजिक, भौगोलिक स्थिति का परिज्ञान हुआ वहां साथ ही साथ पाठक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक स्थितियों से भी अवगत हुआ है । क्योंकि किसी भी देश की संस्कृति-सभ्यता ही उस देश का मेरुदण्ड हुआ करती है । बुन्देली साहित्य में बुन्देली लोक गीत जाज्वल्यमान नक्षत्रों की भांति उद्भासित हैं । इनके सन्दर्भ में एक अभिमत देखिये- "कोई गीत पहाड़ी पगडंडी के समान ऊंचा-नीचा, कोई समतल प्रदेश से दूर तक फैले हुये क्षितिज की छवि लिये हुये । नीरव, उदास दोपहरी के गीतों का रंग और होता है, रात्रि के गीतों का और । प्रत्येक ऋतु, प्रत्येक उत्सव, कातने-बुनने के धंधे, जुताई, बुआई और निराई-कटाई की सामाजिक क्रियायें- सभी के साथ गीतों के टांके लगे हुये हैं । मकई की रोटी जैसा सूर्य उदय होता है, सांझ हो आती है, रात बीत जाती है और समय चक्र के साथ

साथ लोकगीत के पहिये निरन्तर चलते रहते हैं । किसी क्लान्त थकित युवती का चित्र, जिसका किसी भी काम में जी नहीं लगता, किसी वन-प्रान्तर का चित्र, एकाकीपन में गुंथा हुआ, मातृ-वत्सलता की कोई कड़ी, ग्रामदेवता का आवाहन अच्छी फसल के लिये प्रार्थना, किसी रीति-रीति प्रथा या विश्वास का संकेत, कोई वीरगाथा-ऐसी कुछ सामग्री बार-बार लोकगीत के अस्पष्ट शब्दों में की जाती रही है- युग युगान्तर से । लोक मानस की एक एक रेखा, सामाजिक बोध की एक-एक अवस्था, सामूहिक सुख-दुःख और सामूहिक विजय-पराजय, प्रकृति की गतिविधि, वृक्ष, पशु-पक्षी और मानव के पारस्परिक सम्बन्ध, बलि, पूजा, टोने-टोटके- लोकगीतों की पृष्ठभूमि में समाज विज्ञान के असीम भण्डार का अध्ययन किया जा सकता है । भारतीय लोकगीत अनेक शैलियां प्रस्तुत करते हैं । प्रत्येक जनपद का अपना रंग है, अपना रूप । गहन अध्ययन से यह पता चलते देर नहीं लगती कि ये सभी रंग एक दूसरे के पूरक हैं । समस्त भारत एक है । भारतीय लोकगीत अपनी-अपनी अनेक शैलियों सहित इस तथ्य का समर्थन करते हैं । भाषा और बोली के भेद सब ऊपरी हैं । लोकगीत की चित्र मंजूषा में भारतीय संस्कृति की एकता दीखती है, अनेकता के धागों के बीचों बीच गुंथी हुई एकता, ध्वनि, चमत्कार और भाव-व्यंजना की विभिन्न गलियों के बीचों बीच चतुर्दिक फैली हुई एकता ।"

मिथक के सम्बन्ध में इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसिज में लिखा है कि मिथक लोकसाहित्य के समान जातिगत इच्छाओं और विचारों का माध्यम है । लोक साहित्य और मिथक का मूलभूत अन्तर यह है कि "मिथक अलौकिक संसार की कथा है जिसके कारण इसमें धार्मिक तत्त्व सम्मिलित हो जाते है । यद्यपि लोक साहित्य और मिथक दोनों में औपन्यासिक कथा उपस्थित रहती है ।" नीत्शे के अनुसार "मिथक असीम की ओर उठती हुई सार्वभौम भावना

और सत्य का विलक्षण रूप है ।" जबकि हैरल्ड के० शिलिंग मानते है कि "मिथक एक साहित्यिक माध्यम है, जो संस्कृति के मूल और गूढ़ तथा गहन आस्था एवं विश्वास की अभिव्यक्ति के लिये विशेष रूप से उपलब्ध है ।" एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ऐथिक्स में ई० एल० गार्डनर ने लिखा है कि- "मिथक सामान्यतः प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कथात्मक होता है । सामान्य कथाओं से मिथक की यह भिन्नता है कि मिथक कथा जिन लोगों में प्रथम बार दुहराई जाती है, वे उसे सत्य मानते हैं ।" यह रही पाश्चात्य विचारकों द्वारा मिथक के सम्बन्ध में अवधारणा ।

भारतीय विद्वानों में डा० नगेन्द्र यह स्वीकार करते हैं कि "मिथक धार्मिक कर्मकाण्ड के कलात्मक प्रतिरूप हैं । उसकी औचित्य साधना का भाव कल्पनात्मक प्रयास है । मिथक स्पष्टतः प्रमाण अथवा रूढ़ धार्मिक सिद्धान्तों के आख्यान हैं ।"

वैसे मिथ अंग्रेजी भाषा का शब्द है जो ग्रीक भाषा के मूल शब्द "मुथास" और लैटिन के "मिथास" से निःसृत है । इसका शाब्दिक अर्थ है मुखोच्चरित वाणी अथवा मौखिक कथा । जबकि अरस्तू मिथ शब्द का प्रयोग कथानक, कथाबन्ध और गल्प कथा के रूप में करते हैं । हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मिथ का हिन्दी रूपान्तरण "मिथक" के रूप में किया । इसके पीछे उनकी लोकवादी दृष्टि मुखरित रही है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि अठारहवीं शताब्दी के पूर्व तक मिथक को वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से असत्य कपोल-कल्पना के रूप में समझा जाता था । डा० रमेश कुन्तल मेघ के अभिमतानुसार- "मिथक में अतीत ही शाश्वत वर्तमान है । अतः केवल मिथक का आद्य संसार ही

यथार्थ है, पवित्र है तथा सत्य भी है । इस-न्याय से मिथकीय काल एकैक काल है, शाश्वत काल है, अविभाज्य काल है तथा अनैतिहासिक काल है । अतः यह पूर्वैतिहास है । यह मिथकीय काल ही महाकाल है । काल के इतिहास बोध में मिथक घुलकर इतिहास तथा धर्म-दर्शन के प्रतीकात्मक रूपों में घुलकर अन्तर्विरोधों तथा विरोधाभासों के चमत्कारपूर्ण उन्मीलन के बजाय नैतिक औचित्यीकरण और ऐतिहासिक व्याख्यायें करने लगाती है।" डा० पद्मा अग्रवाल के अनुसार "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पौराणिक कथाओं मिथक से मनुष्य के स्थायी भावों, उसकी आकांक्षाओं तथा कार्य-पद्धतियों का प्रकाशन होता है ।"

इस प्रकार मेरी मान्यता है कि मिथक धार्मिक कथा है और इसीलिये वह सही इतिहास है, क्योंकि विश्व का अस्तित्व उसे सिद्ध करता है। सृष्टि की उत्पत्ति का मिथक भी समानरूप से इसलिये सही है कि मनुष्य अपने अनुष्ठानों में ब्रह्माण्ड की प्रकृति को प्रतिबिम्बित करता है । मिथक में प्रमुख रूप से देवी-देवताओं के वृत्त होते हैं । जिनका धार्मिक महत्त्व होता है । प्रायः सभी अतिप्राकृत चरित्रों का निर्माण इसी द्वारा संभव होता है । इस प्रकार मिथक किसी न किसी रूप में कर्मकाण्डीय तथा अनुष्ठानिक संस्कारों से सम्बद्ध हैं । दूसरे धरातल पर मिथक ही भाषा है । क्योंकि कोई भी भाषा मिथकरहित नहीं है, बल्कि मिथक उसकी एक प्रमुख शक्ति है । भाषा भावमूर्ति को व्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ नहीं होती है । इसी सामर्थ्य के अन्तराल को कवि उपमा, रूपक आदि अलंकारों से भरता है । कवि प्रायः अप्रस्तुत योजना को मिथक तत्त्व द्वारा ही परिपूरित करता है । इस प्रकार भाषा की यह चित्र-निर्माण शक्ति मिथकीय कल्पनाओं से ही निर्मित होती है । अस्तु डा० नगेन्द्र के स्वर में अपना स्वर मिलाते हुई मेरी धारणा है कि "मिथककार की तरह कलाकार भी कलाकृति में अपने अचेतन में संचित पुरातन संस्कारों की अभिव्यक्ति प्रदान

करता है और यह प्रक्रिया आदिकाल से ही चला आ रही है ।" वस्तुत: मिथकों में भावात्मकता, कल्पनाशीलता, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता, एवं रहस्यानुभूति ऐसे अनेक तत्व हैं जो उन्हें साहित्य के अत्यन्त निकट पहुंचा देते हैं । साहित्य के क्षेत्र में मिथकों के अवतारण का एक स्वधार्मिक आस्था से उनका प्रयोग भी है । हिन्दी के मध्ययुगीनकाव्य में राम, कृष्ण, शिव आदि की कथा का ग्रहण इसी प्रकार का उदाहरण है ।

मिथक का कार्य अपने नहीं, समाज के अन्तर्विरोधों को व्यक्त करना और उन्हें निदान की प्रक्रिया की ओर अग्रसर करना है । इसलिये मिथक में द्वन्द्व का स्वरूप समवादी है । मिथक इसलिये सामूहिक विकास के हिस्से हैं, क्योंकि वे इतिहास के द्वन्द्वों द्वारा अस्तित्व में आये हैं । वे झूठ नहीं हैं, जातियों द्वारा अनुभूत सामाजिक सच है । इसलिये मिथक का सामाजिक यथार्थो से खुला और गहरा सम्बन्ध है । सामाजिक जीवन की रचना करने वाली परम्पराओं आकांक्षाओं और विश्वासों के ही चेतरचनात्मक रूप हैं । सुने तौर पर जो बातें नहीं कही जा सकतीं, आदमी उन्हें मिथक में कहता है। दूसरी ओर कल्पना का क्षेत्र इतना विस्तृत और व्यापक हो जाता है कि भाषा के सामान्य उपलब्ध उपकरण सब प्रकार की कल्पनाओं को व्यक्त नहीं कर सकते हैं, तब रचनाकार का ध्यान एक ऐसे अतीत उपकरण की ओर जाता है जो मिथक के रूप में उसकी कल्पना को मूर्तित कर सकें । डा० नामवर सिंह भी ऐसा ही स्वीकार करते हैं कि "रचनाकार सही मिथक की तलाश मानवीय सृजनात्मकता के नये आयाम से शुरू करता है और आकल्पीय बिम्बों को मन: सौन्दर्यात्मक स्तर पर ग्रहण कर अपनी कलात्मक अभिप्रेरणा के यथार्थवादी संधान पर संस्कृति की रचना करता है ।"

समूचे बुन्देली लोक साहित्य का गंभीरता पूर्वक विश्लेषण करने पर

उसमें अनेक मिथकों की उद्भावना प्रतीत होती है। दैवी शक्तिओं के क्रिया कलापों में लोक कवि एवं लोकगाथाकार ने "अलौकिक मिथक" का प्रयोग किया है। दैवी-वन्दना के गीतों मेंइस प्रकार कीअनेक अभिव्यंजनायें व्यक्त की गई हैं। सृष्टि और प्रलय के प्रकरण भी इसी से सम्बद्ध हैं।

जबकि मानवी कथाओं एवं सामाजिक अन्य गीतों में लोकोन्मुखी वातावरण प्रस्तुत करके बुन्देलखण्ड के अतीत के वैभव को स्मरण किया गया है। इस सन्दर्भ में लोक साहित्यकारों ने वीर आल्हा ऊदल, वीर हरदौल, वीर कारसदेव, वीरांगना लक्ष्मीबाई, सूरपाल, जाटबधू आदि के सुन्दर आख्यानात्मक लोक गाथायें प्रस्तुत की गई हैं जिनमें "लौकिक मिथक" ही सुन्दरतम अभिव्यक्ति हुईहै।

रामायण एवं महाभारत ऐसे दो प्रसिद्ध महाकाव्य है जिनका अतीत प्रभाव विशिष्ट साहित्य पर तो पड़ा ही किन्तु उसके साथ-साथ लोकसाहित्य पर भी कम प्रभाव नहीं पड़ा। राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, हरिश्चन्द्र, मत्स्य, वामन तथा अनेक अवतारों के मूल में यही "पौराणिक मिथक" उद्भासित हैं। लोक गीतों में सर्वाधिक राम, कृष्ण, शिव, विष्णु के साथ-साथ सीता, राधा, पार्वती और लक्ष्मी के मिथक पौराणिक पृष्ठभूमि में गुम्फित हैं।

जीव, जगत, ईश्वर और माया से सम्बन्धित प्रकरणों में लोक साहित्य कारों की दार्शनिक भावनायें कूट-कूट कर भरी हैं। इन्हें मैंने "दार्शनिक मिथक" की संज्ञा से अभिहित किया है। जबकि आत्मा और परमात्मा के विवेचन से सम्बन्धित लोक साहित्य में "आध्यात्मिक मिथक" की सफलतम अभिव्यक्ति की गईहै।

बुन्देली लोक कवियों ने उपमान के रूप में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा के माध्यम से मिथक की अभिव्यक्ति की है। प्रतीक एवं बिम्ब के रूप में भी मिथक दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें मानवीकरण की प्रवृत्ति का बाहुल्य है। इस प्रकार "प्राकृतिक मिथक" के माध्यम से लोक काव्य में सरसता, अर्थ सम्पन्नता और तीव्रानुभूति का सुन्दर निदर्शन कराया गया है।

जब भाषा अपने मनोगत भावों की अभिव्यक्ति में असमर्थ होती है तब "भरे मोन में करत हैं नैनन हीं सों बात" के रूप में साहित्यिक मिथक" द्वारा कवि अनकही बात को भली भांति व्यक्त करने में सफल हो जाता है। बुन्देली लोक साहित्य में ऐसे अनेक मिथक स्वर्ण मुद्रा में मणि की भांति खचित हैं।

पुराख्यान, मिथक, लीजेण्ड और लोक साहित्य में पर्याप्त अन्तर है। क्योंकि मात्र पुराणों में वर्णित देवीदेवताओं का वर्णन जहाँ पौराणिक मिथक की सृष्टि है, वहीं, कल्पनाश्रित लोक कहानियों में लीजेण्ड की सुन्दर अभिव्यंजना प्रस्तुत की गई है।

इस प्रकार "वे सभी अवधारणायें जो जीवन मूल्यों और सामाजिक मूल्यों को व्याख्यायित करती हैं, मिथक कही जाती है। मिथक से कवि सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखता है। मनुष्य का सर्जनात्मक जीवन सांस्कृतिक अनुभवों के प्रभाव क्षेत्र से बाहर नहीं होता। परिणामस्वरूप कवि कविता के मिथकों को नये अर्थ देकर बार-बार प्रस्तुत करता है और इस तरह अपनी संस्कृति के संरक्षण के साथ-साथ उसे अधिक सम्पन्न एवं सर्जनात्मक बनाता है। कवियों ने रामकथा को प्रत्येक युग में विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है जो सांस्कृतिक मूल्यों का संकेत देती है किन्तु सबमें मिथक एक ही है और वही सर्जनात्मक का निर्देशक है। जैसे आदि कवि से लेकर आज तक के कवियों की धारणा में पर्याप्त अन्तर है।

वस्तुतः यह अन्तर आधुनिक परिवेश व संकल्प का है। मध्यकालीन तुलसी के भगवान राम मर्यादा पुरुषोत्तम से साकेत में नर-नारायण का रूप धारण कर लेते हैं। तथा संशय की एक रात में तो निर्णय-अनिर्णय का संशय उन्हें आजके सामान्य मानव का धरातल प्रदान कर देता है। अनामिका राम की शक्ति पूजा" में राम मानव की तरह उपासना करते हैं।" तो वही राम बुन्देली लोक साहित्य में "काउ विरछतर भींजत हुइहैं राम लखन दोउ भाई" बिल्कुल बुन्देल खण्डी बन जाते हैं। "मिथक चरित्र अलौकिक होते हुये भी उन्हें मिट्टी का स्वाभाविक गुण-धर्म लग ही जाता है। मनुष्य में जो कुछ अच्छा बुरा होता है, वह सारा मिथक चरित्र में होता ही है।"

मिथक एक आविष्कार है। आविष्कार का तात्पर्य है किसी प्रस्तुत वास्तविकता में से प्रमुख विचारों की अवतारणा और कल्पना के माध्यम से पुनः अभिव्यक्त करना। इसी विधि से यथार्थवाद तक पहुंचते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मिथक कोरी कल्पना ही नहीं बल्कि समग्रता या सम्पूर्णता की खोज है। मिथक मानवीयता की अचेतन अभिव्यक्ति भी है।

इस संदर्भ में बुन्देली लोक साहित्य की सभी विधाओं में मिथक की सुन्दर, सशक्त और प्रेरक अभिव्यक्ति विद्यमान है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी ग्रन्थ

अपरा, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी

अशोक के अभिलेख, राजबली पाण्डेय,

असाध्यवीणा, अज्ञेय

आविधा, विजयदेव नारायण, साही

अँधेरे में, मुक्तिबोध

अन्धायुग, डा० धर्मवीर भारती,

आधुनिक हिन्दी कविता में यथार्थ बोध, डा० शोभा सोमानी

आधुनिक हिन्दी कविता में लोक, डा० वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी

आधुनिक काव्यधारा, डा० केसरीनारायण शुक्ल

आधुनिक हिन्दी कविता में यथार्थवाद, डा० परशुराम शुक्ल "विरही"

आत्महत्या के विरुद्ध, रघुवीरसहाय

इतिहास प्रवेश, जयचन्द विद्यालंकार

ऐतिहासिक भौतिकवाद, केल्ले और कोवालजोन

अप्रस्तुतमन, भारतभूषण अग्रवाल

कल्पवृक्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल

कविश्री, निराला सम्पा० सियाराम शरण गुप्त

कामायनी, जयशंकर प्रसाद

कीर्तिलता, विद्यापति

कामायनी की मनः सौन्दर्य सामाजिक भूमिका, डा० रमेश कुन्तल मेघ

कुआनोनदी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन, डा० राजेन्द्र कुमार
खड़ी बोली का लोक साहित्य, डा० सत्या गुप्ता
चन्देल और उनका राजत्वकाल, केशवचन्द्र मिश्र
चिन्तामणि, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
छत्रप्रकाश, श्यामसुन्दर दास
छायावाद के गौरव चिन्ह, प्रो० क्षेम
जैसी करनी वैसी भरनी, सम्पा० शिवसहाय चतुर्वेदी
ठाकुर ठसक, कविवर ठाकुर
दिनकर, काव्य, कला और दर्शन, डा० प्रतिभा जैन
दीपशिखा, महादेवी वर्मा
धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी
नव स्वच्छन्दता वाद, डा० अजबसिंह
नई कविता की लम्बी कवितायें, डा० रामसुधार सिंह
निराला, डा० रामविलास शर्मा
नूरजहाँ, गुरुभक्तसिंह "भक्त"
पल्लविनी, सुमित्रानन्दन पन्त
परिक्रमा, महादेवी वर्मा
पटकथा, धूमिल
प्रकृति और हिन्दी काव्य, डा० रघुवंश
फिर वहीं लोग, रामदरश मिश्र
फूल नहीं, रंग बोलते हैं, शिवमंगल सिंह "सुमन"
बुन्देल भारती, अवधेश श्रीवास्तव
बुन्देलखण्ड का इतिहास, पं० गोरेलाल तिवारी
बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, डा० एस०डी० त्रिवेदी

बुन्देलखण्ड दर्शन ,पं0 मोतीलाल त्रिपाठी अशान्त

बुन्देलखण्ड के लोकगीत, डा0 वृन्दावन लाल वर्मा

बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, रामचरण हयारण मित्र

बुन्देलखण्ड की लोक कथायें, शिवसहाय चतुर्वेदी

बुन्देली लोकसाहित्य, डा0 रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेही"

बुन्देली लोक साहित्य, श्रीचन्द्र जैन

बुन्देली लोक काव्य, डा0बलभद्र तिवारी

बुन्देली फड़ साहित्य, डा0 गनेशीलाल बुधौलिया

बुन्देली प्रकाश,ओमप्रकाश सक्सेना "प्रकाश"

बुन्देली काव्य, सम्पा0डा0 रामस्वरूप खरे,डा0 हरगोविन्दसिंह

बेला फूले आधी रात, देवेन्द्र सत्यार्थी

भारत भूमि और उसके निवासी, जयचन्द्र विद्यालंकार

भारतीय संस्कृति का विकास,मंगलदेव शास्त्री

भारतीय लोक साहित्य,डा0 श्याम परमार

भारतीय लोक विश्वास,डा0 कृष्णदेव उपाध्याय

भारतेन्दु ग्रन्थावली

मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ,डा0 बृ0वि0श्रीवास्तव

मध्ययुगीन भारत,डा0 ईश्वरी प्रसाद

मानव विवाह संस्था काइतिहास,वेस्टर मार्क

मिथक और साहित्य,डा0 नगेन्द्र

मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य,डा0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव

मिथक और भाषा,डा0 शम्भूनाथ

मिथक औरभाषा, डा0 रमेश कुन्तल "मेघ"

रसवन्ती, रामधारी सिंह दिनकर

रश्मिबन्ध, सुमित्रानन्दनपन्त

रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास

रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, डा० बच्चन सिंह

रूसी लोक साहित्य, डा० केसरी नारायणशुक्ल

रेणुका, रामधारी सिंह दिनकर

लालित्यतत्व, हजारीप्रसाद द्विवेदी

लोक जीवन और साहित्य, डा० रामविलास शर्मा

लोकसाहित्य और संस्कृति, डा० दिनेश्वर प्रसाद

लोकायन, चिन्तामणि उपाध्याय,

वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, डा० कृष्ण अवस्थी

वृन्दावन लालवर्मा के सांस्कृतिक उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन-डा०उषा भटनागर

ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, डा० सत्येन्द्र

बिहारी सतसई, कविवर बिहारीलाल

विचार और वितर्क, हजारीप्रसाद द्विवेदी

विद्यापति पदावली, विद्यापति

शब्दस्तोम महानिधि, तारानाथ भट्टाचार्य

समाजशास्त्र के मूल तत्व, सत्यव्रत विद्यालंकार

समकालीन हिन्दी साहित्य, डा०बच्चन सिंह

संस्कृति और सभ्यता, रामधारी सिंह दिनकर

संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० देवराज

संशय की एक रात, नरेश मेहता

संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर

सांस्कृतिक भारत, भगवतशरण उपाध्याय

साहित्य और सौन्दर्य बोध, डा० रामशंकर त्रिवेदी

साहित्यक निबन्ध, डा० श्यामनारायण पाण्डेय

साहित्य और सिद्धान्त, डा० रामअवध द्विवेदी

हरयाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डा० दीनदयाल गुप्ता

हिन्दी निबन्ध की विविध शैलियां, वासुदेवशरण अग्रवाल

हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी उपन्यासों में लोकतत्व, डा० इन्दिरा जोशी

हिन्दी साहित्य (आदिकाल), हजारीप्रसाद द्विवेदी

हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व, डा० रवीन्द्र भ्रमर

हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, डा० शिवदानसिंह चौहान

संस्कृत ग्रन्थ

अथर्व वेद

अष्टाध्यायी

नाट्यशास्त्र

मनुस्मृति

महाभारत

ऋग्वेद

वाचस्पत्यम्

विष्णु पुराण

शतपथ ब्राह्मण

सिद्धान्त कौमुदी

श्रीमद् भागवत पुराण

आँग्लभाषीय ग्रन्थ

आर्क्योलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, भाग-2

एपिग्राफिका इण्डिका, भाग-30

इण्डियन एन्टीक्वेरी, भाग, 37

द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, आर० सि० मजूमदार०

कल्चरल हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड, एम० एल० निगम

इन्सक्रिप्शनम इण्डीकेरम, भाग 3 फ्लीट कार्पस

ए हिस्ट्री आफ बुन्देलाज, डब्ल्यू० आर० पागसन

बाजीराव दि फर्स्ट ग्रेट पेशवा, सी० के० श्रीनिवासन

सोसियालाजी, जे० एच० फिचर

डिक्शनरी आफ सोसियोलाजी, एच० पी० फेयरचाइल्ड

क्योटिक ड्रूम एण्ड सोल्यूनिक, ई० बी० वायलर

सोसायटी, मैकाइवर

कल्चर एण्ड एनार्की, मैथ्यू अर्नाल्ड

द स्टडी आफ काम्पलैक्स कल्चर्स

फोक कल्चर एण्ड ओरल ट्रेडीशन, एस० एल० श्रीवास्तव

प्रिमीटिव कल्चर टायलर

एन साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज

अमेरिकन फोकलोर

स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर, भाग 1

इन्ट्रोडक्शन टु इंग्लिश फोकलोर

द इण्डियन एन्टीक्विटी, जार्ज ग्रियर्सन

हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, डॉ० विंटरनीज

बुद्धिस्ट वर्थ स्टोरीज, टी0डब्ल्यू0 वाइस डेविड्स

दि पोप्यूलर बैलेड, एफ0बी0गूमर

हैण्डबुक ऑव फोकलोर, श्रीमती बर्न

रेशियल प्रोवर्ब्स, डा0 चैंपियन

दि गोल्डन वाउल फ्रेजर

ओल्ड टेस्टामेण्ट

न्यू टेस्टामेण्ट

यूनिवर्सल डिक्शनरी ऑव इंग्लिशलैंग्वेज,

दि अमेरिकन कालेज डिक्शनरी

दिस्टैण्डर्ड कालेज डिक्शनरी

ग्राहम कम्प्रेंसिव डिक्शनरी

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वोल्यूम, 16

दि एडवांस डिक्शनरी ऑव करैण्ट इंग्लिश

मॉडर्न रिव्यू, सितम्बर 1934

चैम्बर्स ट्वन्टींथ सेंचुरी डिक्शनरी

सेसे ऑव मैन, गीजर

फिलास्फी इन ए न्यू की, एस0केलैगर

ऐसेज इन एप्लाइड साइको0 एनैलेसिस, अर्नेस्ट जोन्स

ए स्ट्रक्चरल स्टडी ऑव मिथ एण्ड टोटमिज्म, सम्पा0 एडमण्ड लीच

जूर्नी रिचुअल पोयट्री, बंजेल

पत्र-पत्रिकायें

अखण्ड ज्योति, सम्पा0 डा0 प्रणव पण्ड्या

कल्याण सम्पा0 मोतीलाल जालान

मधुकर, सम्पा० बनारसी दास चतुर्वेदी

मामुलिया (त्रैमासिक) सम्पा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

लोकसंगम (बुन्देली अंक), सम्पा० राजाराम पाण्डेय

लोकवाणी, सम्पा० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

लोक संस्कृति विशेषांक (सम्मेलन पत्रिका) सं० 2010

लोकवार्ता (त्रैमासिक)

वीणा, सम्पा० डा० श्यामसुन्दर व्यास

स्मारिका, उ०प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन वा०अधि० उरई

सरस्वती, सम्पा० महावीर प्रसाद द्विवेदी

साहित्य सन्देश, सम्पा० गुलाबराय

हिन्दुस्तानी, अप्रैल 1936, डा० उदयनारायण तिवारी

त्रिपथगा, मार्च 1965, रामनरेश त्रिपाठी

कोश

अमरकोश

बुन्देली कहावत कोश

भार्गव्स डिक्शनरी (हिन्दी संस्करण)

महाराष्ट्रीय ज्ञान कोश

राजस्थानी लोकोक्ति संग्रह

संस्कृत कोश।

हिन्दी साहित्य कोश

हिन्दी विश्व कोश